अभिनव भारती ग्रन्थमाला—

भारतवर्षमें जातिभेद

लेखक

क्षितिमोहन सेन शास्त्री, एम० ए०

[आचार्य, विद्याभवन, विश्वभारती, शान्तिनिकेतन]

सम्पादक

हजारीप्रसाद द्विवेदी

प्रकाशक—
गिरिजाशंकर वर्मा
अभिनव भारती ग्रन्थमाला
१७१-ए, हरिसन रोड, कलकत्ता।

प्रथम बार
अक्टूबर १९४०
~~मूल्य २)~~ 2॥

मुद्रकः—
जेनरल प्रिण्टिङ्ग वर्क्स,
८३, पुराना चीनाबाजार स्ट्रीट,
कलकत्ता

सम्पादकीय वक्तव्य

प्रस्तुत पुस्तक आचार्य श्री क्षितिमोहन सेन महाशयकी लिखी हुई प्रथम हिन्दी पुस्तक है। यह उनके वृहत् प्रयत्न 'भारतवर्षका सांस्कृतिक इतिहास' का एक हिस्सा है। मेरे आग्रहपर उन्होंने इसे हिन्दीमें ही पहले प्रकाशित करना स्वीकार किया है। इसमें भारतवर्षकी सबसे बड़ी और अनन्य-साधारण समस्या जातिभेदकी शास्त्रीय और वैज्ञानिक दृष्टिसे विवेचना की गई है; इस विषयपर यह पहला प्रयत्न नहीं है, पर पाठक पढ़कर देखेंगे कि इस समस्याको आचार्य सेनने बिल्कुल नये ढङ्गसे देखा है। इसमें न तो वैज्ञानिककी तटस्थता है, न मिशनरी प्रचारककी उत्साह पूर्ण कलुष-दर्शिता और न समाज-सुधारककी हाय-हायकी पुकार। ग्रन्थकारने वैज्ञानिक दृष्टिसे विवेचना करते समय भी यह भुला नहीं दिया कि भारतीय पाठकके लिये यह कुतूहलकी वस्तु नहीं है, बल्कि जीवन-मरणका प्रश्न है। ग्रन्थमें सभी दृष्टियोंसे इस समस्याको समझनेका प्रयत्न किया गया है—शास्त्रीय विकास, वैज्ञानिक भित्ति, धार्मिक प्रभाव, वर्तमान रूप; इत्यादि। इस पुस्तकसे अनुसंधित्सु पाठक निश्चय ही सन्तोष पायेंगे और अगर ऐसा हुआ तो अभिनव भारती ग्रन्थमालाका यह विनम्र प्रयत्न सार्थक समझा जायगा।

पुस्तकके अन्तमें एक परिशिष्ट सम्पादककी ओरसे जोड़ा गया है; ग्रन्थ-कारकी इच्छा है कि पाठक पहले उसे पढ़ लें।

यह अभिनव भारती ग्रन्थमालाकी प्रथम पुस्तक है। पाठक सम्पादकके साथ ही यह स्वीकार करेंगे कि आरम्भ शुभ हुआ है। अपनी ओरसे हम प्रयत्न करेंगे कि पाठक सदा उत्तम मानसिक भोजन पाते रहें।

अक्टूबर १९४०
हिन्दीभवन, शान्तिनिकेतन

—हजारीप्रसाद द्विवेदी

अग्रज-तुल्य परम श्रद्धेय

श्रीमत् पं० करुणाशङ्कर कुबेरजी भट्टके

कर कमलोंमें लेखक का

विनम्र श्रद्धोपहार

भारतवर्षमें जातिभेद

भारतवर्षमें और बाहर

यह सबकी आकांक्षा होती है कि औरोंकी अपेक्षा मेरा मान और गौरव ज्यादा समझा जाय। इस उद्देश्यकी सिद्धिमें वंशगौरव एक प्रधान साधन है, इसीलिये सभी देशोंमें इसे पाने और पाकर सुप्रतिष्ठित बनाये रखनेके लिये अनेक प्रकारके प्रयत्न दिखाई देते हैं। इसीलिये नाना देशोंमें नाना भावसे वंशगत कौलीन्य या जातिभेदकी उत्पत्ति होती है।

मिश्र अत्यन्त प्राचीन सभ्यताका स्थान है। बहुत प्राचीन कालमें यहां जमीन्दार, श्रमिक और क्रीतदास (गुलाम) ये तीन श्रेणियां थीं। धीरे-धीरे वहां योद्धा और पुरोहितका वंशगत गौरव बहुत ऊंचा माना जाने लगा और शिल्पी तथा क्रीतदासका स्थान उनके नीचे मान लिया गया। योद्धाओं और पुरोहितोंमें ही कोई-कोई लेखक भी हुए।

चीनमें भी भद्रश्रेणी, किसान, शिल्पी और वणिक्, ये चार श्रेणियां थीं। वणिक्का स्थान सबसे नीचे था। जापानमें भी ये चार श्रेणियां थीं। एटा और हिनिन (Eta, Hinin) अन्त्यजोंके समान थे।

लेकिन इन श्रेणियोंमें एक दूसरेके साथ मिलना-जुलना, खान-पान, छुआ-छूत और एक दूसरेमें परिवर्तित होना असम्भव नहीं था। असम्भव देखा जाता है पृथ्वीके नाना असभ्य देशोंमें। जिस देशके आदमी जितनी ही

आदिम अवस्थामें होते हैं, छुआ-छूतका विचार उनमें उतना ही कठोर होता है। स्पर्श-दोषसे अपनी विशेष शक्ति खो देनेकी और दूसरोंके निकटसे नाना अमंगलके पानेकी आशंका इस प्रकारके विचारके मूलमें होती है। वर्जनशीलता (Exclusiveness) असंस्कृत आदिम अवस्थामें एक मात्र धर्म होती है। इसीको प्रशान्त महासागरके द्वीपोंकी असभ्य जातियाँ "मैना" (Mana) कहती हैं। आजकल सभी देशोंके पण्डित इस 'मैना' शब्द का इसी अर्थमें व्यवहार करने लगे हैं (E. R. E.VIII,पृ० ३७५)। रायबहादुर श्रीशरच्चन्द्र रायने इस मैनाके विषयमें अच्छा विचार किया है। जिन्हें जिज्ञासा हो, वे उनकी पुस्तक देख सकते हैं।

"इन्साइक्लोपिडिया आफ रेलिजन ऐण्ड एथिक्स" में 'मैना' (Mana) शब्दकी सूची देखनेसे नाना देशोंमें प्रचलित स्पर्शास्पर्श विचारका संधान मिलता है। अफ्रिका, फीजी, प्रशान्त महासागरके नाना द्वीप बोर्नियो आदि नाना स्थानोंमें यह विचार पाया जाता है। बोर्नियोंमें तो तीन श्रेणियां भी हैं। मेक्सिकोमें भी तीन जातियां हैं। वहां सिर्फ स्पेनीय लोग उत्तम हैं, मिश्रित लोग मध्यम और आदिम जातियां अधम।

यद्यपि सेमेटिक लोगोंका दावा है कि उनमें जातिभेद नहीं था, तथापि उनमें नाना भांतिका कौलीन्य विचार देखा जाता है। इसीसे जान पड़ता है कि उनमें भी श्रेणी-विभाग जरूर रहा होगा। अरबके दक्षिणी प्रदेशोंमें कारीगर लोग ही अन्त्यज थे। उन्हें गांव या नगरके बाहर बसना पड़ता है। फेदरमैन साहबका कहना है कि इनसे भी अधिक अभागे अन्त्यज वहां हैं, जो निष्ठावान् मुसल्मान होकर भी मस्जिदमें प्रवेश नहीं कर सकते।

आर्य लोग प्रायः सभी देशोंमें इन बातोंमें जरा उदारचेता हैं। अर्थात् वे अपने समाजमें श्रेणी-विभाग कम ही मानते हैं। रोममें यद्यपि अभिजात
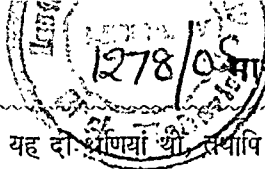
और प्राकृत (अनभिजात) यह दो श्रेणियां थीं, यद्यपि उनका व्यवधान ऐसा नहीं था जो दुर्लंघ्य कहा जा सके। पराजित शत्रु अवश्य ही गुलाम हुआ करते थे। इंग्लैण्डमें ऐंग्लोसेक्सन युगमें भी यही व्यवस्था थी। ग्रीस और प्राचीन जर्मनीमें भी अभिजात लोगोंकी एक विशेष श्रेणी थी।

आचार्य धल्लाका कथन है कि ईरानमें भी चार वर्ण थे, यद्यपि एक वर्णके लोग गुणकर्मानुसार दूसरेमें जा सकते थे। फिर कुछ लोग बताते हैं कि जेंदा-अवेस्तामें तीन श्रेणियोंका उल्लेख है—(१) मृगया-कारी, (२) पशु-पालक और (३) कृषि-जीवी (Crooke N. W. P. I,XVI) किन्तु यह बात अन्यान्य पारसीक आचार्य नहीं स्वीकार करते। वे कहते हैं कि पारसीकों (ईरानियों) में जातिभेद नहीं था। शायद भारतीय भावसे अनुप्राणित होकर ही धल्ला महाशयने अपने सामान्य-सामान्य भेदको ही जाति भेदके रूपमें कल्पना किया है। स्वदेशसे निर्यातित होकर पारसी लोगोंने गुजरातके राणा यदुके निकट अपना परिचय दिया था। इस देशमें आश्रय पानेके लिये इस देशके धर्मके साथ अपने देशके धर्मकी जितनी भी समानता हो सकती है उतनी दिखानेकी चेष्टा उन्होंने की है। यदु राणाके निकट दिये हुए परिचयके कई श्लोक ही इस बातके साक्षी हैं। उसमें भी जातिभेदकी बात नहीं है। यदि उनमें चातुर्वर्ण्य-व्यवस्था होती, तो ऐसे अवसरपर वर्णाश्रमवादी राजाके निकट उसे वे जरूर बताते। उसके वहां व्यवहार न करनेका कोई कारण नहीं हो सकता।

भारतवर्षमें जो जातिभेद प्रचलित है उसका स्वरूप और तरहका है। भारतीयोंके सिवा और कोई भी इसे अच्छी तरह ठीक-ठीक नहीं समझ सकता। इस समय यह जातिभेद जन्मगत है। शास्त्रोंमें यद्यपि गुण-कर्म-विभागकी बात सुनाई दे जाती है, परन्तु यह बात अब है नहीं। भारतवर्ष-

के बाहर भी अनेक आर्य जातियां नाना देशोंमें बसी हुई हैं, परन्तु कहीं भी इस प्रकारका जातिभेद उनमें नहीं पाया जाता। प्रश्न यह है कि एकमात्र भारतवर्षीय आर्योंमें ही यह जातिभेद कहांसे आ गया?

यहां इसी विषयकी यथासाध्य आलोचना करनेका प्रयत्न किया जा रहा है। हम साधारणतः अपने प्राचीन शास्त्रों अर्थात् वेदों, पुराणों और स्मृतियों पर ही अपनी आलोचनाको स्थित रखेंगे। देश-प्रचलित प्रथा और आचारों की चर्चा भी हमें बाध्य होकर करना ही पड़ेगा। ऐसी आलोचनाके सभी निष्कर्ष परम और चरम सत्य नहीं भी हो सकते हैं। भूल-त्रूटि भी हो सकती है। फिर भी इस विषयमें यदि किसी-किसीके विचार और वितर्क जाग्रत हों तो हमारा श्रम सार्थक ही समझा जायगा।

भारतीय जातिभेदके विषयमें विशेषज्ञ लोगोंने पहले भी अनेक कार्य किये हैं, किन्तु हमारा प्रयत्न ठीक उसी ढंगका नहीं है। फिर भी जब-जब हम किसी ऐसे विचार-क्षेत्रमें उपस्थित हो गये हैं, जिसके विषयमें अन्य पंडितोंने कार्य किया है, तब-तब अपने पूर्ववर्ती पंडितोंके मतसे फायदा उठाने का प्रयत्न किया है। ऐसे स्थलोंपर उनका नामोल्लेख करता गया हूं। इस प्रकार केतकर, विल्सन, राजेन्द्रलाल मित्र, रिजली, क्रूक आदिका सेन्सस रिपोर्ट, कैम्पवेल, घुरे आदिका नामोल्लेख यथास्थान किया गया है। डा०, जी० एस० घुरे (G. S. Ghurye) की 'कास्ट ऐण्ड रेस इन इण्डिया' (Caste and Race in India) नामक पुस्तक बहुत ही उपादेय है। इस विषयमें रुचि रखनेवाले लोग उसे देखनेसे उपकृत होंगे।

जातिभेद का परिचय

भारतवर्षके जातिभेदकी वात कहनेके पहले शुरूमें ही जाति शब्दकी परिभाषा देनी चाहिये। इस देशमें रहनेवाले हम सभी समझते हैं कि जाति क्या चीज है, परन्तु भाषामें उसकी एक परिभाषा करना सहज नहीं है। यूरोपियन पंडितोंने नाना भावसे इस बातको समझानेका प्रयत्न करके हार मानी है। इस देशमें जाति जन्मगत होती है। जातिके बाहर विवाह निषिद्ध है। आज तक मृत्युके पश्चात् शव-संस्कार और जीवितावस्थामें आहारादि स्वजातिमें ही सीमावद्ध थे; पर अब शहरोंमें रहना, विदेश-यात्रा, होटल, रेस्टोरॉ आदिके प्रचार तथा नई शिक्षा-दीक्षाके फल स्वरूप आहारादि सम्बन्धी आचार-विचार क्रमशः शिथिल होते जा रहे हैं।

भारतवर्षमें सबसे ऊंची जाति ब्राह्मण है। ब्राह्मणोंमें भी ऊंच-नीच के असंख्य भेद हैं। प्रदेश-गत भेद भी गिनकर खतम नहीं किये जा सकते। इसी लिये यह कहना असम्भव है कि ब्राह्मणोंकी कौन श्रेणी सबसे ऊंची है। नाना प्रदेशकी बहुत सी ब्राह्मण श्रेणियां सर्वोच्चताका दावा करती हैं। हिन्दुओंकी सबसे नीची जाति कौन है, यह भी कहना कठिन है। इन उभय कोटियोंके मध्यवर्ती स्तरों (तहों) का गिनना सहज नहीं है।

ब्राह्मणादि ऊंची जातियां जिन जातियोंका छुआ जल पी लेती हैं, वे जल-चल अर्थात् अच्छी जातियां हैं। जिनका छुआ घृत-पक्व खाद्य और मिष्टान्न ब्राह्मण लोग ग्रहण कर सकते हैं, वे और भी अच्छी जातियां हैं। साधारणतः ब्राह्मण लोग अपनी श्रेणीके बाहरके आदमीके हाथका भात-दाल और रोटी आदि (कच्ची रसोई) नहीं खाते।

दक्षिण-भारतमें स्पर्श-विचार और भी प्रबल है। वहां जिनके स्पर्शसे ब्राह्मणलोग अपवित्र नहीं होते और जिनका जल ग्रहणीय होता है वे ही अच्छी जातियां हैं। जिनका छुआ जल ब्राह्मणीलोग ग्रहण कर सकती हैं, वे और भी अच्छी जातियां हैं। और जिनके स्पर्शसे और जलसे ब्राह्मण-विधवाओं को स्नानादिसे पवित्र होनेकी जरूरत नहीं पड़ती, वे लोग इनसे भी अच्छी जातिके होते हैं।

नीच जातिका छुआ जल ग्रहण योग्य नहीं होता। जिनके छूनेसे मिट्टीके वर्तन भी अपवित्र हो जाते हैं, वे और भी नीच हैं। उनके भी नीचे वे हैं जिनके छूनेसे धातुके पात्र भी अपवित्र हो जाते हैं। इनके भी नीचे वे जातियां हैं, जो यदि मन्दिरके प्रांगणमें प्रवेश करें तो मन्दिर अपवित्र हो जाता है। कुछ ऐसी भी जातियां हैं जिनके किसी ग्राम या नगरमें प्रवेश करने पर समूचा गांवका गांव अशुद्ध हो जाता है। इन बातोंका विचार श्री श्रीधर केत–कर जी ने अपनी The History of caste in India (P. 24, 25) नामक पुस्तकमें बहुत अच्छी तरह किया है।

आज-कल इस छुआछूतके विषयमें नाना स्थानोंमें लोक-मत हिल चुका है। जो लोग सौभाग्यवश ऊंची जातिमें उत्पन्न हुए हैं, वे प्रायः इतना ननु–नच विचार पसन्द नहीं करते, और जो लोग दुर्भाग्यवश तथाकथित नीची जातियों में जन्मे हैं, वे अब अपनेको एकदम हीन और पतित माननेको तैयार नहीं हैं, किन्तु नीची जातियोंमें अपनेसे नीच जातियोंको दबा रखनेका प्रयास प्रायः ही दिखाई दे जाता है।

ऊंची जातिके लोगोंमें से अधिकांश अब भी वर्णाश्रम व्यवस्थाको अच्छा समझते हैं। स्वामी दयानन्दका कहना है कि "भारतवर्षमें असंख्य जातिभेद के स्थान पर केवल चार वर्ण रहें। ये चार वर्ण भी गुण-कर्मके द्वारा
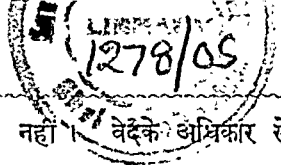
निश्चित हों, जन्मसे नहीं। वेदके अधिकार से कोई भी वर्ण वंचित न हो।"

महात्मा गांधी अस्पृश्यताके तो विरोधी हैं, किन्तु वर्णाश्रम व्यवस्थाके विरोधी नहीं हैं। श्रीमती लक्ष्मी नरसूने A Study of caste (P.131) में महात्मा जी का निम्नलिखित वाक्य उद्धृत किया है:—Varnashrama is inherent in human nature, and Hinduism has reduced it to a science. It does attach by birth. A man can not change his Varna by choice. अर्थात् वर्णाश्रम मनुष्यके स्वभावमें निहित है;हिन्दू-धर्मने उसे ही वैज्ञानिक रूपमें प्रतिष्ठित किया है। जन्मसे वर्ण निर्णीत होता है, इच्छा करके कोई इसे वदल नहीं सकता।

इस प्रकार देखा गया कि यह वर्णभेद जन्मगत है। ब्राह्मणसे ब्राह्मण, क्षत्रियसे क्षत्रिय, वैश्यसे वैश्य और शूद्रसे शूद्र उत्पन्न होता है। अव इस भेद का मूल कहां है?

साधारणतः लोग ऋग्वेदके पुरुष-सूक्त (१०म मंडल, ९० सूक्त) को ही इस वर्णभेदका मूल समझते हैं। वहां कहा गया है—

'उस प्रजापतिके मुख ब्राह्मण, वाहु क्षत्रिय, उरु वैश्य थे, और पदोंसे शूद्र उत्पन्न हुए[१]।' इसमें देखा जाता है कि जातिको लेकर ही मनुष्यकी सृष्टि हुई।

ऋग्वेदमें ब्राह्मण शब्द कम ही आया है। जहां आया है वहां भी ज्ञानी या पुरोहितके अर्थमें व्यवहृत हुआ है। क्षत्रिय शब्दका उल्लेख भी वहुत ज्यादा नहीं है और वैश्य तथा शूद्रका तो एकमात्र उल्लेख पुरुष-सूक्तके इस मंत्रमें ही है।

१—ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥१२॥

ऐतिहासिक पंडितोंके मतसे ऋग्वेदका दसवां मंडल अपेक्षाकृत अर्वाचीन या आधुनिक है। इसमें भी सिर्फ चार वर्णोंका ही उल्लेख है। इससे हमारे देशकी असंख्य जातियोंकी मीमांसा कैसे हो सकती है? मुंहसे हम चार वर्ण कहते रहें तो क्या होता है। मर्दुमशुमारीकी रिपोर्टमें प्रायः चार हजार जातियोंकी चर्चा है। फिर उनके भीतर जो भेद-विभेद हैं, उनकी तो कोई गणना ही नहीं।

चार वर्णोंकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें इस प्रकारका संशय प्राचीन कालमें भी था। सब लोग इस मतको माननेमें एक मत नहीं थे।

विष्णु पुराणके मतसे गृत्समदके पुत्र शौनकने चातुर्वर्ण्य व्यवस्था प्रवर्तित की[1]। इसी पुराणमें अन्यत्र कहा गया है कि भार्गसे भार्गभूमि उत्पन्न हुए, उनसे चातुर्वर्ण्य प्रवर्तित हुआ[2]। फिर दक्ष प्रजापति ब्रह्माके दाहिने अंगूठेसे उत्पन्न हुए[3]। महाभारतमें आदि सृष्टिके प्रसंगमें जनमेजयसे वैशम्पायनने कहा है कि ब्रह्माके छः मानस पुत्र हैं, मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु। मरीचिके पुत्र हैं कश्यप। उन्हींसे सब प्रजाओंकी सृष्टि हुई[4]।

१—गृत्समदस्य शौनकश्चातुर्वर्ण्यप्रवर्तयिताभूत्।
(विष्णु० अंश ४,८,१)

२—भार्गस्य भार्गभूमिः, अतश्चातुर्वर्ण्यप्रवृत्तिः
(वही, चतुर्थ अंश ८,९)

३—ब्रह्मणश्च दक्षिणांगुष्ठजन्मा दक्षप्रजापतिः।
(विष्णु ४,१,५)

४—ब्रह्मणो मानसाः पुत्रा विदिताः षण्महर्षयः।
मरीचिरत्र्यंगिरसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः।
मरीचेः कश्यपः पुत्रः कश्यपात्तु इमाः प्रजाः॥
(आदि पर्व ६५,१०-११)
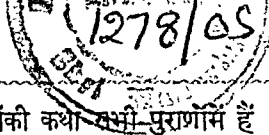
ब्रह्माके मानस पुत्रोंकी कथा सभी पुराणोंमें हैं। ब्राह्मण लोग इन्हीं की सन्तति हैं।

ब्रह्माके वरुण याग सम्बन्धीय अग्निसे भृगुका जन्म है। इसके बाद उनकी सन्तति-धारा चली (आदि पर्व ५,७–८)।

गीतामें भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि मैंने गुण-कर्मके अनुसार चातुर्वर्ण्य की सृष्टि की है[1]। हरिवंशमें भी कहा गया है कि गृत्समदके पुत्र शुनक हुए। शुनकसे ही शौनक नामसे परिचित ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र बहुतसे पुत्र उत्पन्न हुए[2]। इसी हरिवंशमें एक और मतका भी उल्लेख है। अक्षरसे ब्राह्मण, क्षरसे क्षत्रिय, विकारसे वैश्य और धूम-विकारसे शूद्रगण उत्पन्न हुए[3]।

नाना पुराणोंमें सृष्टिकथा नाना भावसे वर्णन की गई है। यहां सबका उल्लेख करना सम्भव नहीं है। तथापि दो एक और बातोंका उल्लेख किया जा रहा है।

बृहदारण्यक उपनिषद्में पहले क्षत्रिय सृष्टिकी ही बात पाई जाती है[4]।

१—चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः। (४,१३)

२—पुत्रो गृत्समदस्यापि शुनको यस्य शौनकाः।
ब्राह्मणाः क्षत्रियाश्चैव वैश्याः शूद्रास्तथैव च॥
(२९ अध्याय १५१९-२०)

३—अक्षराद् ब्राह्मणाः सौम्याः क्षरात् क्षत्रियबान्धवाः।
वैश्या विकारतश्चैव शूद्रा धूमविकारतः।
(भविष्य पर्व २१०, ११८१६)

४—ब्रह्म वा इदमग्र आसीद् एकमेव तदेकः सन्नव्यभवत् तच्छ्रेयोरूपमत्य-सृजत क्षत्रम्। (१,४,११)

महाभारत, शान्तिपर्वमें अर्जुनके प्रश्नके उत्तरमें श्रीकृष्णने कहा है—देवदेव नारायणके वाक्य संयमके समय उनके मुखसे पहले ब्राह्मणोंकी उत्पत्ति हुई। अन्यान्य वर्ण ब्राह्मणोंसे उत्पन्न हुए[१]।

फिर यह भी पाया जाता है कि चूँकि सभी वर्ण ब्राह्मणसे उत्पन्न हैं अतः वे सभी ब्राह्मणोंकी ही जातिके हैं[२]। यहां टीकाकार नीलकंठने कहा है कि चूँकि तीन वर्णोंमें ब्राह्मण ही यज्ञस्रष्टा है इसलिये उससे उत्पन्न सभी वर्ण ही यज्ञ-संयोग वशतः ऋजु अर्थात् साधु है[३]।

महर्षि जैमिनिका कहना है चतुर्मुख ब्रह्माने सृष्टिके प्रारम्भमें पहले ब्राह्मणोंका ही सृजन किया, फिर अन्य सभी वर्ण उन्हींके वंशमें पृथक्-पृथक् उत्पन्न हुए[४]। इसीलिये महाभारतमें कहा है कि पहले केवल एकही वर्ण था। बादमें कर्म-क्रिया विशेष वश चार वर्ण हुए[५]। शान्तिपर्वके १८८ अध्यायसे जान पड़ता है कि महर्षि भृगुका भी यही मत था। विष्णु पुराणके

१—वाक्यसंयमकाले हि तस्य वरप्रदस्य देवदेवस्य ब्राह्मणाः प्रथमं प्रादुर्भूताः। ब्राह्मणेभ्यश्च शेषा वर्णाः प्रादुर्भूताः। (शान्ति० ३४२,२१)

२—तस्माद्वर्णा ऋजवो ज्ञातिवर्णाः
संसृज्यन्ते तस्य विकार एव। (शान्ति० ६०,४७)

३—यस्मात् त्रिषु वर्णेषु ब्राह्मणो यज्ञस्रष्टा तस्मात् सर्वेऽपि वर्णा ऋजवः साधव एव यज्ञसंयोगात्।

४—संसर्ज ब्राह्मणानग्रे सृष्ट्यादौ स चतुर्मुखः
सर्वे वर्णाः पृथक् पश्चात् तेषां वंशेषु जज्ञिरे।
(पद्मपुराण, उत्कल खंड ३८,४४)

५—एकवर्णमिदं पूर्वं विश्वमासीद्युधिष्ठिर।
कर्मक्रियाविशेषेण चतुर्वर्णं प्रतिष्ठितम्॥

चतुर्थांशके कई अध्यायोंमें दिखाया गया है कि मनु के नाना पुत्रोंसे ही नाना जातियोंकी उत्पत्ति हुई थी।

विभिन्न प्रदेशोंके पुराणोंमें जातिभेदके सम्बन्धमें भिन्न-भिन्न कहानियां पाई जाती हैं। मैसूर प्रदेशकी एक पौराणिक कथासे जान पड़ता है कि ब्रह्मा के शापसे वैश्यवंशका समूल नाश हो गया था। बादमें वल्कल ऋषिने कुश निर्मित सहस्र पुरुषोंको जीवनदान देकर सहस्र गोत्रके वैश्योंको उत्पन्न किया (Mysore Tribes and Castes. Vol IV, P 4031)।

इस प्रकार मनुष्य और जाति की सृष्टि के सम्बन्धमें हमारे शास्त्रोंमें असंख्यक मत पाये जाते हैं।

भागवतमें भी एक मत देखते हैं[१]। श्रीधर स्वामीके भाष्यके अनुसार उसका अर्थ यह होता है कि पहले सर्ववाङ्मय प्रणव ही एकमात्र वेद था। एकमात्र देवता नारायण थे और कोई नहीं, एकमात्र लौकिक अग्नि ही अग्नि और एकमात्र हंस ही एक वर्ण था। क्योंकि पुराणमें कहा है कि प्रारम्भमें सत्ययुगमें मनुष्यकी एकमात्र जाति हंस थी[२]। उस सत्ययुगमें पाप-पुण्यकी सृष्टि नहीं हुई थी, वर्णाश्रम-व्यवस्था नहीं थी। इसीलिये उस समय वर्णसंकर भी नहीं था[३]।

———※———

१—एक एव पुरा वेदः प्रणवः सर्ववाङ्मयः।
देव नारायणोनान्य एकोग्निर्वर्ण एव च।

२—आदौ कृतयुगे वर्णो नृणां हंस इति स्मृतम्।

३—अप्रवृत्तिः कृतयुगे कर्मणोः शुभपापयोः
वर्णाश्रमव्यवस्थाश्च न तदासन् न संकरः।

ब्राह्मणादि वर्णोंका परिचय

शान्तिपर्वमें भरद्वाजके प्रश्नोंके उत्तरमें भृगुने जो कुछ कहा है उससे ऋग्वेदकी चातुर्वर्ण्य वाली बात मिलती नहीं। भृगु कहते हैं कि ब्राह्मणोंका वर्ण (रंग) श्वेत है, क्षत्रियोंका लोहित (लाल) वैश्योंका पीत और शूद्रोंका असित या काला[1]।

इस पर भरद्वाज कहते हैं कि यदि वर्ण (रंग) से ही वर्णभेद समझा जाय तब तो सभी वर्णोंमें वर्णसंकर देखे जायेंगे। फिर हम सभी लोग काम, क्रोध, मद, लोभ, शोक, चिन्ता और श्रमसे पराभूत होते हैं; इसलिए वर्णभेद होते कैसे हैं? स्वेद, मूत्र, पुरीष, श्लेश्मा, पित्त और शोणित सभी शरीरोंमें समान भावसे क्षरित हो रहे हैं; फिर वर्णभेद कैसे होता है? फिर अशेष प्रकारके स्थावर और जंगमोंके वर्णोंकी विभिन्नता कैसे निश्चित होगी[2]।

१—ब्राह्मणानां सितो वर्णः क्षत्रियाणां तु लोहितः।
वैश्यानां पीतको वर्णः शूद्राणामसितस्तथा। शांति, १८८,५

२—चातुर्वर्ण्यस्य वर्णेन यदि वर्णो विभिद्यते
सर्वेषां खलु वर्णानां दृश्यते वर्णसंकरः।
कामः क्रोधो भयं लोभः शोकश्चिन्ता क्षुधाश्रमः
सर्वेषां नः प्रभवति कस्माद्वर्णो विभिद्यते।
स्वेदमूत्रपुरीषाणि श्लेष्मा पित्तं सशोणितं।
तनुः क्षरति सर्वेषां कस्माद्वर्णो विभिद्यते॥
जंगमानामसंख्येयाः स्थावराणां च जातयः
तेषां विविधवर्णानां कुतो वर्णविनिश्चयः। वही, १८८,६-९

इसपर भृगुने युक्तियुक्त उत्तर दिया। बोले—वर्णोंकी कोई विशेषता नहीं है। समस्त जगत्को ब्रह्माने पहले ब्राह्मणमय ही सृष्ट किया था। बादमें सभी कर्मानुसार नाना वर्णको प्राप्त हुए। जो ब्राह्मण काम-भोग-प्रिय, तीक्ष्ण-स्वभाव, क्रोधन, प्रिय-साहस और स्वधर्म त्याग करके राजसिक लोहित वर्ण हुए वे क्षत्रिय हो गये। गोरक्षावृत्ति ग्रहण करके जो कृषिजीवी हुए वे स्वधर्म-त्यागी पीतवर्णवाले ब्राह्मण वैश्य हुए। जो ब्राह्मण हिंसा-प्रिय, अनृत-प्रिय लोभी और सर्व-कर्मोपजीवी हो गये, वे शौच-परिभ्रष्ट कृष्णवर्ण ब्राह्मण शूद्र हुए। इन कर्मोंसे पृथक्-पृथक् ब्राह्मण लोग ही वर्णान्तरको प्राप्त हुए। इसीलिये उनके लिये यज्ञ-क्रिया और धर्म नित्य-विहित हैं, निषिद्ध नहीं। इन चारों वर्णोंको वेदमें अधिकार है। ब्रह्माका यही पूर्व-विधान है। लोभके कारण ही लोग अज्ञानको प्राप्त हैं[१]।

१—न विशेषोऽस्ति वर्णानां सर्वं ब्राह्ममिदं जगत्।
ब्रह्मणा पूर्वसृष्टं हि कर्मभिर्वर्णतां गतम् ॥१०॥
कामभोगप्रियास्तीक्ष्णाः क्रोधनाः प्रियसाहसाः।
त्यक्तस्वधर्मा रक्ताङ्गास्ते द्विजाः क्षत्रतां गताः ॥११॥
गोभ्यो वृत्तिं समास्थाय पीताः कृष्युपजीविनः।
स्वधर्मान्नानुतिष्ठन्ति ते द्विजा वैश्यतां गताः ॥१२॥
हिंसानृतप्रिया लुब्धाः सर्वकर्मोपजीविनः।
कृष्णाः शौचपरिभ्रष्टास्ते द्विजाः शूद्रतां गताः ॥१३॥
इत्येतैः कर्मभिर्व्यस्ता द्विजा वर्णान्तरंगताः।
धर्मो यज्ञक्रिया तेषां नित्यं न प्रतिषिध्यते ॥१४॥
इत्येते चतुरो वर्णा येषां ब्राह्मी सरस्वती।
विहिता ब्रह्मणा पूर्वं लोभादज्ञानतां गता ॥१५॥

(वही)

जातिके सम्बन्धमें महाभारतमें यद्यपि इस प्रकारके मत पाये जाते हैं तथापि अन्यान्य अनेक स्थानोंपर आजकलके रूढ़ मत ही अधिक हैं। फिर भी महाभारतमें ऐसे उदार विचार कम नहीं हैं, जो आजके युक्ति-प्रवण युगमें भी आश्चर्यजनक हैं। धीरे-धीरे ये पुराने उदार विचार अनुदार और रूढ़ विचारोंसे ढक गये हैं, तथापि जो कुछ ऐसे भी विचार उसमें रह गये हैं उसी परसे हमारा विचार अग्रसर हो सकेगा।

शान्तिपर्व १८९ अध्यायमें भगवान् भरद्वाजने भृगुसे पूछा कि हे द्विजोत्तम, ब्राह्मण कैसे होता है? क्षत्रिय वैश्य और शूद्र कैसे होते हैं[१]? इसपर भृगुने उत्तर दिया—

ब्राह्मण वही है जो यथाविधि संस्कृत, शुचि, वेदाध्ययनरत, षट्कर्मान्वित, आचारशील, विद्याशाली, गुरुप्रिय, नित्यव्रती और सत्यपरायण हो। जिसके सत्य, दान, अद्रोह (मैत्री) आनृशंस्य, लज्जा, क्षमा, और तप हों वही ब्राह्मण है (शांति १८९-२-४)। इसके बाद क्षत्रिय और वैश्यके सम्बन्धमें बतानेके बाद भृगु कहते हैं कि जो नित्य सर्व प्रकारकी वस्तु भक्षण करनेमें रत है, जो अशुचि है और सर्व-कर्म करता है, जो वेदको त्यागकर आचार-हीन हो गया है, वही शूद्र है[२]।

इसके बाद ही महर्षि कहते हैं कि ऊपर बताये हुए ब्राह्मणके लक्षण यदि

१—ब्राह्मणः केन भवति क्षत्रियो वा द्विजोत्तम।
वैश्यः शूद्रश्च विप्रर्षे तद्ब्रूहि वदतां वर॥
शान्ति १८९,१

२—सर्वं भक्षरतिर्नित्यं सर्वकर्मकरोऽशुचिः।
त्यक्तवेदस्त्वनाचारः स वै शूद्र इति स्मृतिः।
(वहीं, ७)

शूद्र (जन्मगत) में हों तो वह शूद्र नहीं होता और यदि ये लक्षण ब्राह्मण (जन्मगत) में न हों तो वह ब्राह्मण नहीं होता[१]।

यह श्लोक महाभारतमें अन्यत्र (वनपर्व १८०-२५) भी है। वहां सर्प रूपी नहुषके प्रश्नपर युधिष्ठिरने यह बात कही है। इन्होंने और भी कहा है कि सर्वदा शुचिता, सदाचार, सर्वभूतमैत्री, यही ब्राह्मणके लक्षण हैं[२]।

इसी प्रकार 'जो क्रोध मोह त्यागी होते हैं उन्हें देवता लोग ब्राह्मण कहते हैं, जो सत्यवादी गुरुके संतोष विधायक, हिंसित होकर भी अहिंसा-परायण होते हैं, उन्हें देवता लोग ब्राह्मण कहते हैं। जो जितेन्द्रिय हैं, धर्मपरायण हैं, स्वाध्याय-निरत पवित्र हैं, जिनके काम और क्रोध पराभूत हो गये हैं; उन्हें ही देवता लोग ब्राह्मण कहते हैं। जिस धर्मज्ञ-मनीषीके लिये सारा लोक अपने ही समान है, जो सर्वधर्ममें रत हैं उन्हें देवता लोग ब्राह्मण कहते हैं। (वन पर्व अध्याय २०५,३३-३६) इसी तरह और भी कई श्लोकोंतक युधिष्ठिरने ब्राह्मणके लक्षण बताये हैं।

उद्योगपर्वमें सनत्सुजातने धृतराष्ट्रसे कहा है कि 'हे क्षत्रिय केवल जल्पना मात्रसे (वेद शास्त्रादिके अध्ययन मात्रसे) किसीको ब्राह्मण मत समझना, जो सत्यसे कभी स्खलित नहीं होता वही ब्राह्मण है (उद्यो० ४३,४९)। इसी तरह वशिष्ठ कहते हैं क्षमा ही ब्राह्मणकी शक्ति है (आदि १७५,२९)।

१—शूद्रे चैतद्भवेल्लक्ष्यं द्विजे चैतन्न विद्यते।
न वै शूद्रो भवेच्छूद्रो ब्राह्मणो ब्राह्मणो नच ॥८॥

२—सत्यं दानं क्षमा शीलमानृशंस्यं तपोघृणा।
दृश्यन्ते यत्र राजेन्द्र स ब्राह्मण इति स्मृतः। (वन०१८०,२१)
शौचेन सततं युक्तः सदाचारसमन्वितः।
सानुक्रोशश्च भूतेषु तद् द्विजातिषु लक्षणम्॥

आदि पर्वमें कहा गया है भूतमात्रके प्रति मैत्री ही ब्राह्मणका धर्म है (२१७,५) यही बातें महाभारतमें नाना स्थानोंमें नाना भावसे कही गई हैं (दे० अनुशासन २७,१२, शान्ति ६०,८-९, आदि ११,१६) अन्यत्र महाभारतमें कहा है कि जिसके अकेले रहते भी आकाश पूर्णकी भांति ज्ञात होता है और शून्यस्थान जनाकीर्ण-सा लगता है, उसे ही देवता लोग ब्राह्मण कहते हैं[1]। सम्मानित होकर भी जो धृष्ट नहीं होता, अपमानित होकर भी रुष्ट नहीं होता, जो सर्व भूतको अभय देनेवाला है, उसे ही देवता लोग ब्राह्मण कहते हैं[2]। जिसका जीवन धर्मके लिये है, धर्म हरिके लिये है, और दिन-रात पुण्यके लिये हैं, उसे ही देवता लोग ब्राह्मग कहते हैं[3]। जो निरामिष है, जो अनारम्भ हैं, जो स्तुति और नमस्कारसे हीन है, जो सर्व बन्धनसे विमुक्त है; उसे ही देवता लोग ब्राह्मण कहते हैं[4]। युधिष्ठिरने कहा है कि निस्सन्देह चरित्र ही ब्राह्मणत्वका कारण है[5]।

१—येन पूर्णमिवाकाशं भवत्येकेन सर्वदा।
शून्यं येन जनाकीर्णं तं देवा ब्राह्मणं विदुः।
शान्ति २४४,११

२—न क्रुध्येन्न प्रहृष्येच्च मानितोऽमानितश्च यः।
सर्वभूतेष्वभयदस्तं देवा ब्राह्मणं विदुः॥ वही, १४

३—जीवितं यस्य धर्मार्थं धर्मो हर्यर्थमेव च।
अहोरात्राश्च पुण्यार्थं तं देवा ब्राह्मणं विदुः॥ २३

४—निरामिषमनारंभं निर्नमस्कारमस्तुतिम्।
निर्मुक्तं बंधनैः सर्वैस्तं देवा ब्राह्मणं विदुः॥ २४

५—कारणं हि द्विजत्वे च वृत्तमेव न संशयः।
वन० ३१२,१०८

महाभारतमें ही पार्वतीसे शिव इसी श्लोककी भाषामें कहते हैं कि द्विजत्व-का कारण केवल चरित्र ही है (अनु० १४३।५०); चरित्रसे सभी ब्राह्मण हो सकते हैं; शूद्र भी यदि सच्चरित्र हो, तो ब्राह्मणत्व प्राप्त करता है[१]। जो आर्जव या सरलता-पूर्वक आचरण करता है, उसीको ब्राह्मणत्व प्राप्त होता[२] है। सदाचार और कर्मसे ही शूद्र ब्राह्मण होता है और वैश्य क्षत्रिय होता है[३]। सत्कर्मके फलसे आगम सम्पन्न शूद्र संस्कृत होकर द्विजत्व प्राप्त करता है[४]।

ब्राह्मण भी असत्-चरित्र और सर्वसंकर भोजन करनेसे जातिच्युत होकर शूद्र हो जाता है[५]। पवित्र कर्मसे शुद्धात्मा और विजतेन्द्रिय शूद्र भी द्विजवत् सेवनीय होता है, यह बात स्वयं ब्रह्मा ने कही है[६]। धर्मकी सहायता से शूद्र भी द्विज होता है और धर्मसे विमुख होकर ब्राह्मण भी शूद्र हो जाता है, यही गुह्य या गोपनीय रहस्य शिवने पार्वतीसे कहा है[७]।

१—सर्वोऽयं ब्राह्मणो लोके वृत्तेन तु विधीयते।
वृत्ते स्थितस्तुशूद्रोऽपि ब्राह्मणत्वं नियच्छति॥ अनु० १४३,५१

२—आर्जवे वर्तमानस्य ब्राह्मण्यमभिजायते। वन० २११,१२

३—एभिस्तु कर्मभिर्देवि शुभैराचरितैस्तथा।
शूद्रो ब्राह्मणतां याति वैश्यः क्षत्रियतां व्रजेत्। अनु० १४४,२६

४—एतैः कर्मफलैर्देवि न्यूनजातिकुलोद्भवः।
शूद्रोऽप्यागमसंपन्नो द्विजो भवति संस्कृतः। वही ४६

५—ब्राह्मणोवाऽप्यसद्वृत्तः सर्वसंकरभोजनः।
ब्राह्मण्यं स समुत्सृज्य शूद्रो भवति तादृशः। वही ४७

६—कर्मभिः शुचिभिर्देवि शुद्धात्मा विजितेन्द्रियः।
शूद्रोऽपि द्विजवत् सेव्य इति ब्रह्माऽब्रवीत्, स्वयं। वही ४८

७—ब्राह्मणो वा च्युतो धर्माद्यथा शूद्रत्वमाप्नुते। वही ५९

शान्तिपर्व ७६ वें अध्यायमें (४-८) उन कारणोंकी चर्चा है, जिनके कारण ब्राह्मण पतित होता है। अनुशासन पर्व (१३६,६-२०) में यही बात और तरहसे कही गयी है। इनमें से कई श्लोक आपस्तंब संहिताके नवें अध्यायमें दिये हुए हैं। इसमें शूद्रकी नौकरीको श्वानवृत्ति कहा है ; अर्थात् ब्राह्मण शूद्रकी नौकरी करके कुत्तेके समान हो जाता है। उसे भी कुत्तेकी तरह जमीन पर अन्न देना विहित है, क्योंकि जैसा कुत्ता है वैसा ही वह है[१]। (९,३५)

बृहद्धर्म पुराणमें लिखा है कि चारों वर्ण स्वधर्मपालनके द्वारा विप्रताको प्राप्त कर सकते हैं और आगे चलकर यह भी कहा है कि स्वधर्म पालन करके शूद्र वैश्य हो सकता है, वैश्य क्षत्रिय, और क्षत्रिय ब्राह्मण (उत्तर खण्ड १,१४-१६)।

शास्त्रोंमें लिखा है कि नौकरीकरनेवाले, यवनसेवी और सूदखोर ब्राह्मण शूद्रसे भी अधम हैं। परन्तु आजकल यह मत नहीं माने जाते क्योंकि सनातन धर्मके अधिकांश आधुनिक संरक्षकोंमें इनमेंसे कई-कई गुण विद्यमान हैं।

गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने जो गुणकर्म-विभागके अनुसार चातुर्वर्ण्यका निर्देश किया था (४,१३) वह अगर प्रचलित होता, तो भारतीय जातिव्यवस्था से हमारा शायद उपकार ही होता। उस हालतमें समाजमें एक गति और स्पन्दन दिखाई पड़ता। मनुने भी कहा है कि अवसर विशेषपर ब्राह्मण शूद्र हो जाता है और शूद्र ब्राह्मण हो जाता है (१०,६५)। परन्तु ये व्यवस्थायें और विधियां इस देशमें धीरे-धीरे अचल हो उठीं। संस्कृतके काव्य, पुराण, नाटक आदिमें हीनवृत्ति ब्राह्मण और उच्चवृत्ति शूद्रकी कम चर्चा नहीं है। चरित्र और शीलमें कभी कभी शूद्रोंको ब्राह्मणोंसे भी अधिक उन्नत पाया गया है,

---

१—ब्राह्मणस्य सदाकालं शूद्रप्रेषणकारिणः।
भूमावन्नं प्रदातव्यं यथा हि श्वा तथैव सः। ९।३५

परन्तु गुणकर्मके अनुसार उच्च-नीच मर्यादा न होनेके कारण धीरे धीरे सब का नैतिक आदर्श उतारपर आने लगा। जो जहां पैदा हुआ वहां हमेशाके लिए स्थिर हो रहा, इसकी अपेक्षा अधिक तामसिकता और क्या हो सकता है।

जातियां असंख्य हैं

शास्त्रके अनुसार 'जाति' से चार वर्णोका ज्ञान होता है। चार वर्ण हैं:—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। यद्यपि अब भी हमलोग चातुर्वर्ण्य शब्दका व्यवहार करते जा रहे हैं, पर व्यवहारमें जातियां असंख्य हो गई हैं। भारतवर्ष की मनुष्यगणना रिपोर्टसे मालूम होता है कि यहांकी जातियोंकी संख्या तीन हजारसे भी ऊपर हैं। इनमेंके उपविभागोंको गिना जाय तो संख्या और भी न जाने कहांतक बढ़ानी पड़ेगी। गौण विभागों को छोड़ दिया जाय तो ब्राह्मणोंके मुख्य विभाग ही आठसौ से ऊपर हैं। इनमें परस्पर विवाहादि नहीं हो सकते। (Ketkar's History of Caste. P, 5)

ब्लूमफील्ड का कहना है कि ब्राह्मणोंमें ही दो हजार भेद हैं (Religion of the Vedas, P 6) एक सारस्वत ब्राह्मणोंमें ही ४६९ शाखायें हैं, क्षत्रियों की ५९० शाखायें हैं और वैश्यों और शूद्रोंकी शाखायें ६०० को भी पार कर जाती हैं। (Hinduism, Ancient and modern, Lala Baijnath, Merat,1869, P.9) भारतके सभी प्रदेशोंकी यही दशा है। गुजरातमें मैंने दस दस बारह बारह घरोंके पृथक्-पृथक् ब्राह्मण समाज देखे हैं। मोता ग्राममें मोता ब्राह्मणोंकी एक ऐसी ही श्रेणी है। अठारहवीं शताब्दीमें एक सूरत शहरमें ही बनियोंके ६५ विभाग थे (A new account of the East Indies, Hamilton Vol I, 1740 , P.151)

मनुने लिखा जरूर है कि वर्ण चार ही हैं,पांचवां कोई वर्ण नहीं (१०।४)

किन्तु उनके समयमें ही बहुतेरी जातियां हो चुकी थीं। उनकी बात मनुको कहनी ही पड़ी है। अब सवाल है कि वर्ण तो चार ही हैं फिर इतनी जातियां कैसे हो गईं ? मनुने इसके लिये चार वर्णोंके अनुलोम प्रतिलोम विवाहको ही जातियोंकी अधिकताका कारण बताया है।

मनुस्मृतिके दसवें अध्याय (८,३९) में मनु महाराजने ५० जातियोंका नाम गिना कर कहा है (१०।४०) कि इनके सिवा और भी बहुतसी जातियां हैं। चार श्लोक और पढ़नेके बाद मनुकी गिनाई हुई जातियोंकी संख्या ६२ हो जाती है। पर यही 'सब कुछ' नहीं है, आगे 'इत्यादि' भी जोड़ा गया है। इनमें बहुतसी मानवश्रेणियां ऐसी हैं, जिन्हें आजकलके समाजशास्त्री 'Ethnic Group' कहते हैं। ये वह चीज हैं, जिन्हें Race और Tribe कहते हैं ; जैसे मागध, वैदेह आभीर, आवन्त्य, भल्ल, लिच्छवि, खस, द्रविड़, अन्ध्र आदि श्रेणियां। इनके सिवा क्रियालोप अर्थात् व्रात्यत्व वश पौण्ड्रक, औड़, द्रविड कम्बोज, यवन, शक, पह्लव, चीन, किरात, दरद, खस आदि जातियोंकी उत्पत्ति है। यह सहज ही समझमें आजाता है कि इनमें की अधिकांश जातियां आर्योंके संस्पर्शमें आई हुई नाना जातीय मानव-श्रेणियां हैं।

उन दिनोंकी अनेक मानव-श्रेणी या Ethnic Group नाना कारणोंसे भारतीय जातियोंमें अन्तर्भुक्त हो गई हैं। उनके नामोंमें अब भी प्राचीनता की झलक रह गई है। यहीं नहीं, ऐसा जान पड़ता है कि आर्यधर्माश्रित जिस आर्येतर वर्णको शूद्र कहा गया है वे भी पहले भारतवर्षकी एक मानव-श्रेणी या Ethnic Group थे। कलकत्तेके छपे हुए महाभारतके नवें अध्याय में बहुत से नदी और जनपदोंके नाम हैं। उस जगह आभीरादिके पश्चात् भीर-दरद-काश्मीरादिके साथ 'शूद्र' का भी उल्लेख है—शूद्रभीराश्च दरदाः काश्मीराः पशुभिः सह (भीष्म ९।६७) द्रोणपर्वमें शिवियों और शूरसेनोंके

साथ शूद्रोंका भी उल्लेख है—शिवयः शूरसेनाश्च शूद्राश्च मलयैः सह (६,६)। इसी तरह पुराणों के अनेक स्थानोंपर आभीर आदिके साथ शूद्रोंका भी उल्लेख पाया जाता है। ग्रीकोंके वर्णित Oxydrace शायद ये ही हैं। खूब संभव है बाद में चलकर समधर्मता वश सभी आर्येतरोंका नाम इन्हींके नामपर कर-दिया गया हो।

प्रत्येक युगमें अनेक पुरातन जातियोंके लुप्त होने और नई जातियोंके आविर्भूत होनेकी वात देखी जाती है। शायद इसीलिये वेदमें उल्लिखित वहुतसी जातियां आज स्मरणपथसे हट गई हैं। स्मृतियोंमें भी जिनका उल्लेख है, ऐसी वहुतसी जातियोंका अव पता नहीं लगता। यह कहना कठिन है कि वेदमें उल्लिखित ये सव जातियां अव क्या हो गई। युग वदलनेके साथ नामोंके भी वदलनेकी संभावना है। फिर भी चातुर्वर्ण्यका चलता नाम देकर सव युगोंकी एक ही जाति सव समय नहीं समझी जा सकती।

ऐसी वहुत जातियां हैं, जिनका नाम स्मृतिमें तो है पर वेदोंमें नहीं। मागध, वैदेह आदि विभिन्न प्रदेशोंके अधिवासी हैं। चण्डाल, असलमें एक जाति नहीं है। आवृत,आभीर, वाटधान, पुक्कस, शैव्य, झल्ल, मल्ल, लिच्छिवि, नट, करण, खस, द्रविड़, सुधन्वाचार्य, कारुण, विजन्म, मैत्र, सात्वत, सौरन्ध्रि मार्गव, कारावर, मेद, पाण्डु-सोपाक, अहिण्डिक, सोपाक अत्यवसायी, औड्र, यवन, शक, पह्लव, चीन, दरद, चुञ्चु, मद्गु, वन्दि इत्यादि जातियोंके नाम वेदोंमें नहीं हैं। कम्वोज नामक एक ज्ञानीकी वात (यास्क २।२) में तो है, पर इस नामकी किसी जातिका उल्लेख नहीं है। 'सूत' वेदमें कोई जाति नहीं है। ये लोग नाना भावसे राजाओं की सहायता भर किया करते थे। वृहदारण्यक का 'उग्र' किसी जाति विशेषका नाम नहीं है। ये लोग वहुत कुछ शासनके सहा-यक (आजकल की पुलिसके साथ तुलनीय) थे।

वेद और स्मृतिमें यद्यपि वहुतेरी जातियोंका उल्लेख है, किन्तु आधुनिक जातियों की तुलनामें वे कुछ भी नहीं हैं। साढ़े तीन हजार वर्तमान जातियोंके स्थानमें सौ पचास जातियोंके नाम पाये गये ही तो क्या हुआ ? वेद और स्मृतिं में जिनके नाम पाये जाते हैं, ऐसी वहुतसी जातियोंका आज कोई पता नहीं चलता और ऐसी वहुतसी प्रसिद्ध जातियां हैं, जिनका प्राचीन शास्त्रोंमें कोई उल्लेख नहीं है।

वंगालके हाड़ी, डोम, वागदी, वाउरी कावरा आदि वहुतसी प्रसिद्ध जातियों के नाम वेद और स्मृतियों में नहीं हैं। उड़ीसाकी पाण, कड़ा आदि जातियों के नाम भी नहीं पाये जाते। विहार और युक्त प्रदेशकी पासी, दुसाध, मुसहर कहार, खटिक, तुरहा, कुर्मी आदि जातियोंके तथा दक्षिणात्यकी थिया, चेरूमा, पारिया आदि जातियोंकी भी वेदों और स्मृतियोंमें चर्चा नहीं है। नाना प्रदेशकी मनुष्य-गणनासे ऐसी वहुतसी जातियोंके नाम संग्रह किये जा सकते हैं, जिनकी चर्चा वेदों और स्मृतियोंमें नहीं है।

आजकल खोज करके देखनेसे जान पड़ेगा कि एक ही जातिमें अनेक जातियां आ गई हैं। उदाहरणके लिये वंगालकी तांती जातिकी वात ली जा सकती है। वंगालमें, कपासकी खेती बुनाई और धुनाईका व्यवसाय वहुत पुराना है। इसी लिये यहां तांतियोंकी संख्या वहुत है। इनमें धोवा; सकली और सराक आदि शाखायें हैं (E. R. E. III,P.233)। खूव संभव है किसी जमानेमें ये जातियां वुनाईसे जीविका चलाने लगी थीं। इसीलिये इनकी गिनती भी तांतियोंमें होने लगी है।

पुराणकार लोग इस वातको वहुत कुछ समझ सके थे। इसीलिये ब्रह्म-वैवर्त पुराणमें ऐसी दो एक जातियोंका उल्लेख है, जिनकी चर्चा किसी पूर्ववर्ती श्रुति-स्मृतिमें नहीं है। हाड़ी, डोम (हड्डिडोमौ) की वात इस पुराणमें

(१०।१४५) है और वागदीकी भी चर्चा है (१०।११८) जुलाहे (जोला) और सराकके नाम भी हैं । यहां भी जातियोंकी उत्पत्तिके विषयमें पुराणकारोंने मनु आदि स्मृतिकारोंका ही अनुसरण किया है, जिसका फल यह हुआ है—म्लेच्छसे कुविन्द कन्याके संयोगसे जोला (जुलाहा) जाति हुई और जुलाहे से कुविन्दकी कन्याके संयोगसे शराककी उत्पत्ति हुई (१०।१२१)। कुविन्द तांती ही हैं। इनमें जो मुसलमान हो गये हैं वे जुलाहे कहलाते हैं। आधुनिक अनुसंधानोंसे जाना गया है कि शराक जैन श्रावकोंके अवशेष हैं। इसीलिये इस प्रकार उत्पत्ति वतानेसे काम नहीं चल सकता यह स्पष्ट ही है। तथापि ब्रह्मवैवर्त पुराणके इस अध्यायमें कोच, जोगी, राजवंशी, कापाली, माली, लुहार. (कर्मकार), शंखारी, कुम्हार, वढ़ई, सुनार, पटुआ (चित्रकर), राजमिस्त्री, तेली, लेट, माळ, मल्ल, भड़, कोल, कलन्दर, कलार (शौण्डिक), आगुरि, गणक, अग्रदानी, वेदे (संपेरा), मालवैद्य, सूत, भांट आदि अनेक जातियोंकी उत्पत्ति इसी ढंगपर वताई गई है। यद्यपि आजके युगमें ऐसी वातें इनमेंसे कोई जाति मानना नहीं चाहती। ब्रह्मवैवर्त्त पुराणमें ही (१०३।१०७)गंगापुत्रोंकी उत्पत्ति लेट और तीवर-कन्यासे वताई गई है। तीवर अन्त्यज हैं और लेट उन्हीं से वर्णसंकर। इन अन्त्यजोंसे गंगापुत्रोंकी उत्पत्ति हैं। अथच ये गङ्गापुत्र काशीके पण्डा हैं और भारतवर्षके तीर्थोंके गुरु हैं। गङ्गापुत्रोंके साथ अन्य ब्राह्मणोंके सामाजिक व्यवहार नहीं है। गयावाल पण्डोंके साथ भी अन्य ब्राह्मणों के ऐसे व्यवहार नहीं चलते, यहां यह भी कहना उचित है कि मल्लाहों में भी गङ्गापुत्र हैं। मर्दुमसुमारीकी रिपोर्टमें वताया गया है कि गयावाल लोग अन्य ब्राह्मणों द्वारा स्वीकृत नहीं हैं। आगे इन वातोंकी विस्तृत चर्चा की गई है।

जान पड़ता है भारतवर्षकी नाना जातियां नाना समयमें यहांपर वाहरसे आई हुई या यहींपर रहनेवाली मानव-मण्डलियां (Ethnic group) हैं।

ऐसी कितनी मण्डलियां समय समय पर आकर पूर्ववर्ती जातियोंको हटाकर बसी हैं, यह गिनके नहीं बताया जा सकता। नदीका डेल्टा जैसे मिट्टीके तह एकके ऊपर दूसरे जमा होनेसे बनता रहता है, उसी प्रकार भारतमें मानव-समाज जमते रहे हैं। इस देशवालोंने यूरोपियनों की भांति एक दूसरेको उखाड़ कर नष्ट नहीं कर दिया। अपना अपना धर्म और संस्कृति लेकर ये सभी चिरकालसे एक दूसरेके बगलमें वास कर रहे हैं। इससे भारतवर्षमें बहुतसे मतोंका और जातियोंका उद्भव हुआ है और भारतीयसमाज वैचित्र्यसे भर गया है।

आदिम युगमें जाति-व्यवस्थाका लचीलापन

प्राचीन युगमें जाति-व्यवस्थाके प्रचलित होनेपर भी उच्च वर्णके पुरुषका निम्नतर वर्णकी स्त्री के साथ विवाह सदोष नहीं माना जाता था। इसेही अनुलोम विवाह कहते थे। प्रतिलोम विवाह जरूर निन्दनीय था। निम्नतर वर्णका पुरुष यदि उच्चतर वर्णकी कन्यासे विवाह करे, तो उसे प्रतिलोम विवाह कहते थे। इससे कुलीनता नष्ट होती है। थोड़ी बहुत सभी देशोंमें यह मनोवृत्ति पाई जाती है। कहनेका मतलब यहां इतनाही है कि जाति-व्यवस्थाके प्रारम्भ के साथ ही साथ आज जैसी कड़ाई नहीं शुरू हो गई थी।

उन दिनों वंश-शुद्धिके अभावमें भी ब्राह्मणत्व प्राप्त करनेके अनेक प्रमाण संग्रह किये जा सकते हैं। पंचविंश ब्राह्मण (१४।११।१७) दीर्घतमा ऋषिकी माताका नाम उशिज कहा हुआ है। ये उशिज बृहद्देवताके मतसे शूद्र दासी थीं। यहां उशिजको कक्षीवान् आदि ऋषियोंकी माता भी कहा है। दीर्घतमाने ही इस उशिजके गर्भसे इन सब ऋषियोंको जन्म दिया था (४।२४-२५)। कण्ववंशीय वत्सको भी दासीपुत्र कहा गया है (१४।६।६)। अग्नि-परीक्षा देकर वत्सने अपना दावा प्रतिष्ठित कराया था।

इलूष एक शूद्र दासी थीं। उनके पुत्र ऐलूष-कवष सरस्वती नदीके तीर पर सोमयागमें दीक्षित हुए थे। अन्य ऋषियोंने उन्हें देखकर कहा कि यह "कितव अब्राह्मण दासीपुत्र किस प्रकार हमारे बीच सोमयाग से दीक्षित हुआ ?" (ऐत०. ब्रा, २।८) यह कह कर उन्होंने ऐलूष कवषको सरस्वती नदीसे दूर जल-हीन देशमें खदेड़ दिया। उन्होंने वहां 'प्रदेवत्रा ब्रह्मणे गातुरेतु' इस मंत्रका साक्षात्कार किया और सरस्वतीको अपने पास ले गये। निरुपाय होकर ऋषियों को उन्हें स्वीकार करना पड़ा। ऋषिके पूंज्य आसनपर दासीपुत्र कवष प्रतिष्ठित हुए।

जावालाके पुत्र सत्यकामकी कथा तो प्रसिद्ध ही है। सत्यकाम ब्रह्मविद्या सीखनेके लिये गुरुके पास गये। गुरु गौतम हारीतद्रुमतने गोत्र पूछा। सत्य-कामने मातासे पूछा। माताने कहा —"बेटा, कैसे बताऊं कि तेरा गोत्र क्या है ? यौवनमें बहुतोंकी परिचर्या करती हुई मैंने तुम्हें पाया है। सो मैं नहीं जानती कि तेरा गोत्र क्या है ? मेरा नाम जावाला है, तेरा नाम सत्यकाम है। इसीलिये तू अपना नाम सत्यकाम जावाल कह देना।" (छांदोग्य ४।४।२)। यह बात सत्यकामने गुरुसे ज्योंकी त्यों कह दी। ऋषि गौतमने यह सब सुन-कर कहा कि "सच्चे ब्राह्मणके सिवा और कोई ऐसी सच्चीबात नहीं कह सकता। जाओ सौम्य, समिध लाओ। मैं तुम्हें उपनीत करूंगा, इसलिये कि तुम सत्य से भ्रष्ट नहीं हुए[१]।"

उपनिषद्में शुरूसे अन्ततक एक ऐसी ही लचीली समाज-व्यवस्थाका परि-चय मिलता है। वहां ब्रह्मज्ञानके बड़े बड़े उपदेष्टा क्षत्रिय हैं। अजातशत्रु,

---

१—तं होवाचनैतद्‌ब्राह्मणोविवक्तुमर्हति, समिधं सौम्याहरोपमत्वा नेष्ये नसत्यादगा इति।

छांदोग्य ४।४।५

जनक, अश्वपति कैकेय, प्रवाहण, जैवलि, प्रभृति क्षत्रियगण बड़े बड़े ब्रह्मवेत्ता हो गये हैं। ब्राह्मण ऋषि लोग भी उनके निकट ब्रह्मविद्या सीखने जाते थे। बृहदारण्यक उपनिषद् (२।१०।१) में गर्गवंशीय बालाकि की कथा है, ये वाग्मी और विद्याभिमानी थे। काशिराज अजातशत्रुसे उन्होंने कहा था कि मैं तुम्हें ब्रह्मविद्या सिखाऊंगा, पर अन्तमें उन्हें इस विद्यामें राजाकी श्रेष्ठता स्वीकार करनी पड़ी थी। यह आख्यान कौशीतकी उपनिषद्में भी है (४।१)।

प्राचीनशाल औपमन्यव, सत्ययज्ञ पौलुषि, इन्द्रद्युम्न भाल्लवेय, जन शार्कराक्ष्य, वुडिल आश्वतराश्वि ये पांच महाशालपति महाक्षत्रिय गण आत्म-ज्ञान और ब्रह्मज्ञानकी प्राप्तिके लिये उद्दालक आरुणिके पास गये। उद्दालकने उन्हें राजा अश्वपति कैकेयके पास भेजा। सबने राजाके पाससे ब्रह्मविद्या प्राप्त किया (छान्दोग्य ५।११)।

विदेहपति राजर्षि जनक ऐसे ब्रह्मवेत्ता थे कि बड़े बड़े ब्राह्मण आचार्य उन्हें सिर नवाते थे। इन्होंने एक बहुदक्षिण यज्ञमें ब्राह्मणोंके साथ ब्रह्मविद्याका विचार किया था (बृहदारण्यक ३।१।१)। इनका याज्ञवल्क्यके साथ भी एकबार ब्रह्मविद्याका विचार हुआ था (छांदोग्य० ४।१।१, ४।२।१) और बुडिल आश्वतराश्विको भी इन्होंने इस विद्याका उपदेश दियाथा (छां० ५।१४।८)। इसी तरह बृहदारण्यक (६।२।१) प्रवाहण जैवलि नामक ब्रह्मवादी राजाके साथ आरुणेय श्वेतकेतुके शास्त्र-विचारकी बात पाई जाती है; और छान्दोग्य (१।८।१) में शिलक शालावत्य और चैकितायन दालभ्यके साथ प्रवाहण जैवलि के ब्रह्मविद्या-विचारकी चर्चा है।

क्षत्रिय लोग केवल ब्रह्मवादी ही होते हों सो बात नहीं है, वे यज्ञके अनुष्ठान-परिचालक भी होते थे। ऋग्वेदमें (१०।९८) कहा गया है कि एक बार जब बारह वर्ष अकाल पड़ाथा तो राजा शान्तनुने वृष्टिके लिये यज्ञ किया था।

इस यज्ञके पुरोहित राजा ऋष्टिसेनके पुत्र देवापि थे। बृहद्देवताके मतसे (७।१५५) देवापि शान्तनुके अपने भाई ही थे। निरुक्तका भी (२।१०) यही मत है।

भृगुवंशीय लोग रथ भी बनाया करते थे; यह ऋग्वेदसे (१०।३९।१४) मालूम होता है। इसी वेदमें (९-११२-३) ऋषि पुत्र आंगिरस कहते हुए पाये जाते हैं कि मैं स्तव-रचना करता हूं, पिता भिषक् (वैद्य) हैं और माता पिसनहरी (शिला-प्रक्षणी) हैं। ऐतरेय ब्राह्मणमें श्यापर्ण शायकायन एक विख्यात पुरोहित हैं। यज्ञवेदी की रचना में उनकी दक्षता सर्व जनविदित है। ये ही एक जगह कहते हैं कि उनकी सन्तानें गुणानुसार क्षत्रिय वैश्य या शूद्र कुछ भी हो सकती हैं (४।१।१०)। काठक संहिता (१९।१०,२७।४) और शतपथ ब्राह्मण (१२।८।३।१९) में जो 'ब्रह्मपुरोहित' शब्द आया है उस परसे किसी-किसीने अनुमान किया है कि उन दिनों ब्राह्मणोंके सिवा और जातिके लोग भी पुरोहित होते थे। (G. S. Ghurye, P. 44.)

राजा विश्वामित्रने जो अपनी तपस्याके बलसे ब्राह्मणत्व प्राप्त किया था, यह कथा काफ़ी प्रसिद्ध है। क्षत्रिय बल जब ब्रह्म बलके निकट पराजित हुआ, तब उन्होंने "धिग्बलं क्षत्रियबलं ब्रह्मतेजो बलं बलं (आदिपर्व १७५।४५) कहा था। इसके बाद उन्होंने कठोर तपसे ब्राह्मणत्व प्राप्त किया (वही ४८.) महाभारतमें अन्यत्र भी कहा है कि विश्वामित्र क्षत्रभावसे ब्राह्मण भावको प्राप्त हुए थे (उद्योग १०६।१८)। शल्यपर्वमें भी (४०।२९) विश्वामित्रने ब्राह्मणत्व लाभ करनेपर देवताओंकी भांति समस्त पृथ्वी घूमनेकी कथा है। और यह भी कहा है कि क्षत्रिय होकर भी ब्रह्मवंशके कारक हुए[१]।

१—ततो ब्राह्मणतां यातो विश्वमित्रो महातपाः
क्षत्रियः सोऽप्यथ तथा ब्रह्मवंशस्य कारकः—शल्य० ४।४८

इसी पर्वमें (१८।१६—१७) कहा गया है कि विश्वामित्रने शिवकी तपस्या की थी और उन्हींके प्रसादसे ब्राह्मणत्व पाया था। इस प्रसंगमें शास्त्रोंमें विश्वामित्र और वशिष्ठके विवादका भूरिशः उल्लेख है। प्राचीन कालमें बहुतसे अब्राह्मणोंने और क्षत्रियोंने ब्राह्मणत्व प्राप्त किया था। परन्तु इतना विवाद कहीं नहीं सुना गया। फिर प्रश्न होता है कि क्या कारण है कि वशिष्ठ और विश्वामित्रका विवाद इतना अधिक प्रसिद्ध हो गया?

मैकडोनल और कीथने दिखाया है (Vedic Index, Vol. II, P.274-277 और P. 310-315) कि वसिष्ठ (या वशिष्ठ) और विश्वामित्र अनेक हो गये हैं। विश्वामित्र एक समय सुदासके पुरोहित थे (ऋग्० ३।३३।५)। एक बार उन्हें इस पदसे हटा दिया गया और वे राजाके शत्रुओं से मिल गये। वसिष्ठके पुत्र शक्तिके साथ भी विश्वामित्रके कलहका आभास पाया जाता है (ऋग्० ३।५३।१५-१६;२१-२४) 'सद्गुरुशिष्य' ने विषयको और स्पष्ट करके लिखा है। इससे जान पड़ता है कि वशिष्ठ और विश्वामित्रके झगड़ेका आरम्भ पौरोहित्य आदिके स्वार्थके लिये ही हुआ था। Vedic Index में इस सम्बन्धकी और भी बहुतसी बातें हैं, जिन्हें कौतूहल हो वे वहीं देख सकते हैं।

असलमें अगर जन्मसे ब्राह्मणत्व का विचार किया जाय तो पता चलता है कि वसिष्ठ स्वर्गकी अप्सरा उर्वसीकी सन्तान हैं। मित्रावरुणके औरससे उनका जन्म है[१]। वसिष्ठके जन्ममें कुछ गोलमाल था, इसीलिये ऋग्वेदमें कहीं उन्हें उर्वसी-पुत्र और तृत्सु-वंशोत्पन्न कहा है (ऋग्० ७।८३।८)। कई जगह इन्हें ब्रह्माका मानसपुत्र भी कहा गया है। (आदिपर्व १७४।५) मनु संहिता (१।७५) वायुपुराण (९।६८-६९) और मत्स्यपुराण (१७३ अध्याय) में भी

१—उतासि मैत्रावरुणो वसिष्ठोर्वश्या ब्रह्मन् मनसोऽधिजातः।
(ऋग्० ७।३३।११)

यह कथा है। वायुपुराण (६५।४६) में उनका अग्निसे जन्म होना भी कहा गया है। मत्स्यपुराणसे भी इस कथाका समर्थन होता है।

पुराणकारकोंने जो वशिष्ठ और विश्वामित्रके झगड़ेकी कथा दी है, उससे भी उनके व्यक्तिगत स्वार्थकी बात पाई जाती है। ब्रह्मपुराणसे इस विषयपर बड़ा अच्छा प्रकाश पड़ता है। मांधाताके वंशमें विद्यावान् और प्रभावशाली त्रय्यारुणिका जन्म हुआ था, महाबली सत्यव्रत उन्हींके पुत्र थे। (७।९७) त्रय्यारुणिमें कुछ चरित्रगत दोष था (७।९८-९९) इसीलिये पिताने उन्हें परित्याग किया (७।१००)। पुत्रने कहा—'मैं कहां जाऊं ?' पिताने कहा—'वनमें जाकर चांडालोंके साथ वास करो (७,१०१)।' त्रय्यारुणिने इसीलिये वनवास व्रत ग्रहण किया। भगवान् वशिष्ठने सब देखा, पर बोले कुछ नहीं। राज्य अराजक हुआ, वसिष्ठ ही राज्य-रक्षक हुए (८।४)। यही सत्यव्रत बादमें त्रिशंकु नामसे प्रसिद्ध हुए।

इसी बीच द्वादशवर्षव्यापी अकाल पड़ा। विश्वामित्र उन दिनों परिवारसे दूर तपस्यामें लगे हुए थे। उनकी सन्तानें दुर्भिक्षसे मरने मरनेको आयीं। उस समय सत्यव्रतने ही उन्हें बचाया (७।१०५-१०९)। वशिष्ठके विरुद्ध बहुत दिनोंसे सत्यव्रतके मनमें क्रोध संचित था। वशिष्ठने उन्हें कभी सावधान नहीं किया था, इसीलिये पिताने रुष्ट होकर उनका त्याग कर दिया था। जब पिता रुष्ट होकर उन्हें वनवास दे रहे थे, तब भी वशिष्ठने बाधा नहीं दी, (८।५।६) उल्टे राज्य चलानेका भार अपने ऊपर ले लिया (८।४)! इधर सत्यव्रत मृगयासे अपना और विश्वामित्रके परिवारका पालन करते रहे (८।१-२)। अभावके कारण हो या द्वेषवश, सत्यव्रतने एक दिन वशिष्ठकी गाय मारकर ही अपना और विश्वामित्रके परिवारका भोजन जुटाया। इसीपर वशिष्ठने सत्यव्रतको शाप दिया (८।१९)। कृतज्ञ विश्वामित्रने इसी समय

उठकर सत्यव्रतकी सहायता की। वे उनके पौरोहित्यके लिये राजी हो गये (८।२०-२३) सत्यव्रतने भी अपने पिताका राज्य संभाला। वशिष्ठने उनका पौरोहित्य छोड़ दिया था, फिर उसी शून्य स्थानपर विश्वामित्र व्रत हुए। राज्य-परिचालनाके लिए अब वशिष्ठकी कोई जरूरत नहीं रही। यहीं वशिष्ठ और विश्वामित्रके झगड़ेका प्रधान कारण पाया जाता है।

सुदास राजाके पुरोहित विश्वामित्रने अपनेको कुशिक वंशीय कहकर परिचय दिया है (ऋग्वेद ३।५३।९)। अब, ऐतरेय ब्राह्मणसे जान पड़ता है कि वशिष्ठ भी सुदासके पुरोहित थे (७।८।८;८।७।७)। सुदासके इस पौरोहित्य के कारण भी दोनोंमें विरोध हो सकता है। यह पहलेही कहा जा चुका है कि ऋग्वेदमें वशिष्ठके पुत्र शक्तिके साथ विश्वामित्रके कलहका आभास पाया जाता है। इस अत्यन्त पुराने उपाख्यानको महाभारतके आदिपर्व (१७४—१७६ अध्याय) में विस्तारपूर्वक कहा गया है। वहांकी कथासे जान सड़ता है कि वशिष्ठ क्षमाशील हैं और विश्वामित्र क्रोधी। अनेक पुराणोंमें कल्मापपाद को वशिष्ठके द्वारा दिये हुए शापकी कथा पाई जाती है। ध्यानयोगसे यह जान कर भी कि कल्मापपाद निर्दोष हैं, वशिष्ठने शाप दिया था कि 'राक्षस होओ' जब कल्माषपादने भी शाप देना चाहा, तो उनकी स्त्री मदयन्तीने राजाको निवृत्त किया। यहां ब्राह्मणकी अपेक्षा क्षत्रियमें ही क्षमाशीलता अधिक दिखाई गई है (भागवत ९।९।२४) विष्णुपुराणमें भी कुछ अधिक विस्तारके साथ यही बात बताई गई है (४।४।३०)। कल्मापपादके सन्तान न होनेके कारण उनकी अनुमतिसे वशिष्ठने ही मदयन्तीसे पुत्रोत्पादन किया था—वशिष्ठस्तदनुज्ञातो मदयन्त्यां प्रजामधात् (भागवत ९।९।३९)। यही बात विष्णुपुराण (४।४।३८) में भी है।

शक, यवन, कंबोज, पारद, पह्लव, हैहय, तालजंघ आदि जातियां पहले

क्षत्रिय थीं। इन्होंने सगरका पैत्रिक राज्य छीन लिया था इसीलिये सगर ने उनके साथ घोर युद्ध किया। ये लोग हारकर उपायान्तर न देख वशिष्ठके शरणापन्न हुए (विष्णु० ४।३।१८)। वशिष्ठ यहां बहुत ही कूट-नीति-कुशल राजनीतिज्ञके रूपमें दिखाई देते हैं। उन्होंने सगरसे कहा—'इन जातियोंके रक्तसे व्यर्थ ही हाथ मत रंगो।' संस्कृतिसे रहित मनुष्य तो जीवन्मृत ही है। इसीलिये उन्होंने सगरसे कहा—"जीवन्मृतोंको मारने से क्या लाभ? तुम्हारी प्रतिज्ञाकी रक्षाके लिये मैंने ही उनके धर्मका और ब्राह्मण-संसर्गका परित्याग करा दिया" (विष्णु ४.३.१९—२०)। इस प्रकार हाथसे विना मारे हुए भी मनुष्यको भीतर-भीतर मार डालनेकी इस युक्तिसे प्रसन्न होकर सगरने कहा—'तो फिर यही हो' और वशिष्ठके वचनसे उनकी वेश-भूषा और तरहकी कर दी (विष्णुपुराण ४-३-२१)।

इस प्रकार यवनोंका सिर मूँडकर, शकोंका सिर आधा मूँड़कर, शकोंको लंबे-लंबे केश बढ़वाकर, पह्लवोंकी दाढ़ी रखाकर, और इन्हें तथा अन्य क्षत्रियोको स्वाध्याय और वषट्कारसे वंचित करके दण्ड दिया गया[१]। इस प्रकार ब्राह्मणादिके संसर्ग-त्यागसे वह म्लेच्छ हो गये[२]।

हमारा इतिहास इसी प्रकार अपनोंको पराया बनानेका इतिहास है। अति पुरातन कालमें सनातन धर्म-निष्ठ वशिष्ठने जो कुछ किया था, उसका हम अब भी अनुसरण करते जा रहे हैं। किन्तु एक और धारा थी जो परायेको अपना बना रही थी। ये थे भागवत लोग। इनकी बात अन्यत्र कही जायगी। अपनी

१—यवनान् मुंडितशिरसः अर्द्धमुंडान् शकान् प्रलंबकेशान् पारदान् पह्लवांश्चश्मश्रुधारान् निःस्वाध्यायवषट्कारान् एतानन्यांश्च क्षत्रियांश्चकार। (विष्णुपुराण ४।३।२१)

२—तेच निज धर्म परित्यागाद्ब्राह्मणैश्च परित्यक्ता म्लेच्छतां ययुः। (वही)

संस्कृति और अपनी वेश-भूषाका ऐतिहासिक मूल्य कितना अधिक है, यह बात इन पुराणोंकी कथाओं से बहुत अच्छी तरह समझमें आ जाती है।

किन्तु बादमें वशिष्ठने विश्वामित्रको ब्राह्मण मान लिया था। हरिश्चन्द्र राजाके पुत्र रोहितको वरुण यज्ञमें बलिदान करने की बात थी। रोहितके बदलेमें बादमें शुनःशेपको बलिदान देनेका आयोजन हुआ। उस यज्ञमें विश्वामित्र होता थे, जमदग्नि अध्वर्यु थे, वशिष्ठ ब्रह्मा थे और आयास्य आङ्गिरस उद्गाता थे (ऐतरेय ब्राह्मण ७।३।४) यह बात भागवत (७।९।२२) में भी है। इस प्रकार एक ही यज्ञमें वशिष्ठ और विश्वामित्रको व्रती देखकर अनुमान होता है कि वशिष्ठने विश्वामित्रको ब्राह्मणरूपमें स्वीकार कर लिया था, यद्यपि इस यज्ञमें विश्वामित्र का ही पौरोहित्य का दावा अधिक था; क्योंकि दुर्दिनमें उन्होंने सपरिवार सत्यकामकी सहायता की थी। फिर भी इस दारुण नरमेधमें वशिष्ठको पौरोहित्यके लिये व्रती देखा जा रहा है। इसलिये देखा जाता है, इस प्रकारके दारुण नरमेधका भार लेकर भी वे विश्वामित्रको पुरोहितके रूपमें पूर्णरूपसे स्वीकार कर सके थे। Vedic Index नामक ग्रन्थमें यद्यपि कहा गया है कि वशिष्ठ और विश्वामित्र एक एक व्यक्ति ही नहीं हैं फिर भी यहां फिरसे कह रखा जाय कि न तो वशिष्ठ ही एक व्यक्ति थे और न विश्वामित्र ही। वशिष्ठ भी कई हो गये हैं, विश्वामित्र भी कई। प्रत्येक वशिष्ठसे प्रत्येक विश्वामित्रका झगड़ा ही रहा हो, ऐसी कोई बात नहीं। एकके साथ जब दूसरेका स्वार्थगत संघर्ष घटा है, तभी विरोध हुआ है। सब विश्वामित्रों और सब वशिष्ठोंकी कहानियां देना बेकार है। नाना पुराणोंमें ये कथायें प्रसिद्ध ही हैं[1]।

१—मेरे मित्र पं० लक्ष्मीनारायण शास्त्री "वशिष्ठ-विश्वामित्र-संदेश" नामका एक विचारपूर्ण प्रबन्ध 'भारतवर्ष' (१३३७ भाद्र, पृ०

विश्वामित्रके सिवा और भी बहुतेरे मंत्रद्रष्टा ऋषि क्षत्रिय कुलमें उत्पन्न हुए थे। वेदके प्रथम मण्डलके प्रथम दस मंत्रोंके द्रष्टा हैं मधुच्छन्दा (ऐतरेय आरण्यक १।१।३; कौशीतकि ब्राह्मण १८।२) जो विश्वामित्रके पुत्र थे (ऐतरेय ब्राह्मण ७।१७।७)। चन्द्रवंशी राजा पुरूरवा वेदमंत्रों (ऋग्वेद १०।९५।१, ३, ६, ८, ९, १०, १२, १४, १७ ऋक्) के ऋषि थे। शान्तनुके भाई देवापिकी बात तो पहले ही कही गई है। कोलब्रुकने और भी कई नाम गिनाये हैं (Asiatic Trans, Vol VIII, P. 393)।

बादमें चल कर स्त्रियोंको शूद्रों की तरह वेद अध्ययनका अनधिकारी माना गया था। पर किसी जमाने में वे भी मंत्र द्रष्टा ऋषि थीं ?

देवापिकी कथा महाभारतमें भी पाई जाती है। यहां उन्हें आर्ष्टिसेन कहा गया है, यह उनके पितृ नामसे प्राप्त परिचय है। देखा जाता है कि पाण्डव लोग उग्रतपा राजर्षि आर्ष्टिसेनके आश्रममें गये थे। ये तपसे कृश हो गये थे, और इनकी धमनियां बाहर निकल आई थीं। इनके आश्रम में फल और फूलोंसे लदे हुए वृक्ष लगे हुए थे (वनपर्व १५८।१०२-३)। पुरोहित धौम्यने भी उस राजर्षिका सम्मान किया (वन० १५९।३)। शल्यपर्वमें कपाल-मोचन तीर्थके माहात्म्य वर्णनके प्रसंगमें कहा गया है कि 'उस स्थानपर

३३७-३४७ में लिखा है। जैसा ही यह सुन्दर भावसे लिखित है, वैसा ही गंभीर चिन्तासे समन्वित। मैंने इस प्रसंगके लिखने के पहले यदि उसे देखा होता, तो वृथा इस प्रसंगमें इतना परिश्रम न करके उस प्रबन्धको ही ज्योंका त्यों उद्धृत कर देता। जो पाठक इस विषयसे और भी अधिक परिचय प्राप्त करना चाहते हैं, वे उसे ज़रूर पढ़ें। इसमें अनेक वशिष्ठों और अनेक विश्वामित्रोंकी आलोचना विशेष रूपसे की गई है।

संशितव्रत महात्मा आर्ष्टिसेनने तपोवलसे ब्राह्मणत्व प्राप्त किया था, राजर्षि सिंधुद्वीप, महातपा देवापि और महातपस्वी भगवान् विश्वामित्र मुनिने ब्राह्मणत्व प्राप्त किया था[१]।

यहां ऐसा जान पड़ता है कि देवापि और आर्ष्टिसेन भिन्न भिन्न व्यक्ति हैं। राजा सिंधुद्वीपकी कथा महाभारतमें नाना स्थानोंपर है। ये जन्हुके वंशमें उत्पन्न हुए थे (अनुशासन ४।३-४)। इन्होंने भी देवापि और विश्वामित्र की भांति ब्राह्मणत्व प्राप्त किया था (शल्य० ४०।१-२ और १०-११)। सिंधुद्वीपके पुत्र राजर्षि वलाकाश्व थे और उनके पुत्र वल्लभ हुए (अनु० ४।४–५)

विश्वामित्रने क्षत्रिय होकर भी ब्राह्मणत्व प्राप्त किया था। केवल यही नहीं, उनके पुत्र तपस्वी ब्रह्मवेत्ता और गोत्रकर्ता हुए[२]। इन क्षत्रिय वंशोद्भूत ब्रह्मर्षियों की लंवी सूची महाभारत (वही ५०-५९) में दी हुई है।

महाभारतके आदिपर्वमें देखते हैं कि राजर्षि मनुके वंशमें अनेक ब्रह्मर्षि हो गये हैं (७५,१२–१५)। नहुषके ६ पुत्र थे, उनमें यतिने योगवलसे

१—यत्रार्ष्टिसेनः कौरव्य ब्राह्मण्यं संशितव्रतः।
तपसा महता राजन् प्राप्तवान् ऋषिसत्तमः।
सिन्धुद्वीपश्च राजर्षिर्देवापिश्च महातपाः।
ब्राह्मण्यं लब्धवान् यत्र विश्वामित्रस्तथा मुनिः।
महातपस्वी भगवानुग्रतेजा महातपाः।
(शल्यपर्व ३९।३४-३७)

२—तस्य पुत्रा महात्मानो ब्रह्मवंशविवर्धनाः।
तपस्विनो ब्रह्मविदो गोत्रकर्तार एव च॥
(वही ४९)

मुनि होकर ब्राह्मणत्व प्राप्त किया था (७५।३१) क्षत्रिय वंशोत्पन्न बहुतसे महात्मा ब्राह्मण होकर अव्यय ब्रह्मत्व पाये हैं (आदि० १३७।१४)। भृगु मुनि तो जन्मसे ब्राह्मणत्व होता है, यह बात मानते ही नहीं। उनके मतसे गुण, चरित्र और आचारके अनुसार ब्राह्मणादि वर्ण होते हैं (शान्ति० १८८–१८९ अध्याय) भीष्म भी कहते हैं कि सदाचारयुक्त शूद्र पूज्य हैं और असदाचारयुक्त ब्राह्मण भी अपूज्य (अनु० ४८।४८)। इन बातोंकी चर्चा आगे भी की जा चुकी है।

अनुशासनपर्व (३० अध्याय) में कहा है कि अपने शत्रु प्रतर्दनके भयसे राजा वीतहव्य भृगुके आश्रममें शरणापन्न हुए। प्रतर्दन आश्रममें उपस्थित हुए और बोले कि आपके आश्रमस्थ सभी लोगोंको देखना चाहता हूं। भृगुने कहा कि मेरे आश्रममें कोई क्षत्रिय नहीं है, सभी ब्राह्मण हैं। प्रतर्दनने सब कुछ समझ कर भी कहा कि मुझे अब कोई दुःख नहीं है क्योंकि मैंने अपने तेजसे ही वीतहव्यको क्षत्रिय जातिसे बहिष्कृत कराया। इधर वीतहव्य भृगुके वचनमात्रसे ब्रह्मर्षि हो गये[१]। केवल यही नहीं उनके पुत्र गृत्समद-रचित श्रुति ऋग्वेदमें भी है[२]। यह गृत्समद ब्रह्मचारी और ब्राह्मणोंके भी पूज्य हुए थे (अनु ३०।६०) इनकी वंशपरम्परा में वेद वेदांगके जाननेवाले हुए। महाभारतमें यह परम्परा इस प्रकार दी हुई है—गृत्समद, सुतेजा, वर्चा, विहव्य, वितत्य, सत्य, सन्त, श्रवा, तम, प्रकाश, वागिंद्र, प्रमति (३०, ६१-६४)।

गृत्समदकी बारहवीं पीढ़ीमें प्रमति हुए थे। इनके पुत्र रुरु हुए जो

१—भृगोर्वचनमात्रेण स च ब्रह्मर्षितां गतः।
अनु० ३०।५७

२—ऋग्वेदे वर्तते चाग्र्या श्रुतिर्यस्य महात्मनः।
अनु० ३०।५९

घृताची नामक अप्सराके गर्भसे जन्मे थे। रुरुसे प्रमद्वराके गर्भसे रुरुके शुनक, और शुनकके पुत्र शौनक हुए। महर्षि भृगुके प्रसादसे इस प्रकार एक क्षत्रिय वंशमें सबके सब ब्रह्मर्षि हुए (अनु० ३० अध्याय)।

हरिवंश महाभारतका ही खिल या परिशिष्ट है। उसमें से भी ऐसी घटनाओं के प्रमाण पाये जाते हैं। नाभागरिष्ट के दो पुत्र वैश्यसे ब्राह्मण हो गये थे[1]। इस श्लोकका अनुवाद वसुमती प्रेससे प्रकाशित बंगला अनुवादमें इस प्रकार दिया हुआ है कि 'नाभागरिष्टके दो वैश्य पुत्र थे, जो ब्रह्ममें लीन हो गये।' स्पष्ट ही यहां अनुवाद के नैपुण्य से वास्तविक तथ्यको ढक देने की चेष्टा की गई है। पर क्या इस एक श्लोक के अनुवादको बदल देने से वे सभी प्रमाण जो इच्छा पूर्वक या अनिच्छा पूर्वक श्रुति-स्मृति प्रमाणोंमें रह गये हैं, ढंके जा सकते हैं?

गृत्समदवंशज शुनक के शौनक नामक ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र जातीय अनेक पुत्र हुए थे (हरि० २९,१५१९)। ऊपर दिखाया गया है कि गृत्समद क्षत्रिय वीतहव्यकी सन्तान थे (अनुशासन ३०।५९)। इसी तरह वत्सभूमि और भृगुभूमिके ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि असंख्य पुत्र जन्मे थे (हरि० २९। १५९७-१५९८)।

बलिके पांच पुत्र अङ्ग, वङ्ग, सुह्म, पुण्ड्र और कलिंग 'बालेय' अर्थात् बलिवंशज क्षत्रिय कहलाये। बालेय ब्राह्मण इन्हीं की सन्तान हैं (हरिवंश ३१। १६८४-१६८५)।

प्रतिरथके पुत्र राजा कण्व हुए। मेधातिथि थे कण्वके पुत्र। बादमें मेधातिथिसे ही कण्व ब्राह्मणत्वको प्राप्त हुए थे (वही ३२।१७१८)।

क्षत्रिय गृत्समदके ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अनेक पुत्र हुए (३२।१७५४)

१—नाभागरिष्टस्य पुत्रौ द्वौ वैश्यौ ब्राह्मणतां गतौ।
हरि० ११।६५८

पुरुवंशीय राजा और ब्रह्मर्षि कौशिक ये दोनों क्षत्रिय-ब्राह्मण वंश परस्पर सम्बद्ध हैं, यह वात लोकप्रसिद्ध है[१]। राजा दिवोदासके पुत्र ब्रह्मर्षि मित्रयु हुए। इन्हींसे मैत्रायणी शाखा प्रवर्तित हुई। ये लोग क्षत्रोपेत भार्गव ब्राह्मण हैं (वही ३२।१७८९-१७९०)। मौद्गल्यगण भी क्षत्रोपेत ब्राह्मण हैं (३२।१७८१)।

हरिवंशकी इन वातों का समर्थन विष्णुपुराणसे भी होता है। रथीतर वंशीयगण क्षत्रिय थे, जो आंगिरस नामसे परिचित हैं। इसीलिये इन्हें क्षत्रोपेत ब्राह्मण कहते हैं (विष्णु० ४।२।२)। अम्बरीषके पुत्र थे युवनाश्व। इनसे ही हारित आंगिरस वंशकी उत्पत्ति हुई (विष्णु० ४।३।५)। गृत्समदके पुत्र शौनक चातुर्वर्ण्यके प्रवर्तक हैं (वही ४।८।१); भार्गके पुत्र भार्गभूमि भी चातुर्वर्णके प्रवर्तक हैं (वही ४।८।९); नेदिष्टपुत्र नाभाग वैश्य हो गये थे (४।१।१५) फिर भी इनमें कोई कोई ब्राह्मण हो गये थे, यह आगे ही कहा गया है। गर्गसे शनि हुए। इनके पुत्रगण गार्ग्य और शैनेय नामसे परिचित क्षत्रोपेत ब्राह्मण हैं। राजा अप्रतिरथ से कण्व हुए, कण्व से मेधातिथि। इन्हींसे काण्वायन ब्राह्मण गण उत्पन्न हुए (वही ४।१९।२ और ४।१९।१०)। मुद्गलसे मौद्गल्यगण ब्राह्मण हुए जो स्वयं क्षत्रिय वंशोत्पन्न थे (४।१९।१६)।

भागवतसे भी इन वातोंका समर्थन होता है। भगवान् ऋषभदेवके सौ पुत्र थे। ज्येष्ठ भरत भारतवर्षके अधिपति हुए। कनिष्ठ ८१ पुत्र महाशालीन महाश्रोत्रिय यज्ञशील कर्मविशुद्ध ब्राह्मण हुए (५।४।१३)। क्षत्रिय पुरुवंशसे कोई कोई वंश क्षत्रिय हुए और कोई कोई ब्राह्मण (९।२०-१)। राजा रथीतरके कोई सन्तान नहीं होनेसे अंगिराने उनकी पत्नीसे सन्तान उत्पन्न की। इस वंशमें क्षत्रोपेत ब्राह्मणगण उत्पन्न हुए (९।६।३)। भरतवंशीय

१—पौरवस्य महाराज ब्रह्मर्षेः कौशिकस्य च।
संबंधो ह्यस्य वंशेऽस्मिन् ब्रह्मक्षत्रस्य विश्रुतः॥

गर्गसे शिनि और उनसे गार्ग्य लोग। इस प्रकार क्षत्रिय वंशसे ब्राह्मण उत्पन्न हुए (९।२१।१९)। राजा दुरितक्षयसे तीन पुत्र त्र्य्यारुणि कवि और पुष्करारुणिने ब्राह्मणत्व प्राप्त किया था (९।२१।१९-२०)। क्षत्रिय मुद्गलके वंशवाले ब्राह्मण होकर मौद्गल्य नामसे परिचित हुए (९।२१।३३)। कण्व क्षत्रिय थे। उनके वंशवाले ब्राह्मणत्वको प्राप्त हुए थे (९।२।१६)। पारके पुत्र नीप हुए, उनके हुए सौ पुत्र। उन्होंने शुककन्या कृत्वीके गर्भसे योगी ब्रह्मदत्तको जन्म दिया। क्षत्रिय मनुके पुत्र हुए धृष्ट और उनके वंशवाले जन्मतः क्षत्रिय होकर भी ब्राह्मण हुए (९।२७।१७)। इत्यादि।

वायुपुराणसे भी इन तथा इन्हीं जैसी घटनाओं का प्रमाण पाया जाता है। राजा नहुषके पुत्र संयाति तपोवलसे ब्राह्मण हो गये थे (९७।१४)। मांधाता वंशीय युवनाश्वके पुत्र हारित थे। ये लोग आंगिरस हैं, जो क्षत्रोपेत ब्राह्मण हैं (८८।७१-७३)।

पहले ही बताया गया है कि वायुपुराणमें कहा गया है कि आदिकालमें न वर्णव्यवस्था थी और न वर्णसंकर। इस आदिकालकी एक मनोरंजक बात यह है कि आदिकालमें वृक्षके आश्रयसे गृहनिर्माण किये जाते थे, फिर वृक्षको देखकर उसकी शाखाओं के अनुकरण पर लकड़ी फैलाकर गृह बनाये जाने लगे (८।१।१८) शाखाकार बनने के कारण ही इन्हें शाला कहते थे। इस आदिकालमें कर्मों के शुभाशुभत्व के अनुसार ब्राह्मणादि वर्ण सृष्ट हुए थे[1]। प्रजावृद्धिके लिये भृगु, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, अंगिरा, मरीचि, दक्ष, अत्रि और वशिष्ठ इन नौ मानसपुत्रों को ब्रह्माने उत्पन्न किया, जो 'नव-ब्राह्मणः'

१—ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राद्रोहिजनास्तथा।
भाविताः पूर्वजातीषु कर्मभिश्चाशुभाशुभैः॥
(वायु० ८।१३४)

(९।६३) कहलाये। एक अन्य जगह इसी (वायु) पुराणमें मनुकी गिनती भी इन नौ के साथ की गई है (५९।८८)। इसी (५९)अध्याय में इन महर्षियों और इनके वंशोत्पन्नों के परिवारका परिचय दिया हुआ है।

वायुपुराण (९१।११५-११७) में निम्नलिखित महात्माओं के क्षत्रिय वंशमें उत्पन्न होकर भी तपोवलसे ऋषित्व प्राप्त करनेका उल्लेख है:—विश्वामित्र, मांधाता, संकृति, कपि, पुरुकुत्स, सत्य, अनूहवान्, ऋथु, आर्ष्टिसेन, अजमीढ़, कक्षीव, शिंजय रथीतर, विष्णुवृद्ध इत्यादि। इसी प्रकार राजा गृत्समदके पुत्र शौनक हुए, जिनके वंशमें चारोंही वर्ण उत्पन्न हुए (वायु० ९२।४-५) शौनक और आर्ष्टिसेन क्षत्रियवंशजात ब्राह्मण हैं (वही ६)। नहुष के पुत्र संयाति मोक्षमार्ग अवलंवन करके ब्रह्मभूत मुनि हुए थे (वायु० ९३।१४)। दिव्य भरद्धाज ब्राह्मणसे क्षत्रिय हुए (वायु ९९।१५७) गाग्र वंशीयगण क्षत्रियवंशोत्पन्न होकर भी ब्राह्मण हुए (९९।१६१) गाग्र संकृति और वीर्यवंशीयगण भी क्षत्रवंशजात ब्राह्मण है (९९।१६४)। क्षत्रिय कंठके पुत्र मेधातिथि थे, इन्हीं से काण्ठायन ब्राह्मण प्रसिद्ध (९९।१७०) हुए। राजा सनति के पुत्र कृत थे, जो कौथुम गोत्रीय हिरण्यगर्भके शिष्य थे। येही चौबीस प्रकार सामवेदके वक्ता थे (९९।१८९-१९०)। इनकी प्रवर्तित संहितायें प्राच्य कहलाती हैं (वही १९१)। मुद्गलवंश वाले मौद्गल्य हैं। ये क्षत्रोपेत ब्राह्मण हैं (१९८)। राजा दिवोदासके पुत्र ब्रह्मिष्ठ मित्रयु राजा थे। इनके वंशज जन्मतः क्षत्रिय होकर भी तपोवल्से ब्राह्मण हुए (वही २०७)।

लिंगपुराणके मतसे विष्णु मरीचि, भृगु, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, दक्ष, अत्रि, वसिष्ठ, संकल्प धर्म और अधर्मकी योगविद्याबलसे सृष्टि की (पूर्वभाग ३८ अध्याय)। सत्ययुगमें वर्णाश्रम व्यवस्था भी नहीं थी ; अतः वर्णसंकर भी नहीं थे (वही ३९ अ०)। ब्रह्माने प्रजाओं का दुःख दूर करनेके लिये क्षत्रियों

की सृष्टि और वर्णाश्रम व्यवस्थाकी प्रवर्तना की। राजा युवनाश्वके पुत्र थे हरित। इन्हींके वंशज 'हारित' ब्राह्मण हुए। ये लोग अंगिरावंशके पक्षाश्रित क्षत्रोपेत ब्राह्मण हैं।...क्षत्रिय संभूति के एक पुत्र विष्णुवृन्द से विष्णुवृन्द ब्राह्मणों की उत्पत्ति हुई। ये भी अंगिरावंशके पक्षाश्रित क्षत्रोपेत ब्राह्मण हैं (वही,६५अ०)।

ब्रह्मपुराणमें भी ये कथायें हैं—नाभाग और वृष्टिकी क्षत्रिय सन्तानोंकी वैशत्व प्राप्ति (७।२६), विश्वामित्रकी ब्राह्मणत्व प्राप्ति (१०।५५) इस वंश-का ब्रह्म-क्षत्र नाम ; राजा वलिके वंशज बालेय क्षत्रिय और वालेय ब्राह्मण (१३।२९-३१); राजा गृत्समतिके नाना वर्णके वंशज (१३।६४); क्षत्रिय वत्स और भर्गके वंशजोंके भी कई वर्ण (१३।१८-७०) आदि। इस पुराणमें साफ साफ कहा गया है कि ब्राह्मण धर्मके आचरण और ब्राह्मण जीविका के अवलंबनसे क्षत्रिय और वैश्य भी ब्राह्मण हो सकते हैं[१]। और शुभकर्मों के आचरणसे शूद्र भी ब्राह्मणत्वको प्राप्त कर सकता है और वैश्य भी क्षत्रियताको[२]। सत्यवादी, निरहंकार, निर्द्वन्द्व, मधुरभाषी, नित्ययाजी, स्वाध्यायवान्, शुचि, दान्त, ब्राह्मणों का सत्कार करनेवाला, किसी वर्ण से ईर्ष्या न करनेवाला, गृहस्थ व्रतसे दो वार ही भोजन करनेवाला, शेषाशी, विजिताहार, निष्काम, गर्वहीन, यज्ञशील और अतिपरायण वैश्य भी ब्राह्मणत्व पा जाते हैं (२२३।३७-४०)। शूद्र भी यदि आगम सम्पन्न और संस्कृत हो तो वह द्विज हो जाता है[३]। और इसके विपरीत ब्राह्मण भी शूद्र हो जाता है

१—स्थितोब्राह्मणधर्मेण ब्राह्मण्यमुपजीवति
क्षत्रियो वाथ वैश्यो वा ब्रह्मभूयं स गच्छति (२२३। १४)
२—एभिस्तु कर्मभिर्देवि शुभैराचरितैस्तथा।
शूद्रो ब्राह्मणतां गच्छेद्वैश्यः क्षत्रियतां व्रजेत्। (२२३। ३२)
३—शूद्रोऽप्यागमसंपन्नो द्विजो भवति संस्कृतः (२२३। ५२)

(२५३।५४) शुचि-कर्मपरायण शूद्र की भी ब्राह्मण सेवा करेगा—यह मत स्वयं ब्रह्माका है (५५)।

जाति, संस्कार, श्रुति और स्मृतिसे कोई द्विज नहीं होता, केवल चरित्रसे ही होता है। इस लोकमें चरित्रसे ही सबके ब्राह्मणत्वका विधान है, सद्वृत्तमें स्थित शूद्र भी ब्राह्मणता को प्राप्त होता है। ब्राह्मण वही है, जिसमें निर्मल, निर्गुण ब्रह्मज्ञान हो[१]। ब्राह्मण भी जिन कारणोंसे शूद्र हो जाता है और शूद्र भी जिन कारणोंसे ब्राह्मण हो जाता है वे भी (२२३।६५-६६) बताये गये हैं।

कहनेका मतलब यह है कि वैदिक युगमें जाति-व्यवस्थाकी इतनी कड़ाई नहीं थी। बहुत दिनोंके बाद तक भी जाति-भेदकी दीवार एकदम अलंघ्य नहीं थी। यद्यपि महाभारत और पुराणादिके समय जन्मगत जाति ही प्रवर्तित हो गई थी, और स्थान स्थानपर इनमें जन्मगत ब्राह्मणकी प्रशंसा और महात्म्यका बहुत उल्लेख है तथापि ऊपरके प्रमाणोंसे, जो कुछ कुछ संग्रह किये गये हैं, स्पष्ट है कि उन दिनों भी प्राचीन आदर्श समाजके चित्तसे एकदम पुँछ नहीं गया था। ऐसी ऐतिहासिक घटनायें और भी बहुतसी हैं, जो शास्त्रग्रन्थोंमें नाना स्थानोंमें बिखरी पड़ी हैं। सबका उद्धृत करना उबा देनेवाला भी होगा और निष्प्रयोजन भी। जो लोग अधिक प्रमाणके प्रेमी हों,

---

१—न योनिर्नापि संस्कारो न श्रुतिर्नच सन्ततिः।
कारणानि द्विजत्वस्य वृत्तमेव तु कारणम्।
सर्वोऽयं ब्राह्मणोलोके वृत्तेन तु विधीयते।
वृत्ते स्थितश्च शूद्रोऽपि ब्राह्मणत्वं च गच्छति।
ब्रह्मस्वभावः सुश्रोणि, समः सर्वत्र मे मतः।
निर्गुणं निर्मलं ब्रह्म यत्र तिष्ठति स द्विजः।

(वही २२३। ५६-५८)

वे मूल ग्रन्थोंको ही देख सकते हैं। यह जरूर है कि कभी कभी देशी भाषाओंके अनुवादक एक विशेष दृष्टिसे देखनेके कारण ऐतिहासिक प्रमाणोंको अनुवादचातुर्यसे ढकनेका प्रयत्न करते हैं, इसलिये कोई कोई अनुवाद पाठकोंको गुमराह कर सकते हैं। फिर भी शास्त्रग्रन्थोंमें ऐसी बातोंकी इतनी चर्चा है कि उन्हें ढक सकना असम्भव है।

केरलमें प्रसिद्ध है कि परशुरामने धीवरों को जनेऊ देकर ब्राह्मण बनाया था। पुराणोंमें भी इसकी चर्चा है। भविष्य पुराणके अनुसार व्यास धीवरीसे, पराशर श्वपच-कन्यासे, शुकदेव शुकीसे, कणाद अनार्य ओलकासे उत्पन्न हुए थे (४२ अध्याय)। वसिष्ठ की पत्नी अक्षमालाकी पहली जाति भी हीन ही थी।

ब्राह्मण को ज्ञान और तपस्या से पहचाना जाता है, कुल और माता पिता से नहीं। कृष्ण यजुर्वेद कहता है—ब्राह्मण के माता पिता को क्यों पूछते हो? यदि उसमें श्रुत है तो वही उसका पिता है, वही पितामह[१]। महाभारत शान्तिपर्व (१८८।१८९ अध्याय) में भी इसी बातकी प्रतिध्वनि है। भीष्म कहते हैं। एकता, सत्यता, मर्यादा, अहिंसा, सरलता और कर्ममें अनासक्ति इनसे बढ़ कर ब्राह्मणों का कोई धन नहीं है[२]।

१—किं ब्राह्मणस्य पितरं किमु पृच्छसि मातरं।
श्रुतं चेदस्मिन् वेद्यं स पिता स पितामहः।
(काठक संहिता ३०।१)

२—नैतादृशं ब्राह्मणस्यास्ति वित्तं
यथैकता समता सत्यता च
शीलं स्थितिर्दम्भनिधानमार्जवं
ततस्ततश्चोपरमः क्रियाभ्यः। (शान्ति० १७५।३-७)

यह उदारता धीरे धीरे भारतवर्ष में दुर्लभ होती गई। फिर भी यह आशा की ही बात कही जानी चाहिये कि वह एक दम लुप्त नहीं हुई। आज से डेढ़ सौ वर्ष पहले कानपुर में गङ्गातट पर एक आचारनिष्ठ ब्राह्मण शूद्र के जल के छींटे के पड़ने से एकदम क्रुद्ध होकर उस शूद्र को मारने दौड़े। साधक-श्रेष्ठ तुलसी साहब हाथरसी वहीं स्नान कर रहे थे। उन्हें यह बात बहुत बुरी लगी। बिचारा शूद्र लज्जा ग्लानि और भय से काँप रहा था। तुलसी साहबने उस ब्राह्मण से पूछा—इसे क्यों मार रहे हो? जवाब मिला—यह भगवान् के चरण से उत्पन्न है, इसलिये जघन्य और निकृष्ट है, इसने मुझे अपवित्र कर दिया है! फिर तुलसी साहब ने ब्राह्मण देवता से पूछा—आप गङ्गा नहाने क्यों आये। इस पर जवाब मिला— गंगा विष्णुपादोद्भवा हैं, इसलिये पतितपावनी हैं। तुलसी साहब ने कहा—हाय, जिस चरण से उत्पन्न होकर जलमयी गङ्गा पतित-पावनी हुई, उसी चरण से उत्पन्न होकर शूद्र ऐसा दीन हीन पतित हुआ कि जिसे छू दे वही अपवित्र हो जाय!

यह तुलसी साहब अत्यन्त सम्भ्रान्त कुलीन ब्राह्मण वंश में उत्पन्न हुए थे। इनका यह वाक्य काठक संहिता के उपर्युक्त मंत्र के रचयिता महर्षियों की सन्तान के ही उपयुक्त है।

जाति व्यवस्थापर आक्रमण

जब वर्णाश्रम धर्म प्रवर्तित हुआ तो उसके साथ एक बहुत ऊंचा आदर्श भी लोक-नेताओंके सामने जरूर रहा होगा। यही कारण है कि उन्होंने ब्राह्मण का स्थान जितना ऊंचा रखा उतना ही उसकी जवाबदेही भी अपरिसीम रख दी। यदि सभी लोग ब्राह्मणको पूज्य मानें तो तपस्वी ब्राह्मणगण भी सरल

अनाडंबर जीवनके साथ गम्भीर ज्ञान उच्च आदर्श और कठोर तपस्याके समन्वयसे समाजको थोड़े ही व्ययसे अग्रसर कर सकें। निश्चय ही यह बहुत बड़ा आदर्श है। यही कारण है कि उन दिनों आदर्शरक्षाका अर्थ ही होता था ब्राह्मण-रक्षा। यही कारण है कि उन दिनों समाजकी स्थितिके लिये ब्राह्मण-रक्षाकी इतनी व्याकुलता प्राचीन ग्रन्थों में दिख जाती है। किन्तु यदि आदर्शके साथ ब्राह्मणका नित्य योग न हो, तो ब्राह्मण-रक्षाका कोई अर्थ ही नहीं होता। फिर तो इतिहासके ही निकट प्रश्न करना पड़ेगा! दुर्भाग्यवश आदर्शके साथ योग बहुत दिनों तक टिका नहीं रह सका। जहां श्रद्धा और सम्मान सहज ही मिल जाता हो, और इसके लिये किसी कठोर तपस्याकी आवश्यकता न समझी जाती हो, वहां आदर्शसे भ्रष्ट होनेमें कितनी देर लगती है? ऐसी हालतमें तपस्या और आदर्श धीरे धीरे शक्तिहीन और निर्वीर्य हो जाते हैं। सात्विकता और राजसिकताके स्थान पर भी जड़ तामसिकता विराजमान होती है।

इसी प्रकार धीरे धीरे तपोभूमि, तीर्थों और मठोंसे व्याप्त हो गई। आचार्य और तपस्वीगण महन्तों और पण्डोंके रूपमें प्रकट हुए! जिन लोगोंके ऊपर समाजके नेतृत्वका भार था वे लोग सरल और अनाडम्बर जीवन छोड़कर बड़ी बड़ी नौकरियों और जघन्य व्यवसायों में जा फँसे। पैसा ही उनका ध्येय हो उठा। ऐसी अवस्थामें वे अगर पुराने सम्मानका लोभ न छोड़े तो काम कैसे चलेगा? दोनों ओरकी सुविधा क्या एक ही साथ भोगी जा सकती है। 'हंसब ठठाइ फुलाउब गालू' एक साथ कैसे होंगे? क्या ही अच्छा हो यदि वे लोग स्वेच्छासे कोई एक ही सुविधा चुन लें—पुराना सम्मान या नया आराम। दोनोंका लोभ न करें तभी कल्याण है।

शास्त्र जोर देकर कहते हैं कि ब्राह्मणका आदर्श उच्च और महान होना चाहिये। उस आदर्शसे भ्रष्ट होने पर जन्मसे ब्राह्मण होनेपर भी उसका

ब्राह्मणत्व जाता रहता है। इसीलिये स्कन्द पुराण कहता है कि राजद्वारपर वेद बेचनेवाला ब्राह्मण पतित है (प्रभास खण्ड, प्रभास क्षेत्र महात्म्य २०७। २२–२७), सदाचारहीन, सूदखोर और दुर्विनीतिपरायण ब्राह्मण शूद्र हैं (वही २८-३४)। सूदखोर तो अस्पृश्य होता है। आपत्तिकालमें यदि कोई सूद-खोरीसे जीविका निर्वाह करे, तो स्नान करनेसे महज उस समयके लिये पवित्र हो सकता है। यहां तक कि क्रियाकर्मान्वित होकर भी यदि ब्राह्मण वेद विद्या हीन हो, तो वह शूद्र हो जाता है। (सौरपुराण १७।३६-३९)।

लेकिन केवल वेद पढ़ना ही ब्राह्मणत्वके आदर्शके लिये पर्याप्त नहीं है। वेद पढ़ कर भी विचारपूर्वक जो उसका तत्व न समझ सके वह ब्राह्मण शूद्र-कल्प अपात्र है (पद्मपुराण, स्वर्गः २६।१३५)।

उस युगमें जो लोग लोकमतकी परिचालना करना चाहते थे, उनके अन्तर में जो महान आदर्श था, वह आदर्श समाज-व्यवस्थामें अग्रसर हो सके, यही उनकी कामना थी। इसीलिये वर्णाश्रम व्यवस्थामें मानव मात्रकी सार्थकता और परम कल्याण ही उनका उद्देश्य था। जहां आदर्श और उद्देश्य रहते हैं, वहां मनुष्यकी विचार-बुद्धि जाग्रत् रहती है। जहां कोई भी आदर्श और लक्ष्य नहीं हैं, वहां विचार किस बातका होगा? इसीलिये उन दिनों जब जाति-भेदकी व्यवस्थासे उनका महत्तम उद्देश्य सिद्ध नहीं हुआ, उस समय उन दिनों इस सम्बन्धमें तीव्र विचार जागृत हुए थे। आज उद्देश्य और आदर्शकी कला भी नहीं है, इसीलिये विचार-वितर्ककी झंझट भी नहीं है। प्राचीन कालकी तुलना में आजकल हमारा चित्र तामसिकतासे भर उठा है। फिर भी कभी कभी हम लोगोंके मनमें भो विचार-बुद्धि जागृत हो जाया करती है।

केवल इसी युगमें, विदेशियों के संसर्गसे ही हम लोगोंने इस भेदके विषय में नये सिरेसे सोचना शुरू किया हो सो बात नहीं है। आउल-बाउल आदि

साधक बहुत दिनोंसे इस विषयमें सबको सचेतन कर रहे हैं। कबीर, रैदास, तुकाराम, नानक, दादू आदि मध्ययुगीन महापुरुषोंने बारम्बार इन विषयोंमें अपनी तीव्र वाणी व्यवहार की है। जाति-भेद जितना दाक्षिणात्यमें कठोर है उतना और कहीं भी नहीं! इसीलिये तामिल और तेलेगु कवियोंकी वाणीमें भी इसके विरूद्ध तीव्र घोषणा है।

तामिल देशमें अगस्त्य लिखित कहा जानेवाला प्रसिद्ध एक तामिल ग्रन्थ है—'जाति-भेद मनुष्य की रची हुई ही व्यवस्था है, उद्देश्य सहज ही अन्न जुटा लेना है। वेद ब्राह्मणोंको पोसने के लिये ही रचित हैं!' तामिल कवि सुब्रह्मण्य कहते हैं—'जन्म और मृत्यु सबके समान भाव से ही आते हैं। इनमें कहीं भेद नहीं है।' सूक्ष्म वेदान्त ग्रन्थमें भी ऐसी ही बात कही गई है—जिस दिन से स्त्रियां शूद्र हुई उस दिन से ब्राह्मण के वीर्य से शूद्र-क्षेत्रमें उत्पन्न सभी ब्राह्मण 'पारशव' हुए, क्योंकि ब्राह्मण-कन्या होनेसे क्या हुई। हैं तो सभी स्त्रियां शूद्र ही न? फिर पारशव के गर्भ से शूद्रा की जो सन्तान होगी उसकी जाति क्या है? इन अनन्त पारशवोंसे उत्पन्न जो लोग अपने को ब्राह्मण कहते हैं उनका ब्राह्मणत्व कहां है?

तेलेगु कवि वेमन कहते हैं—"जन्म के समय कहां थी गायत्री और कहां उपवीत? सूत्र (जनेऊ)-हीना माता तो शूद्रा है। उसका पुत्र ब्राह्मण कैसे होगा? इसीलिये सभी समान हैं, सभी भाई हैं। सबका जन्म एक ही तरहसे हुआ है, सबके रक्त और मांस एक ही हैं। फिर क्यों इतना भेद-विभेद चलाते हो। क्यों नहीं भाई भाई मिल कर रहते? (What the castes are, Wilson, Vol, II, P. 90)

वीरशैव सम्प्रदाय के प्रवर्तक बसव और रमय्य इन्होंने इस जाति-भेदके मूलमें ही कुठाराघात किया है। जैनों और बौद्धों ने भी इस प्रथा पर प्रबल भावसे आक्रमण किया है।

महाभारतमें भी कुछ इस ढंग की बात कही गई है। युधिष्ठिरने कहा है कि शूद्र वंश में होने से ही कोई शूद्र नहीं होता और न ब्राह्मण वंशमें होनेसे कोई ब्राह्मण होता है। जिनमें सत्य, दान, क्षमा, आनृशंस्य, तप और दया होती है, वे ही ब्राह्मण हैं। जिनमें ये नहीं हैं वे ही शूद्र हैं (वनपर्व १०८।२१-२६)। इस प्रसंग में भृगु और भरद्वाजके संवाद को याद किया जा सकता है जिसकी चर्चा पूर्ववर्ती अध्यायमें हो चुकी है।

आदिपर्वमें जब भीष्मने कर्ण के जन्म के सम्बन्ध में व्यंग्य किया था तो दुर्योधन ने कहा था कि नदियों और शूरोंके उत्पत्तिस्थल दुर्ज्ञेय होते हैं[1]। अग्नि की उत्पत्ति जल से हुई, अथच चराचर उससे व्याप्त है, दधीचि की हड्डियों से दानव-सूदन वज्र की उत्पत्ति हुई। अश्विनी, कृत्तिका, रुद्र और गंगासे कार्तिकेय की उत्पत्ति है (१३७।१३) क्षत्रिय कुलोत्पन्न विश्वामित्रादिने अव्यय ब्राह्मणत्व प्राप्त किया था (१३७।१४), कलशसे उत्पन्न होकर भी द्रोणाचार्य शास्त्रधारियों में श्रेष्ठ हुए हैं। गौतमवंशीय गौतमका जन्म शरस्तंब से हुआ था (१५), हे पाण्डवों, तुम्हारी जन्मकथा भी तो हमें अज्ञात नहीं है (१३७-६१)।

दक्षिण देश में 'कपिलद्वीपम्' नामक एक 'जात पांत तोड़क' ग्रन्थ है। तेलगु के शूद्र कवि वेमनने भी इस व्यवस्था के प्रति प्रचण्ड आघात किया है।

परन्तु वज्रसूची या वज्रसूचिकोपनिषद् में इन बातोंपर प्रचण्डतम आघात किया गया है। इस ग्रन्थ के रचयिता का कुछ पता नहीं चलता। सन् १८२९ में हडसनने नेपाल में यह ग्रन्थ पाया था, वहां उन्होंने सुना था कि ग्रन्थ के रचयिता अश्वघोष हैं, जिनका समय विंटरनित्सके मतसे सन् ईसवी की दूसरी शताब्दी है। सन १७१० में लिखी हुई इस ग्रन्थ की एक प्रति नासिक में प्राप्त

१—शूराणां च नदीनां च दुर्विदाः प्रभवाः किल। (१३७। ११)

हुई। स्थानीय पण्डितोंने बताया था कि इसके रचयिता शङ्कराचार्य हैं। सन् ९७३-९८१ ई० में चीनमें इस ग्रन्थका चीनी अनुवाद हुआ था। वहां यह ग्रंथ धर्मकीर्तिका लिखा बताया जाता है। किन्तु इस देशमें यह ग्रंथ उपनिषद् नामसे मशहूर है और उपनिषद्‌का कोई कर्त्ता नहीं होता! इस समय मेरे हाथमें जो कई प्रतियां इस ग्रंथ की हैं, उसमें से किसीसे भी इसके रचयिताका पता नहीं चलता। वासुदेव लक्ष्मण शास्त्री पणसीकर रचित ग्रंथमें और खेमराज श्रीकृष्ण दास प्रकाशित ग्रंथमें केवल मूल ही है। आड्यारके महादेव शास्त्रीके संस्करण में श्रीवासुदेव-शिष्य उपनिषद् ब्रह्मयोगीकी एक व्याख्या भी है। श्रीमहेन्द्र तत्त्व-निधि विद्याविनोदके संस्करणमें बंगला अनुवाद भी दिया हुआ है। इस ग्रंथकी विचार्य वस्तु यह है कि ब्राह्मण कौन है? जीव या देह या जाति या ज्ञान या कर्म या धर्मसे ब्राह्मण नहीं होता। अद्वितीयात्माका साक्षात्कार होनेसे ही ब्राह्मण होता है।

यह ग्रंथ अत्यन्त तीव्र भाषामें और साथ ही युक्तियुक्त भावसे लिखा गया है। राजा राममोहन राय इसकी विचारप्रणाली को देखकर विस्मित हुए थे। कुछ अंश उद्धृत करके दिखाये बिना समझना मुश्किल है कि इसका विचार पद्धति कैसी संहत, संयत और शक्तिशाली है। इसीलिये यहां उसके कुछ अंश उद्धृत किये जा रहे हैं—

"प्रश्न यह है कि ब्राह्मण कौन है? जीव, देह, जाति, ज्ञान, कर्म, या धर्मी? इनमें ब्राह्मण कौन है[1]?

"पहले विचार किया जाय कि क्या जीव ब्राह्मण है? ऐसा नहीं हो सकता। क्योंकि अतीत और अनागत कालमें नाना जातीय देहोंमें जो जीव चल रहा है वह एकरूप है, एक ही जीवके कर्मवश अनेक देह पैदा होते हैं। इस प्रकार

१—तत्रचोद्यमस्ति को वा ब्राह्मणो नाम, किं जीवः, किं देहः, किं जातिः, किं ज्ञानम् किं धार्मिक इति।

सर्व शरीरके जीवके एकरूपत्वकी बात सोचनेसे जान पड़ता है कि जीव ब्राह्मण नहीं हो सकता[१]।"

"तो फिर क्या देह ब्राह्मण है? नहीं। आचाण्डाल सभी मनुष्योंके शरीर पांचभौतिक और एक ही तरह के हैं। सर्वत्र ही जरा-मरण धर्मकी एकता दिखती है। ऐसा तो कोई नियम नहीं दिखाई देता कि ब्राह्मण श्वेतवर्णका, क्षत्रिय रक्त वर्णका, वैश्य पीत वर्णका और शूद्र कृष्ण वर्ण का हो। देह अगर ब्राह्मण होता तो पिताके मृत देहको दाह करनेपर पुत्रको ब्रह्महत्या का पाप होता। पर ऐसा तो होता नहीं। इसलिये देह ब्राह्मण नहीं है[२]।"

"तो फिर क्या जाति ब्राह्मण है? नहीं। ऐसा होता तो जात्यन्तर-विशिष्ट अनेक जन्तुओंमें भी अनेक जातियां होतीं। मनुष्य जातिके सिवा भी अन्य जातिसे बहुतसे महर्षियोंका जन्म हुआ है। मृगीसे ऋष्यशृंग, कुशसे कौशिक, जम्बुक से जाम्बुक, वल्मीकसे वाल्मीकि, कैवर्त-कन्यासे व्यास, शशपृष्ठसे गौतम, उर्वशी से वशिष्ठ, कलशसे अगस्त्य उत्पन्न हुए थे, ऐसी श्रुति है। जातिके विना भी ज्ञान-संपन्न बहुत ऋषि हैं। इसीलिये जाति ब्राह्मण नहीं है[३]।"

१—तत्र प्रथमो जीवो ब्राह्मण इतिचेत्तन्न। अतीतानागतानेकदेहानां जीवस्यैकरूपत्वात् एकस्यापि कर्मवशादनेकदेहसंभवात् सर्व-शरीराणां जीवस्यैकरूपत्वाच्च। तस्मान्न जीवो ब्राह्मण इति।

२—तर्हिदेहो ब्राह्मण इतिचेत्तन्न। आचण्डालादिपर्यन्तानां मानुषाणां पांचभौतिकत्वेन देहस्यैकरूपत्वात् जरामरणधर्मादिसाम्यदर्शनात्। ब्राह्मणः श्वेतवर्णः क्षत्रियो रक्तवर्णः वैश्यः पीतवर्णः शूद्रः कृष्णवर्णः इति नियमाभावात्, पित्रादिशरीरदहने पुत्रादीनां ब्रह्महत्यादिदोष-संभवाच्च। तस्मान्नदेहो ब्राह्मण इति।

३—तर्हि जातिर्ब्राह्मण इति चेत्तन्न। तत्र जात्यन्तरजन्तुषु अनेकजाति

तो फिर क्या ज्ञान ब्राह्मण है ? नहीं । अभिज्ञ और परमार्थदर्शी क्षत्रिय भी तो अनेक हैं । इसलिये ज्ञान ब्राह्मण नहीं है[१] ।

तो फिर क्या कर्म ब्राह्मण है ? नहीं । सभी प्राणियोंके प्रारब्धसंचित और आगामी कर्मोंकी समता दिखती है । कर्मसे अभिप्रेरित होकर ही सब लोग कर्म करते हैं । इसीलिये कर्म ब्राह्मण नहीं हो सकता[२] ।

तो क्या धार्मिक ब्राह्मण है ? नहीं । हिरण्यदाता क्षत्रिय वैश्य और शूद्र भी तो अनेक हैं । इसीलिये धार्मिक ब्राह्मण नहीं है[३] ।

तो फिर ब्राह्मण कौन है ? वह, जो अद्वितीय जाति-गुण-क्रियाहीन सत्य ज्ञानानन्तस्वरूप आत्माका साक्षात्कार प्रत्यक्ष भावसे करता है । यही स्मृति-श्रुति-पुराण-इतिहासका अभिप्राय है । अन्यथा और किसी प्रकारसे ब्राह्मणत्वकी सिद्धि नहीं हो सकती[४] ।

संभवा महर्षयो बहवः सन्ति । ऋष्यश्रृंगः मृग्याः, कौशिकः कुशात्, जम्बूको जम्बूकात्, वाल्मीको वल्मीकात्, व्यासः कैवर्त-कन्यायाम्, शशपृष्ठात् गौतमः, वसिष्ठ उर्वस्याम्, अगस्त्यः कलशे जात इति श्रुतत्वात्। एतेषां जात्या विनाऽपि अग्रे ज्ञानप्रतिपादिता ऋषयो बहवः सन्ति। तस्मान्नं जातिर्ब्राह्मण इति ।

१—तर्हि ज्ञानं ब्राह्मण इति चेत्तन्न क्षत्रियादयोऽपि परमार्थदर्शिनः अभिज्ञाः बहवः सन्ति । तस्मान्न ज्ञानं ब्राह्मण इति ।

२—तर्हि कर्म ब्राह्मण इति चेत्तन्न । सर्वेषां प्राणिनां प्रारब्ध संचितागामि कर्मसाधर्म्यदर्शनात् । कर्माभिप्रेरिताः सन्तो जनाः क्रियाः कुर्वन्तीति । तस्मान्न कर्म ब्राह्मण इति ।

३—तर्हि धार्मिको ब्राह्मण इति चेत्तन्न । क्षत्रियादयो हिरण्य दातारो बहवः सन्ति । तस्मान्न धार्मिको ब्राह्मण इति ।

४—तर्हि को ब्राह्मणो नाम । यः कश्चिदात्मानमद्वितीयं जातिगुण-

यहीं भविष्यपुराणकी भी बात याद की जा सकती है। इस पुराणमें (ब्राह्मपर्व अध्याय ४१,४२) वर्णाश्रम धर्मपर ठीक इसी प्रकार कठोर आक्रमण किया गया है—जिसलिये सम्मान्य शूद्र और सम्मान्य ब्राह्मण, ये दोनों सामग्री और अनुष्ठानमें समान ही हैं, इसीलिये ब्राह्मण और शूद्रमें वाह्य या आध्यात्मिक कोई भेद नहीं है[१]। इसके वाद तीव्र भाषामें पुराणकारने दिखाया है कि जाति-जातिमें और सम्प्रदाय-सम्प्रदायमें कोई भेद नहीं है। भेद न तो वाहर हैं न भीतर, न सुखमें, न ऐश्वर्यमें, न आज्ञामें, न भयमें, न वीर्यमें, न आकृतिमें, न ज्ञान-दृष्टिमें, न व्यापारमें, न आयुमें, न अंगकी पुष्टिमें, न दुर्वलता में, न स्थिरतामें, न चंचलतामें, न बुद्धिमें न वैराग्यमें, न धर्ममें, न पराक्रममें, न त्रिवर्गमें, न नैपुण्यमें, न रूपादिमें, न औषधमें, न स्त्रीगर्भमें, न गमनमें, न देहके मल-मोचनमें, न हड्डीके छेदमें, न प्रेममें, न क़दमें, और न लोम में [२]।

क्रियाहीनं सत्यज्ञानानंदानन्तस्वरूपं...साक्षादपरोक्षीकृत्य...वर्तते...स..एव ब्राह्मण इति श्रुति-स्मृति-पुराणेतिहासानामभिप्रायः। अन्यथाहि ब्राह्मणत्वसिद्धिर्नास्त्येव।

१—सामग्र्यानुष्ठानगुणैः समग्राः
शूद्रा यतः सन्ति समाद्विजानाम्।
तस्माद्विशेषो द्विजशूद्रनाम्नो—
नाध्यात्मिको बाह्यनिमित्तको वा (४१।२९)

२—तस्मान्नच विभेदोऽस्ति न वहिर्नान्तरात्मनि।
न सुखादौ न चाश्वैर्ये नाज्ञायां ना भयेष्वपि।
न वीर्ये नाकृतौ नाक्षे न व्यापारे न चायुषि।
नांगे पुष्टे न दौर्बल्ये न स्थैर्ये नापि चापले।
न प्रज्ञायां न वैराग्ये न धर्मे न पराक्रमे॥

पुराणकार यही नहीं कहते। आगे बढ़ कर और कहते हैं कि अति यत्न-पूर्वक सभी देवता मिलकर भी खोजें तो ब्राह्मण और शूद्रमें कोई भेद नहीं पावेंगे [१]। और "ब्राह्मण लोग भी चांदकी किरणके समान शुक्ल वर्ण नहीं हैं क्षत्रिय लोग भी किंशुक पुष्पसे लाल नहीं हैं, वैश्य लोगभी हरतालके समान पीले नहीं हैं और शूद्र कोयले के समान काले नहीं हैं[२]।

चलना, फिरना, शरीर, वर्ण, केश, सुख, दुःख, रक्त, त्वक्, मांस, मेद, अस्थिरस—इनमें सभी तो समान हैं। फिर चार वर्णोंका भेद कहां है? (४२); वर्ण, प्रमाण, आकृति, गर्भवास, वाक्य, बुद्धि, कर्म, इन्द्रिय, प्राण, शक्ति, धर्म, अर्थ, काम, व्याधि, औषध—इनमें कहीं भी तो जातिगत प्रभेद नहीं है (४३); जिस प्रकार एक ही पिताके चार पुत्रोंकी जाति एक ही होती है, उसी प्रकार सभी प्रजाओं का वह (भगवान्) एकमात्र पिता है। इसीलिये जातिभेद नहीं है[३]। इसके वाद वज्रसूची उपनिषद्के समान ब्राह्मणकी उत्पत्तिमें देहादि अवयवमें कहीं भी भेद नहीं, यह दिखाया गया है (४१।४७-५७)।

न त्रिवर्गे न नैपुण्ये न रूपादौ न भेषजे।
न स्त्रीगर्भे न गमने न देहमलसंप्लवे।
नास्थि रंध्रे न च प्रेम्णि न प्रमाणे न लोमसु।
(४१।३५-३८)

१—शूद्र ब्राह्मणयोर्भेदो मृग्यमाणोऽपि यत्नतः।
नेक्ष्यते सर्वधर्मेषु संहतैस्त्रिदशैरपि। (४१,३९)

२—न ब्राह्मणाश्चन्द्रमरीचिशुक्ला
न क्षत्रियाः किंशुकपुष्पवर्णाः।
न चेह वैश्या हरितालतुल्याः
शूद्रा न चांगारसमानवर्णाः। (४१,४१)

३—पादप्रचारैस्तनुवर्ण, केशैः सुखेन दुःखेन च शोणितेन।

४२ वें अध्याय में और भी दिल खोल कर जातिभेद पर आक्रमण किया गया है। पुराणकार कहते हैं कि कैवर्तीके गर्भसे व्यास, चण्डालकन्याके गर्भसे पराशर, शुकीके गर्भसे शुकदेव, उलूकीके गर्भसे कणाद, मृगीके गर्भसे ऋष्य-श्रृङ्ग, गणिका-गर्भसे वशिष्ठ, नाविकासे मुनिश्रेष्ठ मंदपाल, मण्डूकी के गर्भसे मुनिराज माण्डव्यका जन्म है। ऐसे और भी बहुतसे लोग विप्रत्व प्राप्त कर चुके हैं (४२।२२-२४)।

ये लोग जातिसे नहीं बल्कि तपस्यासे सिद्धि प्राप्त कर सके हैं। (४२। २६-३०)। आगे चल कर ४३ वें और ४४ वें अध्यायमें यही विचार चलता है और वहां यह बताया गया है कि जन्मसे नहीं बल्कि चरित्र और तपसे उच्चता आती है। वाह्यविधिके ऊपर प्रतिष्ठित वर्णभेद, नितान्त भौतिक और मिथ्या है। अनुसंधित्सु पाठक वहीं देख सकते हैं।

इस प्रकारकी बातें और भी नाना पुराणोंमें और ग्रन्थोंमें पाई जाती हैं। यहां नमूने के तौरपर कुछ संग्रह किये गये हैं। इससे मालूम होता है कि उन दिनों इन सब विषयोंमें लोगोंका चित्त सचेत था। प्रायः ब्राह्मणोंको जातिभेदके लिये दोष दिया जाता है पर यह याद रखना चाहिये कि जातिभेदके विरुद्ध सबसे अधिक तीव्र आक्रमण जिन प्राचीन ग्रन्थोंमें किया गया है, वे अधिकांश ब्राह्मणोंके ही लिखे हुए हैं।

त्वङ्मांसमेदोऽस्थिरसैः समानाश्चतुः प्रभेदा हि कथं भवन्ति। ४२
वर्णप्रमाणाकृतिगर्भवासवाग्बुद्धिकर्मेन्द्रियजीवितेषु।
बलत्रिवर्गाभयमेषजेषु न विद्यते जातिकृतो विशेषः। ४३
चत्वार एकस्य पितुः सुताश्च तेषां सुतानां खलु जातिरेका।
एवं प्रजानां हि पितैक एव पित्रैकभावान्न च जातिभेदः॥ ४५
(भविष्यपुराण ४१ अध्याय)

प्राचीन कालमें वीरशैव मतके स्थापयिता आचार्य, वसवने जो स्वयं ब्राह्मण थे, जातिभेदके विरुद्ध युद्ध घोषणा की थी। इस युगमें ब्राह्मसमाजके प्रवर्तक राममोहन राय भी ब्राह्मण ही थे। उन्होंने यद्यपि प्रत्यक्ष भावसे जातिभेदके विरुद्ध कुछ नहीं कहा पर कार्यतः उनकी साधना जातिभेदके विरुद्ध गई। आर्यसमाजके प्रवर्तक स्वामी दयानन्द भी ब्राह्मण ही थे। इन्होंने गुणकर्मके अनुसार वर्ण माना है। मध्ययुगके रामानन्द ब्राह्मण ही थे। भक्त साधक ढेढराज भी ब्राह्मण थे। इन दोनोंने जातिभेद पर कठोर आघात किया है।

खूब संभव है कि वज्रसूचीके रचयिता भी कोई ब्राह्मण आचार्य ही होंगे। तुलसी साहब हाथरसी प्रभृति ब्राह्मण वंशोत्पन्न ऐसे बहुतसे धर्मगुरु हैं, जिन्हों-ने जातिभेद पर तीखा आक्रमण किया है। आज भी जो लोग समाज-संस्कारके व्रतमें व्रती हैं वे ब्राह्मणादि उच्च वर्णके ही लोग हैं। आश्चर्यकी बात है कि इन्हें सबसे अधिक विरोध तथाकथित निम्नतर वर्णोंकी ओरसे ही सहन करना पड़ता है।

समाज संस्कारके समस्त क्षेत्रोंमें ब्राह्मणोंको ही आगे आते देखा जाता है। विधवा विवाहके प्रवर्तक स्व० ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ब्राह्मण थे। जिन्होंने पहले पहल विधवा कन्याओं का व्याह कराया था, वे सभी ब्राह्मण ही थे। बेथुन कालेज नामक बंगालके प्रसिद्ध बालिकाविद्यालयके आदि प्रवर्तक ब्राह्मण ही थे। जब कि सब जगहसे स्त्री-शिक्षाका विरोध हो रहा था; उस समय पहले पहल ब्राह्मणोंने ही अपनी कन्याओं को वहां पढ़नेके लिये भेजा था।

परवर्तीकालमें जातिभेद

धीरे धीरे इस देशमें चारों ओरके प्रभावमें पड़ कर प्राचीन आर्योंका उदारतायुक्त विचार विमर्श संकीर्ण होता गया। उन्होंने अब नये सिरेसे यह कहना शुरू किया कि यद्यपि पूर्व युगोंमें ये विधियां चलती थीं पर इस कलि-काल में नहीं चल सकतीं। निर्णयसिन्धुकार, इसीलिये कहते हैं कि समुद्र-यात्रा, सन्यास-ग्रहण, द्विजोंका असवर्ण विवाह कलियुगमें निषिद्ध है[१]। विधाना-नुसार यतियोंका सब जातिका अन्नग्रहण और ब्राह्मणोंका घरमें शूद्र पाचक रखना कलिमें निषिद्ध हुआ[२]।

वैद्यनाथके वर्णाश्रम काण्ड में भी है कि द्विजगण सब द्विजोंका अन्न ग्रहण कर सकते हैं, सब जातियोंके घर भी अन्न ग्रहण कर सकते हैं और ब्रह्मचारी प्रयोजन होनेपर सभी जातियोंके घर भिक्षा मांग सकते हैं। किन्तु ब्राह्मणके घर कलियुगमें शूद्र पाचक नहीं चल सकता(Shama,Shastri P.77)

कलियुगमें यह व्यवस्थायें नहीं चल सकतीं, इस विधिसे ही प्रकट है कि अन्य युगोंमें चलती थीं। परवर्ती पण्डितों को इन्हें बन्द करनेके लिये बहुतसे पण्डितोंकी बहुतसी बातोंकी दुहाई देनी पड़ी है। पर आज ये बातें ऐसी अप्रचलित हो गई हैं कि हजार शास्त्र वाक्य और युक्तियां इनमें कोई हलचल नहीं पैदा कर सकतीं।

१—समुद्रयातुः स्वीकारः कमण्डलुविधारणम्।
द्विजानामसवर्णासु कन्यासूपयमस्तथा।
(तृतीय पूर्वार्ध, चौखंबा संस्करण, पृ०१२८७)

२—यतेश्च सर्ववर्णेषु भिक्षाचर्या विधानतः
ब्राह्मणादिषु शूद्रस्य पचनादि क्रियापि च।
(तृतीय पूर्वार्ध पृ०१३००)

पराशर स्मृतिने निम्नलिखित बातोंको भी कलिमें निषिद्ध कहा है—

(१) द्विजोंका असवर्ण विवाह[१]।

(२) शूद्रभृत्योंके हाथसे ब्राह्मणादिका अन्नग्रहण[२]।

(३) यतियोंका सर्व वर्णका अन्नग्रहण[३]।

पहले जमानेमें ब्राह्मणादिके घरमें शूद्र रसोइये होते थे। बादमें निषेध हो गया[४]।

याज्ञवल्क्यके ब्रह्मचारिप्रकरणमें वीरमित्रोदयमें लिखा है कि व्यासका कथन है कि ब्रह्मचारी सब वर्णोंके गृहका अन्न ग्रहण कर सकते हैं (२९) फिर भविष्य पुराण उद्धृत करके कहते हैं ब्रह्मचारी गण प्रयोजन होनेपर सब वर्णोंका अन्न ग्रहण करेंगे (चौखंबा पृ० ९१)। इनके मतसे ऐसा जान पड़ता है कि शूद्रान्न अच्छा नहीं है, किन्तु आपत्कालमें उसे खाकर मनस्तापसे शुद्धि होती है (आपस्तंम्ब संहिता ८।२०)।

Caste and race in India में (पृ० १३)अध्यापक घुरेने दिखाया है कि क्रमशः परवर्ती कालमें जातिभेदकी तीव्रता इतनी दूर बढ़ गई थी कि माधवके मनसे शूद्रके साथ एक गृहमें वास करना या एक सवारीपर जाना भी अवैध कहा गया। शूद्रका अन्न अभक्ष्य बताया गया। यदि उसका अन्न घृत, तैल या

१—कन्यानामसवर्णानां विवाहश्च द्विजातिभिः।

२—शूद्रे षु दास गोपाल-कुलमित्र-र्द्धसीरिणाम्।
भोज्यान्नयता………………।

३—यतेस्तु सर्ववर्णेभ्यो भिक्षाचर्या विधानतः।

४—ब्राह्मणादिषु शूद्रस्य पचनादिक्रियापि च।
पराशरमाधव (चन्द्रकान्त तर्कालंकार) प्रथम अध्याय, आचारकाण्ड, पृ० १२३-१२५।

दुग्धमें पकाया गया हो, तो नदी-तीरपर खाया जा सकता है। पराशरके मतके ऊपर ही उक्त आचार्य (माधव) ने अपना मत स्थापित किया है।

चतुर्वर्गचिन्तामणिकार हेमाद्रिका कहना है कि शूद्रका दिया हुआ अन्न यदि ब्राह्मण स्वयं भी रन्धन करे तब भी उसे शूद्र-गृहमें बैठकर खानेसे पाप होता है। शूद्रान्नको निषिद्ध करार देनेके लिये कमलाकरको अनेक शास्त्रीय वाक्योंकी व्याख्या करनी पड़ी है (Ghurye.,P. 93)।

दक्षिण देशमें धीरे धीरे व्यवस्था ऐसी हुई कि राह चलते समय ब्राह्मणके आगे आगे चलकर एक आदमी हीन जातिके लोगोंको हटाया करता है। ब्राह्मणको देख कर लोग सवारीपरसे उतरनेको मजबूर होते हैं। अन्तरजन्मा जातिकी कोई कन्या यदि विवाहके पहले ही मर जाय, तो ब्राह्मण बुलाकर पहले उसके गलेमें विवाह सूत्र बांधते हैं तब उसका दाह हो सकता है। शूद्र और ब्राह्मणके घर एक पंक्ति में नहीं बन सकते। काठके कूर्मपृष्ठासन पीढ़ेपर ब्राह्मणके सिवा किसी औरके बैठनेपर पुराने ज़माने में उसको प्राणदण्ड हुआ करता था। क्षत्रियकन्याओं के साथ ब्राह्मण ही सहवास कर सकते हैं। शायद उनका अन्न ब्राह्मणके लिये दूषित नहीं है (What castes are ? J.Wilson, Vol II, P 76-77) ब्राह्मणी के सिवा अन्य जातिकी स्त्रियां नाभिके ऊपरका अङ्ग वस्त्रसे नहीं ढंक सकतीं (वही पृ० ७९)।

शवसंस्कारके विषयमें स्वर्गीय राजा राजेन्द्रलाल मित्रने विचारपूर्ण आलोचना की है। (Indo Aryan) ग्रंथमें ये लिखते हैं कि पहले सूत्र युगमें रवाज था कि ब्राह्मणादि जातियों के मृत देहको वृद्ध दासगण श्मशानमें ले जाते थे[१]।

१—अथैनमेतया आसन्द्या सह तत्तल्पेन कटेन वा संवेष्ट्य दासाः प्रवयसो वहेयुः।

पर मनुके युगमें यह व्यवस्था अचल हो गई। तब ब्राह्मणादि का मृत देह शूद्रके स्पर्शसे दूषित समझा जाने लगा[१]। विष्णु कहते हैं कि मृत द्विजको शूद्र से और मृत शूद्रको द्विजातिसे वहन कराना निषिद्ध है[२]। यम और भी आगे बढ़कर कहते हैं कि शूद्रकी अग्निसे या शूद्रके ले आये हुए काठसे मृत देह नहीं जलाया जा सकता[३]। वृहन्मनुने और भी घोषित किया कि द्विजके गृहमें यदि कुत्ता शूद्र या अन्त्यज मर जाय, तो उसे अशौच होता है[४]।

अब सवाल यह है कि पुराने जमानेमें तो इतना बन्धेज नहीं था। कलिके पहले असवर्ण विवाह भी चलता था और शूद्रके हाथसे पकान्न भी ब्राह्मण लोग ग्रहण करते थे। कलियुगमें यह निषिद्ध कैसे हुआ? शाम शास्त्री कहते हैं कि बौद्ध और जैनधर्मका वैराग्य प्रधान मत और कृच्छ्राचार ही इसके कारण हैं (पृ० ९)। ऊंचे वर्णके लोगोंने जीव हिंसा छोड़ी, शूद्रोंने नहीं छोड़ी, इसी-लिये इनके हाथका अन्न निषिद्ध हुआ (पृ० ११)। राजा राजेन्द्रलाल मित्र कहते हैं कि बौद्ध पड़ोसियों के अनुरोधसे हिन्दुओंने गोमांस खाना छोड़ा (Indo Aryan, Vol38 I, P,8)।

१—न विप्रं स्वेषु तिष्ठत्सु मृतं शूद्रेण नाययेत्।
अस्वर्ग्या ह्याहुतिः सा स्याच्छूद्रसंस्पर्शदूषिता।

२—मृतं द्विजं न शूद्रेण न च शूद्रं द्विजातिना।

३—यस्यानयति शूद्रोऽग्निंतृणकाष्ठहवींषि च।
इत्यादि।

४—श्वशूद्रपतितश्चान्त्या मृताश्चेद्विजमन्दिरे।
शौचं तत्र प्रवक्ष्यामि मनुना भावितं यथा॥
(वहीं पृ० १२१)

यहां एक वातका ध्यान आता है। बौद्ध युगमें वर्णाश्रम और सामाजिक व्यवस्थामें अनेक हेरफेर हो गया था। ऐसी अवस्था प्रायः हजार डेढ़ हजार वर्ष तक चलती रही। इसके बाद जब वर्णाश्रम व्यवस्था पुनः स्थापित हुई, तो चतुर्वर्णका ठीक ठीक विभाग कैसे हुआ? यदि कहा जाय कि परवर्ती वर्णाश्रमी गण सभी आगेके वर्णाश्रमियों की सन्तान हैं, तो फिर सवाल यह उठता है कि वर्णाश्रम-विद्रोही बौद्ध लोग क्या एक दम निर्वंश हो गये और वर्णाश्रमी लोग सर्वव्यापी हो गये? ऐसा भी कैसे हुआ? बंगालमें पांच ब्राह्मणों के बुलाये जानेके पहले सात सौ घर या दलके ब्राह्मणों का नाम पाया जाता है। प्राचीन ताम्र शासनादि से मालूम होता है कि उन दिनों बंगालमें असंख्य ब्राह्मण परिवार थे। फिर भी आजकल सप्तशती खूब कम ही पाये जाते हैं—नहीं के बराबर हैं। क्या बंगाल के सभी ब्राह्मण उन पांच ब्राह्मणों की ही सन्तान हैं? तो फिर सप्तशती लोगोंका क्या हुआ?

कुछ लोगोंका ख्याल है कि उपनिषदों के जमानेमें ही क्षत्रिय लोग धीरे धीरे यागयज्ञादिके धर्मसे दूर हटते जा रहे थे। बुद्ध और महावीर आदिके समय उनका मत और भी स्वाधीन हुआ। खूब सम्भव परशुराम और क्षत्रियों-के विरोधकी उत्पत्तिका यही कारण हो। फिर कुछ लोगोंका कहना यह भी है कि वेद विद्यासे धीरे धीरे क्षत्रियोंको हटा दिया गया इसीलिये क्षत्रियोंने बौद्ध और जैन आदि मत चलाये (Caste and race, India, P, 64)

बौद्ध युग के इतिहास से जान पड़ता है कि उन दिनों जाति प्रथा इतनी कठोर नहीं थी। यद्यपि बौद्ध शास्त्रों में चार वर्णों का उल्लेख पाया जाता है तथापि उनका भेद विभेद इतना सुनिर्दिष्ट नहीं हुआ था (Sacred Books of Buddhists, Vol, II P. IOI)।

आभिजात्य के संवन्ध में उन दिनों क्षत्रियोंका ही ब्राह्मणों की अपेक्षा

उन्नत होना दिखाई देता है। इसीलिये उनका सामाजिक अनुशासन भी अपेक्षाकृत अधिक कड़ा था। राजा ओक्काक ने अपनी छोटी रानीके पुत्रको सिंहासनासीन करने के लिये बड़ी रानी के पुत्रोंको निर्वासित कर दिया। वे हिमालय के पास एक शाक वृक्ष के समीपस्थ ह्रदके किनारे रहने लगे। बाद में इस डर से कि कहीं उनके वंश में हीन रक्तका सम्मिश्रण न होजाय, अपनी ही बहिनों से उन्होंने व्याह कर लिया (अम्बट्ठ सुत्त १६)।

ब्राह्मण पोक्करसादी के शिष्य ब्राह्मण अम्बट्ठ बुद्धदेवके पास आकर अपने ब्राह्मणत्व की कुछ अधिक बड़ाई करने लगे (अम्बट्ठ सुत्त १०-१५)। इसपर बुद्धदेव ने पूछा कि यदि कोई क्षत्रियकन्या ब्राह्मणसे विवाह करे तो क्या ब्राह्मण लोग उनकी सन्तानको ब्राह्मण मानेंगे ! अम्बट्ठने जवाब दिया—'जरूर मानेंगे।' फिर बुद्धदेवने पूछा, यदि कोई क्षत्रिय ब्राह्मणकन्यासे विवाह करे तो उनकी सन्तान को क्षत्रिय लोग क्षत्रिय मानकर स्वीकार करेंगे ! इस पर अम्बट्ठने उत्तर दिया कि नहीं। क्योंकि वे लोग कहेंगे कि उस सन्तानकी माता हीन है (अर्थात् क्षत्रिय नहीं है,सिर्फ ब्राह्मण ही है !) (वही २४-२५)। अम्बट्ठने यह भी स्वीकार किया कि ब्राह्मण लोग जातिच्युत क्षत्रिय को स्वीकार करते हैं (२६)। इसीलिये क्षत्रिय ही आभिजात्य या वंशगौरव में ब्राह्मणसे श्रेष्ठ है (२७)। सनंकुमार का कहना है कि जो गोत्र-विशुद्धि देखते हैं, उनके लिये क्षत्रिय ही श्रेष्ठ हैं। असलमें जो विद्या और आचरणमें श्रेष्ठ हैं, वे ही देवताओं और मनुष्योंमें श्रेष्ठ हैं (२८)। महाभारतमें भी सनत्कुमारकी एक व्यख्यामें देखा जाता है कि ब्राह्मण और क्षत्रियके एकत्र होनेमें ही महाशक्ति है (वन० ९८५,२५), राजा ही धर्म है, राजा ही इन्द्र है, राजा ही विधाता है (वही पृ० २६)। शास्त्र प्रमाणों की आलोचनासे देखा जाता है जगतमें राजा ही श्रेष्ठ है (वही ३१)।

बुद्धदेवके निकट आचार्य सोणदण्डने ब्राह्मणके पांच लक्षण बताये थे—१ जन्मकी विशुद्धि, २-समस्त विद्याओं (अर्थात् मन्त्र, निघंटुसहित तीनों वेद, कर्मानुष्ठान, साक्षर प्रभेद, इतिहास, व्याकरण लोकायत और महापुरुष-लक्षण इत्यादि) में पारगामिता, ३, देहमें शक्ति-प्रमाण और सौन्दर्य, ४, शील और सदाचार और ५, पाण्डित्य (सोणदण्ड सुत्त १३ और २०)।

वरन् देखते हैं कि जो अम्बट्ठ अपनेको कण्हायन (कृष्णायन) कह कर बड़ाई कर रहे थे और सभी ब्राह्मण जिनका समर्थन कर रहे थे, उन्हीं अम्बट्ठ के पूर्व पुरुष कण्ह शाक्यवंशीय एक दासीके पुत्र थे (वही पृ० १६)। राजा ओक्काककी एक दासी थी, नाम था दिसा। कण्ह इसीके पुत्र थे (वही)।

ब्राह्मणोंने कहा, ऐसा कह कर अम्बट्ठका अपमान मत कीजिये। अम्बट्ठ सुजात, कुल-पुत्र, बहुश्रुत, कल्याण-वाक्, पंडित और प्रश्नोंके सदुत्तरदाता हैं (वही पृ० १७)।

बुद्धदेवने तब अम्बट्ठसे ही यह बात पूछी। पहले तो वे चुप रहे पर बहुत पूछने पर बुद्धकी बातोंको उन्होंने स्वीकार किया (२०)। तब तो ब्राह्मण लोग गोलमाल करने लगे। बुद्धने फिर स्वयं ही कहा—इसमें दोषकी क्या बात है। कण्ह दक्षिण देशमें जाकर सर्वविद्या और सर्वसाधनामें प्रवीण होकर लौटे और राजा ओक्काक की कन्या मद्दरूपीसे विवाह किया। कण्ह एक महा ऋषि थे। इसीलिये दासीसे कण्हकी उत्पत्ति हुई तो भी आप लोगोंका अम्बट्ठ पर रुष्ट होना ठीक नहीं है (वही २२-२३)।

यद्यपि अम्बट्ठकी दाम्भिकता देखकर बुद्धने उन दिनोंके क्षत्रियों का प्रबल अभिजात्य-गर्व दिखा दिया था तथापि वे स्वयं इन पचड़ोंसे कहीं ऊपर थे। इस विषयमें उनका मत बहुत ही उदार था। सुत्त निपातसे जाना जाता है कि विशेष विशेष जाति या व्यक्तिके हाथका अन्न खानेसे मनुष्य अपवित्र नहीं होता।

अपवित्रता का कारण है असत् कर्म,असत् वाक्य असत् चिन्ता (Sacred Books of the Budduists, Vol. II., P, 103-104)

सुत्त निपातके बासेठ्ठ सुत्तमें यह प्रश्न उठाया गया है कि ब्राह्मण कैसे होता है ? बुद्धने उत्तर दिया वृक्षलता कीट पतङ्ग पशु पक्षी सरीसृप और मत्स्यादिमें नाना प्रकारके नाना बाहरी लक्षण दिखते हैं। ब्राह्मणमें ऐसा कोई लक्षणगत वैशिष्ट्य नहीं हैं। इसीलिये जातिमें भी कोई भेद नहीं है (वही पृ० १०४)। बुद्धदेवने बिल्कुल वैज्ञानिक की भांति कहा—मनुष्य ही एक जाति है, वर्ण या अन्य किसी उपाधिसे उनमें भेद विभेद होना संभव नहीं है (वही)।

वज्रसूची, भविष्यपुराणसे लेकर वसव कवीर तक सबने एक ही बात कही है[1]।

जैन धर्मके प्रवर्तक महावीरका जन्म भी कुलीन क्षत्रिय कुलमें हुआ था। वे सोवाग कुलमें उत्पन्न हुये थे (उत्तराध्ययन सूत्र १२-१)। जैन ग्रन्थोंमें ब्राह्मण क्षत्रिय और बनियों के विशेष-विशेष ग्रामों उल्लेख मिलता है (Jainism in Northern India, C.T. Shah,P. I03) उड़ीसामें क्षत्रिय प्राधान्य था। महावीरके पिताके क्षत्रिय मित्र उड़ीसा में रहते थे; इसलिये ई० पू० ६ ठी शताब्दीमें महावीर वहां गये थे।

क्षत्रियद्वारा प्रवर्तित होनेसे जैन धर्ममें ब्राह्मणका प्राधान्य नहीं है। यद्यपि ब्राह्मणोंका जातीय गौरव तब भी था। नन्दवंशीय चन्द्रगुप्त और विन्दुसारने जैनधर्म ग्रहण किया था[2]। ये लोग मुरा नामक दासीकी सन्तान

१—गुप्त प्रगट है एकै मुद्रा।
काको कहिये ब्राह्मण शूद्रा ॥ (कवीर)

२—कोशल राजसे विताड़ित होकर शाक्य वंशीय कुछ क्षत्रिय मयूर बहुल हिमालय प्रदेशमें (मोरिय प्रदेशमें) वास करने लगे थे। उन्हें ही मोरिय (मौर्य) कहा गया ; ऐसा किसी किसी पालीग्रन्थमें लिखा है।

थे पर वादमें मूर्धाभिषिक्त जातिका दावा किया था (वही पृ० १३२)। जैनोंमें भी अनेकानेक क्षत्रिय और वैश्य बड़े बड़े पण्डित हो गये हैं। तथापि भारतीय मिट्टीके प्रभावसे इनमें भी क्रमशः जातिभेद फिरसे प्रतिष्ठित हो गया है।

बौद्ध जातकोंसे प्रकट होता है कि क्षत्रिय ही चारों वर्णोंमें श्रेष्ठ है। ब्राह्मणों का स्थान उनके नीचे है। वैश्य और शूद्र भी क्रमशः उन्नत हो के क्षत्रियों की श्रेणीमें जा सकते हैं। इसी तरह जिस किसी वर्णका आदमी पौरोहित्य ग्रहण करके ब्राह्मण हो जा सकता है। विवाह के लिये जातिकी चहारदीवारियां दुर्लंध्य नहीं हैं। क्षत्रियविधवासे ब्राह्मण व्याह कर सकता है, यह भी देखा जाता है। क्षत्रियवंशोत्पन्न होकर भी बुद्धने एक दरिद्र किसानकी लड़की का पाणिग्रहण किया था। जातिके वाहर भी विवाह हो सकता था पर जातिके भीतर होना ही अच्छा समझा जाता था। उच्चवर्णवालों के नीचे तांती, नाई और कुम्हारका स्थान था। चण्डाल और अन्त्यजोंका स्थान सवके नीचे था (Mysore Tribes and Castes, Vol I. P, 131)।

मनुके वादसे ब्राह्मणोंकी श्रेष्ठता में कोई कभी संदेह नहीं किया गया। निश्चित रूपसे मान लिया गया कि उस समय ब्राह्मण ही चारों वर्णोंमें श्रेष्ठ हैं। शायद ऐतिहासिक कारण भी इसके लिये जवावदेह हैं। ई० पू० ४०० से सन् ई० के वाद ५ सौ वर्ष तकके कालमें वाहरसे अनेक जातियां भारतवर्षमें आई हैं। इस समय युद्ध करते करते क्षत्रिय जातियां प्रायः समाप्त हो गई थीं। बौद्ध धर्म क्षत्रियोंका प्रवर्तित था। वहुत शताब्दी तक वह प्रधान था, वादमें वह ब्राह्मण धर्मके साथ साथ चलता रहा। क्रमशः बौद्ध धर्मका वल क्षीण हो आया। राजा हर्षके वाद क्षत्रियों का प्राधान्य जाता रहा वह ब्राह्मणोंके हाथमें चला आया। कहते हैं कि परशुरामने क्षत्रियोंका संहार कर दिया था। नाना कारणोंसे भारतवर्षसे क्षत्रियोंका प्राधान्य लुप्त होगया (वही पृ० १३४)।

भारतमें नाना संस्कृतियोंका संगम

नाना कारणोंसे जान पड़ता है कि जिसे जातिभेद कहते हैं, वह चीज़ आर्य लोग भारतवर्षमें आकर चारों ओरके प्रभावमें पड़कर स्वीकार करनेको वाध्य हुये थे। किन्तु यह माननेमें भी जाने कैसा एक संकोच होता है कि इतनी बड़ी बात बाहरी प्रभावसे स्वीकृत हुई थी। फिर भी आलोचना करने पर हम देखेंगे कि वर्तमान हिन्दूधर्ममें बाहरसे आये हुये मतों और आचारोंका परिमाण कम नहीं है। पुराणोंको देखनेसे ही यह बात स्पष्ट हो जाती है कि शिव, विष्णु आदिकी पूजा कितनी विरुद्धताओं के भीतरसे हिन्दू-समाजमें प्रविष्ट हुई थी, फिर भी उसका प्रभाव इस समय कितना गम्भीर और कितना व्यापक है।

भागवतके दशमस्कंधके ग्यारहवें अध्यायमें देखा जाता है कि श्रीकृष्णने इन्द्रादि देवताकी उपासना बन्द करके वैष्णव प्रेम-भक्तिकी स्थापना करनी चाही थी। कितने तर्कों और वाद-प्रतिवादों के भीतरसे उन्हें अग्रसर होना पड़ा था, यह बात मूल भागवतके उस प्रसंगको पढ़नेसे ही स्पष्ट हो जाती है।

बहुत लोग समझते हैं कि वेदोंमें आनेवाले 'शिश्नदेव' [ऋग्वेद ७,१, ५;१०,१९,२] आर्येतर जातिके लिंग-पूजक थे। आर्य लोग इसे पसंद नहीं करते थे। पर कुछ लोग 'शिश्नदेव' शब्दका अर्थ चरित्रहीन समझते हैं। एकके बाद दूसरे पुराणोंमें हम देखते हैं कि ऋषि-मुनि लोग शिव-पूजा और लिङ्ग-पूजाको आर्य-धर्मसे दूर रखनेके लिये जी-तोड़ प्रयत्न कर रहे हैं; किन्तु ऋषि-पत्नीगण उनके विरुद्ध आचरण करके शिव-पूजा और लिङ्ग-पूजाको भारतीय आर्य-समाजमें चला देनेमें सफल हो गईं।

महादेव नग्न वेशमें नवीन तापसका रूप धारण करके मुनियों के तपोवन में आये (वामनपुराण ४३ अध्याय, ५१-६२ श्लोक)। मुनि-पत्नीगणने देख करके उन्हें घेर लिया (वही, ६३-६९ श्लोक)। मुनिगण अपने ही आश्रममें मुनि-पत्नियोंकी ऐसी अभद्र कामातुरता देखकर 'मारो-मारो' कहकर काष्ठ-पाषाण आदि लेकर दौड़ पड़े[१]। उन्होंने शिवके भीषण ऊर्ध्वलिङ्गको निपातित किया[२]।

बादमें मुनियोंके मनमें भी भयका संचार हुआ। ब्रह्मा आदिने भी उन्हें समझाया। अन्तमें मुनि-पत्नियोंकी एकान्त अभिलषित शिव-पूजा प्रवर्तित हुई (वामन० ४३।४४ अध्याय)।

ऐसी कहानियां अनेक पुराणोंमें हैं, जिन्हें विस्तार-भयसे यहां उद्धृत नहीं किया जा रहा है। उदाहरणके लिये कुछ कहानियां दी जाती हैं :—

कूर्मपुराण, उपरि भाग ३७ अध्यायमें कथा है कि पुरुष-वेशधारी शिव नारी-वेशधारी विष्णुको लेकर सहस्र मुनिगण-सेवित देवदारु-वनमें विचरण करने लगे। उन्हें देखकर मुनि-पत्नियां कामार्त्त होकर निर्लज्ज आचरण करने आने लगीं (१३-१७ श्लोक)। मुनि-पुत्रगण भी नारी-रूपधारी विष्णुको देखकर मोहित हुये। मुनिगण मारे क्रोधके शिवको अतिशय निष्ठुर वाक्यसे भर्त्सना करने और अभिशाप देने लगे[३]।

१—क्षोभं विलोक्य मुनय आश्रमे तु स्वयोषिताम्।
हन्यतामिति सम्भाष्य काष्ठपाषाणपाणयः।
(वामनपुराण, ४३,७०)

२—पातयन्ति स्म देवस्य लिंगमूर्ध्वं विभीषणम्। (वही, ७१)

३—अतीव परुषं वाक्यं प्रोचुर्देवं कपर्दिनम्।
शेपुश्च शापैर्विविधैर्मायया तस्य मोहिताः। (कूर्म० ३७,२२)

किन्तु अरुन्धतीने शिवकी अर्चना की। ऋषिगण शिवको 'यष्ठि-मुष्टिप्रहार' या लाठी और घूँसेकी चोट करते हुए बोले—'तू यह लिंग उत्पाटन कर।' महादेवको वही करना पड़ा। पर बादमें देखते हैं कि इन्हीं मुनियोंको इसी शिव-लिंगकी पूजा स्वीकार करनेको बाध्य होना पड़ा।

शिवपुराणके धर्मसंहिताके दसवें अध्यायमें देखा जाता है कि शिव ही आदि देवता हैं; ब्रह्मा और विष्णुको उनके लिङ्ग का आदिमूल अन्वेषण करने जाकर हार माननी पड़ी (१६-२१)। (सच पूछा जाय तो आज भी धर्मके इतिहासके गवेषक यह खोजकर पता नहीं लगा सके कि लिङ्ग-पूजाका आरम्भ कहांसे और कबसे हुआ,) देवदारु-वनमें सुरतप्रिय शिव विहार करने लगे (धर्मसंहिता, १०, ७८-७९)। मुनि-पत्नियां काम-मोहित होकर नानाविध अश्लीलाचार करने लगीं (वही, ११२-१२८)। शिवने उनकी अभिलाषा पूरी की (वही, १५८)। मुनिगण काममोहिता पत्नियोंको संभालनेमें व्यस्त हुए (वही,१६०); पर पत्नियां मानी नहीं (वही,१६१)। फलतः मुनियोंने शिव पर प्रहार किये (वही,१६२-१६३)इत्यादि। अन्य सब मुनि-पत्नियोंने शिवको कामार्त होकर ग्रहण किया था; पर अरुन्धतीने वात्सल्यभावसे पूजा की (वही,१७८)। भृगुके शापसे शिवका लिङ्ग भूतलमें पतित हुआ (वही, १८७)। भृगु धर्म और नीतिकी दुहाई देने लगे (वही, १८८-१९२); किन्तु अन्तमें मुनिगण शिवलिङ्ग की पूजा करनेको बाध्य हुए (वही, २०३-२०७)।

यही कथा स्कन्दपुराण, माहेश्वरखण्ड, षष्ठाध्यायमें है, और यह एक ही कथा लिङ्गपुराण (पूर्वभाग, ३७ अध्याय, ३३-५०) में भी पाई जाती है। इसी तरह वायुपुराणके ५५ अध्यायमें शिवकी कथा कही गई है। पद्मपुराण नागर-खण्डके शुरूमें भी यही कथा है। आनर्तदेशके मुनिसमाश्रम वनमें किस प्रकार भग-वान् शंकर नग्न वेशमें पहुँचे (१-१२), किस प्रकार मुनि-पत्नियोंका आचरण

शिष्टताकी सीमा पार कर गया (१३-१७), मुनिगण यह सब देखकर क्रुद्ध होकर बोले—रे पाप, तूने चूँकि हमारे आश्रमको विडम्बित किया है, इसलिए तेरा लिङ्ग अभी भूपतित होवे[१]। किन्तु यहां भी मुनियोंको झुकना पड़ा। जगत्में नाना उत्पात उपस्थित हुए (२३-२४), देवतागण भीत हुए और धीरे धीरे शिव-पूजा स्वीकार कर ली गई।

मुनि-पत्नियोंका जो यह शिव-पूजाके प्रति उत्साह दिखाई पड़ता है, इसका कारण पुराणोंमें उनकी कामुकता बताई गई है ; पर यही क्या वास्तविक व्याख्या है ? सम्भवतः उन दिनों मुनि-पत्नियां अधिकतर आर्येतर शूद्र-कुलोत्पन्ना थीं, इसीलिए वे अपने पितृकुलके देवताकी पूजा करनेके लिए इतनी व्याकुल थीं। पतिकुलमें आकर भी वे अपने पितृकुलके देवताको न भूल सकीं। यह व्याख्या ही अधिक युक्तियुक्त जान पड़ती है। प्राचीनतर इतिहासकी बात यदि कही जाती, तो मुनि-पत्नियोंको व्यर्थ ही इतनी हीन-चरित्रा चित्रित करनेकी जरूरत नहीं होती।

पुराणादिमें ऐसे आख्यान और भी अनेक स्थानोंपर पाये जाते हैं। विस्तार-भयसे वे यहां उद्धृत नहीं किये जा रहे हैं। दक्षयज्ञमें शिवके साथ दक्षका विरोध वस्तुतः आर्य वेदाचारके साथ आर्येतर शिवोपासना का विरोध ही है। दक्षके यज्ञमें शिव नहीं बुलाये गये, और शिवहीन यज्ञ भूत-प्रेत-प्रमथादि द्वारा विध्वस्त हुआ, इसीसे जाना जाता है कि शिव उस समय तक आर्येतर जातियोंके देवता थे। शिव किरातवेशी, शिवानी शबरी-मूर्ति, शिव शबर-पूजित थे—ये सब कथाएँ नाना पुराणोंमें नाना भावसे मिलती हैं।

१—यस्मात्पापत्वयास्माकं आश्रमोऽयं विडम्बितः।
तस्माल्लिङ्गं पतत्वाशु तवैव वसुधातले।
(पद्मपुराण, नागरखण्ड १-२०)

वैदिक युगमें शिव नामधारी एक जनपदवासी मनुष्यकी खबर पाई जाती है (ऋग्वेद ७।१८।७)। पुराणके शिव देवताके साथ क्या इन लोगोंका कोई योग था ? अनेक अनार्य देवताओं को आर्य लोग अस्वीकार नहीं कर सके। आसपासके चतुर्दिक् प्रचलित प्रभावको रोक रखना असम्भव है। प्राचीन आर्य-गण भी समझ सके थे कि गण-चित्तको प्रसन्न किये विना वास करना कठिन है। इसीलिए सब यज्ञोंमें पहले गण-देवता गणपतिकी पूजाकी व्यवस्था की गई। प्राचीन हव्य-कव्यके मंत्रोंमें ऐसे बहुत हैं, जिनमें असुर यातुधान और क्रव्यादों-को दूर करनेके मन्त्र हैं, जो आज भी श्राद्धकालमें पढ़े जाते हैं[२]।

लेकिन इस प्रकार धर-पकड़से कब याग-यज्ञ चल सकते हैं। इसीलिए यज्ञारम्भमें ही गणपतिकी पूजाका विधान करना पड़ा। इसलिए गणपतिका नाम विघ्न-नाशक है। इसी प्रकार होमाग्निके पास ही शालिग्रामकी शिला स्थापित करके गण-चित्तको प्रसन्न करना पड़ा। इसी प्रकार पश्चिम भारतमें हनूमान् आदिकी पूजा गृहीत हुई।

यजुर्वेदकी वाजसनेयीसंहितामें (१६, ४०-४७; तै. सं, ४, ५, १-११ काठक सं १०-११-१६) इन्हीं कारणोंसे रुद्र और शिवको अपनाकर गण-चत्तकी आराधना करनेकी चेष्टा देखी जाती है। अथर्व-वेदके भी अनेक सूक्तोंमें इस प्रकारके प्रयत्नका परिचय मिलता है (द्रे० ४।२९; ७।४२; ७।९२ इत्यादि)।

२—ओं निहन्मि सर्व यदमेध्यवद्भवेद्
हताश्च सर्वेऽसुरदानवा मया।
रक्षांसि यक्षाः सपिशाचसंघा
हता मया यातुधानाश्च सर्वे।
(पुरोहितदर्पण १३१६, १५४५)

और—

ओं अपहता असुरा रक्षांसि वेदिपदः।

शिवके साथ सम्बन्ध-युक्त होकर भी शिवको न माननेके कारण दक्षकी दुर्गति हुई। भृगुने जो लिंगधारी शिवको शाप दिया था, यह बात आगे हमने नाना पुराणोंके उद्धृत वाक्यमें ही देखी है। इन्हीं भृगुने विष्णुके वक्षस्थलपर पदाघात किया था। जान पड़ता है, भृगुगण खूब निष्ठावान् वैदिक थे। वैष्णव धर्म प्राचीनतर वैदिकके उस पदाघातसे लांछित होकर हमारे देशमें प्रतिष्ठित हुआ। इन्द्रके बाद विष्णुका नाम हुआ "उपेन्द्र इन्द्रावरजः" (अमरकोष)। इन दोनों ही नामोंका अर्थ है 'इन्द्रका परवर्ती'।

बहुत दिन पहलेकी बात है, मैं एक बार गुजरात-बड़ौदाके अन्तर्गत 'कारवण' नामक एक गाँवमें गया था। वहाँ बहुतसे देव-मन्दिर हैं। तीर्थ होनेके कारण ग्रामकी अच्छी ख्याति है। वहाँ मुखलिंग देखनेके लिये निकलकर मैंने देखा कि मन्दिरके बाहर एक पत्थरपर मस्जिदकी मूर्ति खुदी हुई है। पूछनेपर मालूम हुआ कि इसी कौशलसे इस मन्दिरको हिन्दुओंने मुसलमानोंके आक्रमण से बचाया था।

देवी-पूजा और तन्त्रमत भी धीरे धीरे वैदिक मतके पास बाहरसे आकर खड़े हुए हैं। असल वैदिक मतवादी आचार्यगण उसे शास्त्र और सदाचारके विरुद्ध ही समझते रहे हैं। मूल आर्य-भूमिसे क्रमशः दूर जाकर इन वस्तुओंके साथ आर्य लोगोंका परिचय हुआ था। इच्छासे हो या अनिच्छासे, इन मतोंको ग्रहण करनेके सिवा उनके पास कोई चारा न था। इसीलिए आज वैदिक संध्याके साथ तान्त्रिक संध्या साधारणतः सभी इस देशमें किया करते हैं। गुजरातमें मैंने देखा है कि ब्राह्मणोंके यहां भी प्रति परिवारमें एक कुलदेवी हैं। बहुतोंकी कुलदेवी कूपमें दीवारके ऊपर गुँथी हुई हैं। सबकी दृष्टिसे दूर संरक्षित है। फिर भी विवाहादि प्रत्येक अनुष्ठान में कुलदेवीकी पूजा करनी ही होती है। इसी प्रकार ग्राम-देवी और ग्राम-देवता भी क्रमशः हमारे समाजमें

आते रहे हैं, और इनकी ठेलमठेल आज इतनी बढ़ गई है कि बेचारे वैदिक देवताओं को ही स्थान-च्युत होना पड़ा है। आजकल देवी-माहात्म्यके गानोंमें प्रायः सुनाई देता है कि 'गावत वेद अघात नहीं यश तेरो महामहिमामयी माता'। गोस्वामी तुलसीदास तो महान् पण्डित थे, फिर भी उन्होंने प्रतिपक्षके मतको आघात करते समय अपने मतको वेद-सम्मत मत कहा है[1]।

इन वेदबाह्य देवताओं की पूजाके पुरोहित भी आर्येतर जातिके लोग ही थे। उन दिनों ब्राह्मण लोग इन देवताओं के विरोधी थे। क्रमशः जब इन देवताओंका प्रवेश वेदपंथियोंके ग्रंथोंमें भी हुआ, तब ब्राह्मण लोग भी इन देवताओं के पौरोहित्यमें व्रती हुए। दक्षिणमें स्त्रियाँ देव-मन्दिरकी पुरोहिता हुआ करती थीं, क्योंकि वहांके समाजमें स्त्रीका ही प्राधान्य था। उस मातृ-तन्त्र-देशमें जब वैदिक धर्म पहुँचा, तो तब भी स्त्रियोंके फूँकनेसे ही अग्नि-देवता प्रज्वलित होते थे। महाभारतके सहदेवके दिग्वजय प्रसङ्गमें कहा गया है कि जब सहदेव माहिष्मती पुरीमें पहुँचे, तो उन्होंने देखा कि वहाँ अग्नि-देवता सुन्दरी कुमारिकाओं के ओष्ठपुट-विनिर्गत वायुके सिवा अन्य किसी भी प्रकारके व्यजनसे प्रवजलित नहीं होते थे[2]। अग्निने भी सुन्दरी कन्याओंका संग-लाभ करके उन्हें वर दिया कि तुम्हारे लिए अप्रतिवारण अखण्ड स्वेच्छा विहार विहित हुआ। इसी लिये वहांकी स्त्रियां स्वैरिणी और यथाकाम-विहारिणी थीं[3]।

१—श्रुतिसम्मत हरिभक्ति पथ।
(रामचरितमानस, उत्तर, दोहा १५९)

२—व्यजनैर्धूयमानोऽपि तावत्प्रज्वलते न सः।
यावाच्चारुपुटोष्ठेन वायुना न विधूयते। (सभापर्व ३०।२९)

३—एवमग्निर्वरं प्रादात् स्त्रीणामप्रतिवारणे।
स्वैरिण्यस्तत्र नार्यो हि यथेष्टं विचरंत्युत। (सभापर्व ३०।२८)

स्त्रियाँ ही वहाँ प्रधान थीं। वे ही देवताकी साधिकाएँ थीं। उनकी देव-सेवाका यह अधिकार क्रमशः ब्राह्मणोंके हाथमें चला गया है। इस समय वे देव-मन्दिरमें नर्तकी या देवदासी भर रह गई हैं। यह काम भी प्राचीन-कालके परिपूर्ण सेवा-कर्मके अल्प अंश मात्रमें पर्यवसित हो जानेके कारण आजकल मलिन और दूषित हो गया है। दक्षिण-देशका प्रभाव उड़ीसा तक व्याप्त है। इसीलिये पुरीके जगन्नाथके मन्दिरमें अब भी देवदासीकी प्रथा प्रचलित है।

वेदके परवर्ती सब देवताओंके पुरोहित या तो स्त्री हैं या अनार्य-जातियां। आज भी शूद्रका पौरोहित्य सम्पूर्ण-रूपसे लुप्त नहीं हुआ। यद्यपि ब्राह्मणोंने प्रायः सभीपर अधिकार कर लिया है, तथापि नाना छिद्रोंसे उस प्राचीन युगका आभास मिल ही जाता है। दक्षिणके दासरी शूद्र हैं। उनका पूर्व गौरव अब नहीं है, तथापि वे आज भी बहुतसी जातियोंके गुरु-रूपमें पूज्य हैं (Mysore Tribes and castes, Vol. III, P. 117)।

इरालिगा–जाति किसी जमानेमें यायावर थी। आजकल उनकी सामाजिक स्थिति अत्यन्त हीन है। कहते हैं वे, देवीके अपने हाथों रचित मनुष्यकी सन्तान हैं। ये लोग वन-देवीके पूजक हैं, इसीलिए इन्हें पुजारी कहते हैं। मादिगा एक अति हीन जाति है। इनमें देवीको पूजनेवाली बहुत स्त्रियां हैं। इन्हें मातँगी कहते हैं। एक मादिगा बालक कहीं बाहर परदेशमें ब्राह्मणका छद्म वेश बनाकर गया और वहां एक ब्राह्मण-कन्यासे विवाह किया। बात खुलने पर कन्याने अग्नि–प्रवेश किया। वही व्याधिकी देवी 'मारी' हुई (Mysore, Vol. III, P. 157) 'मारी' के पूजक मादिगा भी अत्यन्त हीन जातिके हैं। इसी 'मारी' से क्या बंगला के 'मारी-भय' वाली कहावतका सम्बन्ध है?

दक्षिणके त्रिवांकुर स्टेटमें बसनेवाली कानिकर जाति असभ्य जंगली है। उनके सभी देवता प्रायः देवियां ही हैं। इनकी पूजा मीन और कन्यामें अर्थात् वसन्त में और शरत् में (Thurston, Vol, III, P. 170) होती है। हमारी शारदीय और वसन्ती पूजाओंकी इनसे तुलना की जा सकती है।

जगन्नाथके मन्दिरमें प्राचीन कालसे एक श्रेणीके हीनजातीय सेवक हैं। ये 'दैत' या शवर जातिके हैं। इस समय इनके विशेष कुछ कृत्य नहीं हैं, तो भी उत्सवादिके विशेष-विशेष अवसर पर उनकी सहायता निहायत जरूरी होती है। इन शबर सेवकों के सिवा अन्यान्य साधारण शबरोंका इस मन्दिरमें प्रवेश निषिद्ध है। इस समय पुरीका जगन्नाथ मन्दिर सवर्ण हिन्दुओंका ही स्थान हो गया है। यद्यपि कहा जाता है कि जगन्नाथपुरीमें अन्न-जलके स्पर्शका विचार नहीं है, तो भी वहां पाण कणड़ा प्रभृति हीनजातियोंको प्रवेश नहीं करने दिया जाता। इन सब अन्त्यजोंके लिए हम लोगोंने ऐसे अनेक मन्दिरोंके द्वार बन्द कर दिये हैं, जिनकी पूजा-अर्चना आदि हमने उन्हींसे ग्रहण की थी, सो भी अनेक विरुद्धताओं के भीतरसे। जो लोग इन पूजाओंके प्रवर्तक थे, उन्हींके लिए आज उन्हीं पूजा-मन्दिरोंमें प्रवेशका अधिकार नहीं है।

थर्स्टन साहब कहते हैं कि जगन्नाथके मन्दिरमें नाइयोंको भी समय-समय पर देव-पूजाके कार्यमें सहायता करनी होती है। तामिल देशके कितने ही अत्यन्त निष्ठावान् शुद्धाचारी शैव मन्दिरोंमें भी पारिया लोग ही विशेष-विशेष वात्सरिक उत्सवोंके अवसर पर सामयिक भावसे प्रभुत्व करते हैं (Ghurye (Caste and Race in India, PP. 26-27 : Baihes, PP. 75-76)। दक्षिण-कर्णाट (कर्नाटक) में केलसी या नापित जाति शूद्रोंके किसी किसी अनुष्ठानमें पौरोहित्यका कार्य करती है (Thurston, Vol III. P. 269)।

दक्षिणमें वैष्णवों और शैवोंमें बहुतसे प्राचीन भक्त अन्त्यज और शूद्र जातिके हैं। आचारी वैष्णवाचार्यों के बहुतसे आदि गुरु हीन कही जाने वाली नाना जातियोंसे उत्पन्न हुए थे। सातानी लोग ऐसे ही हीन शूद्र हैं, जो वैष्णव मन्दिरोंके सेवक हैं। सातानीका मूल शब्द है 'सात्तादवन' अर्थात् शिखा-सूत्र-विहीन। ये लोग संस्कृत शास्त्रकी अपेक्षा बारह वैष्णव भक्तों या आल्वारोंके ग्रन्थ 'नालायिरा-प्रबन्धम्' को प्रमाण मानते हैं। रामानुजने मन्दिरके कार्यमें सात्तिनवनों और सात्तादवनोंको नियुक्त किया था। सात्तिनवन ब्राह्मण हैं और सात्तादवन शूद्र (Mysore Tribes and Casts, Vol. VI, P. 591)।

इन सब विष्णु-मन्दिरोंमें जिन ब्राह्मणोंने शुरु शुरूमें प्रवेश किया था, वे भी समाजमें प्रतिष्ठा खो चुके हैं। मारक लोग वैष्णव मन्दिरके सेवक हैं। यद्यपि वे पहले ब्राह्मण थे, पर अब समाजमें उनके ब्राह्मणत्वका दावा अस्वीकृत हो चुका है (वही Vol. II. P. 310)। शिव और विष्णुकी आराधनामें अति नीच जातिको भी अधिकार है। सन् १४१५ ई० में मध्य-भारतमें एक मोची सज्जनने विष्णु-मन्दिर निर्माण कराया था (Epigraphica Indica, Vol. II, P. 229 , Ghurye, P. 99)

शिवके सम्बन्धमें भी यही बात पहले दिखाई जा चुकी है। वेदाचारके साथ बड़ी लड़ाई लड़नेके बाद शैव धर्म आर्योंके भीतर प्रवेश पानेमें समर्थ हो सका। शिव-मन्दिरके पूजक तपोधनगण गुजरातमें सामाजिक भावसे अत्यन्त हीन समझे जाते हैं (Wilson's Indian Caste, Vol. II, P. 122)। दक्षिण–देशमें शिवनाम्बी या शिवाराध्यगण शिव-मन्दिरके पुजारी होनेके कारण ब्राह्मण होकर भी समाजमें अचल हैं। अन्यान्य ब्राह्मण लोग उनके साथ कार्य नहीं करते (Mysore Tribes and Castes, Vol. II, P. 318)। शिव-ध्वजगण स्मार्त सम्प्रदायके शिव मन्दिरके पुजारी हैं। वे भी समाजमें हीन हो

गये हैं। मद्रास प्रान्तमें इन्हें गुरुक्कल कहते हैं। ये लोग ब्राह्मणत्वसे भ्रष्ट हो चुके हैं। किन्तु कोचीन त्रिवांकुरमें शिवके पुजारियोंकी अवस्था इतनी शोचनीय नहीं हो गयी है। देवांग लोग भी शिवपूजक शैव हैं। ये भी ब्राह्मणत्व का दावा करते हैं; पर इनका भी दावा नामंजूर हो चुका है। अपने यजन-याजन ये स्वयं करते हैं। प्रधान जीविका इनका कपड़ा बुनना है (वही, Vol. III, P. 137)।

मुस्साद लोग पहले ब्राह्मण थे। द्वापरमें शिव-निर्माल्य या शिवका प्रसाद खानेसे पतित हुए थे (Thurston, Vol. V PP. 120:122)। इनके आचार-विचार विशुद्ध नम्बूद्री ब्राह्मणोंकेसे हैं। संस्कृत साहित्यमें ये गंभीर पाण्डित्य प्राप्त करते हैं (वही, P. 122.123)।

शिव-निर्माल्यका एक और सुन्दर व्यवहार तुलुव लोगोंके देशमें है। कोई स्त्री यदि सांसारिक निर्यातनसे या अन्य किसी कारणसे संसारके बन्धनसे मुक्त होना चाहे, तो वह शिव मन्दिरमें जाकर प्रसाद खाती है। इससे उसके सभी सांसारिक बन्धन टूट जाते हैं। यदि ऐसी स्त्री बादमें ब्याह करे, तो उसकी सन्तान 'मोयिली' जाति की होती है। उनकी सामाजिक अवस्था हीन है (Thurston, Vol.V. P. 81, Mysore Tribes and Castes, Vol. I, P, 218)। कलनद ताल्लुका में शिवका निर्माल्य ग्रहण करके स्त्रियां भव-बन्धनसे मुक्त हो सकती हैं। इनकी सन्तानोंकी जाति 'मालेरु' कहलाती है (Mysore Tribes and Castes, Vol. IV, P. 185)

चिदम्बरम् महातीर्थके नटराज-मन्दिरमें प्रवेश करते ही प्रथम मूर्ति भक्त-वर नन्दनारकी है। वे अस्पृश्य पारिया जातिमें उत्पन्न हुए थे; किन्तु आज-कल उनके गान न होनेसे ब्राह्मणोंका भी कोई अनुष्ठान पूर्ण नहीं होता।

शास्त्रानुसार ग्रामदेवताकी पूजा निषिद्ध है। अर्थात् ग्रामदेवता और

देवियोंके पूजक ब्राह्मण पतित होते हैं। मनुने नाना स्थानों पर (३।१५२ ; ३।१८०) उन्हें पतित कहा है।

इन सब अनार्य देवताओं को ब्राह्मणोंने बहुत दिन तक शूद्रोंके देवता समझ कर पूजनीय नहीं माना। अवश्य ही आजकल इन देवताओं का पौरोहित्य ग्रहण करके ब्राह्मणोंने इनके वास्तविक पुजारियोंका अधिकार लोप कर दिया है। राढ़ देशमें अब्राह्मण देवता धर्मराजके मन्दिरमें प्रायः शूद्र और अन्त्यज लोग ही पुरोहित होते हैं। इसी बीच अनेक धर्म-मन्दिरोंमें ब्राह्मणोंका पौरोहित्य स्थापित हो चुका है। ऐसे कई मन्दिर हैं, जहांके आदि-पूजक शूद्र ही थे; अब उनका प्रवेश निषिद्ध हो गया है। शूद्र-देवताके प्रति ब्राह्मणोंकी वितृष्णा अब भी बहुत-कुछ देखी जाती है। शूद्रके प्रतिष्ठित शिव या विष्णु ब्राह्मणोंके नमस्य नहीं होते, इसीलिये बंगालमें शूद्र लोग प्रायः गुरु या पुरोहितसे ही देव-प्रतिष्ठा कराते हैं (J.N.Bhattacharya, P. 19-20)। यह वही प्राचीन कालके अनार्य देवताओं के प्रति ब्राह्मणोंके विद्वेषका भग्नावशेष है। पुराणोंकी मुनियों द्वारा की हुई शिव-विरोधिता और भृगु मुनि द्वारा विष्णुके वक्षःस्थलमें लात मारनेवाली कथाकी याद आती है। आश्चर्य यह है कि इन्हीं देवताओंके प्रति आज लोगोंके भय और भक्तिका अन्त नहीं है! शालिग्राम-शिलाने आज वैदिक अग्निके पार्श्वमें स्थान पाया है!

वैदिक आर्योंके मिलनका स्थान यज्ञ था और अवैदिकोंका तीर्थ। यह तीर्थ वस्तु ही वेदबाह्य है, इसी लिए वेद-विरोधी मतको तैर्थिक मत कहते हैं (कारण्ड-व्यूह, १०।६२)। वैदिक सभ्यताका केन्द्र और प्रचारस्थल यज्ञ था और अवैदिक सभ्यताका केन्द्र और प्रचारस्थल तीर्थ। तीर्थ अर्थात् नदीका तरण-योग्य स्थान। नदीकी पवित्रता आर्य-पूर्व वस्तु है। अब भी भाषा तत्वज्ञोंने लक्ष्य किया है कि गंगा प्रभृति नाम और महात्म्य आर्य-पूर्व वस्तु है। संथाल

प्रभृति आदिम जातियाँ नदियों और वृक्षोंके पूजक हैं। दामोदर नदीमें अस्थि नहीं रखनेसे संथालों की गति नहीं होती। यह नदीकी पूजा या नदीमें अस्थि-निक्षेप—ये सब बातें वेदमें तो नहीं मिलतीं। तो फिर ये बातें आईं कहांसे? जिन देवताओंसे सम्बद्ध माने जाकर तुलसी, वट, अश्वत्थ (पीपल), बिल्व(बेल) इत्यादि वृक्ष पवित्र माने गये हैं, उन देवताओं का आदिम परिचय वेद-विरुद्ध 'देवता' के रूपमें ही मिलता है। धीरे धीरे वृक्षोंकी पूजा भी निश्चय ही आर्यों ने आर्य-पूर्व भारतीयोंसे ग्रहण की होगी। बहुत सम्भव है नदीकी पूजा भी उन्होंने वहींसे ग्रहण की हो। जैसा कि हम आगे चल कर देखेंगे बहुतसे अनार्य कुलदेवताओं और कुलोंके नाम वृक्षवाचक है। ये लोग अपने देवताके नामवाले वृक्षोंका कोई अपमान कभी बर्दाश्त नहीं कर सकते। थर्स्टन की पुस्तकमें सब मिलाकर प्रायः एकसौ ऐसे नाम मिलते हैं। इनमें आम है, गूलर है, केला है, पान है, सुपारी है, हल्दी है, अदरख है, पीपल है, बेल है, नारिकेल है, बरगद या तुलसी तथा अन्य अनेक पौधे और वृक्ष हैं।

नाना जन्तुओंके नामपर भी भिन्न जाति या कुलोंके नाम है। दूसरे प्रसंगपर जन्तुओंका नाम दिया जायगा।

बहुतसे उत्सव भी अनार्योंसे प्राप्त हैं। जैसे होली या वसन्तोत्सव। इसमें नाना प्रकारकी अश्राव्य गालियाँ, जुआ खेलना, नशा पीना आदि उन्मत्त व्यवहार प्रचलित है। इनका प्रचलन भी नीची श्रेणियोंमें ही अधिक है। इसीलिए बहुत लोग इसे शूद्रोत्सव कहते हैं। होलिकादाहके लिए जो आग जलाई जाती है, वह अनेक स्थानोंपर अन्त्यजके घरसे मँगाई जाती है। बरार-के कुनबियोंको अस्पृश्य महारोंके यहांसे होलीकी आग ले आनी पड़ती है (Russel, Vol, IV, P. 18,31; Ghurye, P. 26)। कहते हैं, होल्का नामक राक्षसीकी तृप्तिके लिए इस दिन अश्लील गालियाँ सुनाई जाती हैं। कृष्ण

के हाथों यह राक्षसी मारी गई थी। मरनेके पहले वह कह गई थी कि इसी प्रकार लोग उसकी प्रेतात्माका प्रीति-विधान करें।

इस तरह स्पष्ट हो जाता है कि हमारे बहुतेरे देवता, तीर्थ और उत्सव अनार्योंसे प्राप्त हैं! खोज करनेपर देखा जायगा कि आर्योंके अनेक उपकरण भी आर्य-पूर्व जातियोंसे गृहीत हैं। इस समय विवाहादिके अवसरपर सिन्दूर एक अपरिहार्य पदार्थ है, इसके बिना विवाह पूर्ण ही नहीं होता; किन्तु सुरेन्द्रमोहन भट्टाचार्यके पुरोहित-दर्पण (अष्टम संस्करण) के कई स्थान उलट कर देखनेसे ही पता चल जायगा कि यह सिन्दूरका आचार भी आर्योंने इसी आर्येतर जातिसे ही ग्रहण किया था। सिन्दूरका न तो कोई वैदिक नाम है और न सिन्दूर-दानका कोई मन्त्र। सामवेदीय घट-स्थापनमें सिन्दूरको स्पर्श करके जो मन्त्र पढ़ा जाता है,वह यह है—'ॐ सिन्धोरुच्छ्वासे पतयन्तम्' इत्यादि (पृ० ८)। यजुर्वेदी घट-स्थापनमें—'ॐ सिन्धोरिव प्राध्वने शूघ्र-नासो' इत्यादि (पृ० १०)। और विवाहमें सामवेदी अधिवासका मन्त्र इस प्रकार है—'ॐ सिन्धोरुच्छ्वासे पतयन्तभुक्षितम्' इत्यादि (पृ० ७०)। इन तीनोंमें प्रथम और तृतीय मन्त्र ऋग्वेद (७।४६।४३) में पाया जाता है। वहां सिन्धु नदीके उच्छ्वासका प्रसंग है। केवल शब्दसाम्यमात्रसे वह सिन्दूरके मंत्रके रूपमें व्यवहृत हुआ। द्वितीय मन्त्र ऋग्वेदका ४।५८।७ वां मंत्र है। इसके साथ भी सिन्दूरका सम्बन्ध नहीं है।

सामवेदी अधिवास मंत्रमें स्वस्तिक, शंख, रोचना,श्वेत सर्षप, ताम्र, चामर, दर्पणके जो मन्त्र हैं (७०।७१। पृ०), यद्यपि वैदिक मन्त्र हैं, फिर भी इन पदार्थोंके साथ उनका कोई योग नहीं है। सिन्दूर मूलतः नाग लोगोंकी वस्तु है, उसका नाम भी नागगर्भ और नाग-सम्भव है। शंख और कंबु आदि नाम भी वेद-बाह्य हैं।

बहुत लोगोंकी धारणा है कि हमारी 'पूजा' नामक क्रिया भी वेदबाह्य है। वेदमें यह शब्द भी नहीं हैं। इसका मूल अवैदिक भाषाओंमें मिलता है।

भक्ति भी कहते हैं, अवैदिक है। पद्मपुराणके उत्तरखण्डमें एक सुन्दर कथा है। भक्ति अपना दुखड़ा नारद मुनिसे रोते समय कहती है कि मेरा जन्म द्राविड़ देशमें हुआ, कर्नाट देशमें मैं बड़ी हुई, महाराष्ट्र देशमें किंचित् काल वास किया और गुजरातमें जीर्ण हो गई [1]। मध्य-युगके भक्त लोग भी कहते हैं कि भक्त द्राविड़ देशमें उत्पन्न हुई थी और रामानन्द उसे उत्तर-भारतमें ले आये थे।[2]।

नृत्य, गीत आदि बहुतसी और बातें भी इस देशमें आकर आर्योंने संग्रह कीं, यद्यपि पहले भी इन बातोंका कुछ-न-कुछ उनके पास था; किन्तु उसकी समृद्धि यहीं हुई थी। मोटे तौरपर हम कह सकते हैं कि भारतीय आर्योंने अच्छी-बुरी बहुतसी बातोंको इस देशमें आनेके बाद संग्रह किया था। जाति-भेद भी उन्हींमें से एक है।

सिर्फ यही नहीं, और भी ऐसी अनेक बातें आर्योंने यहांसे ली थीं, जो पहले उनके समाजमें नहीं चलती थीं। बहुत सम्भव है, शुरू-शुरूमें समाजमें प्रविष्ट होनेके बाद भी ऐसी बातें बहुत दिनों तक अपना रास्ता ठीक ठीक नहीं निकाल सकी होंगी; पर ज्यों ही वे थोड़ी प्राचीन हुईं कि उनकी कमजोरियां दूर हुईं और सारी सनातनी शक्तिने उसकी रक्षाका भार अपने ऊपर ले लिया!

१—उत्पन्ना द्राविडे चाहं कर्णाटे वृद्धिमागता।
स्थिता किंचिन्महाराष्ट्रे गुर्जरे जीर्णतांगता।
(पाद्म० उत्तरखण्ड ५०।५१)

२—भक्ति द्राविड़ ऊपजी, लाये रामानन्द।

ज्योतिषका प्रचार भारतमें याग-यज्ञके समय निर्णयके लिए था। फलित ज्योतिष बादमें ग्रीक आदिकोंके निकटसे आया। पहलेपहल इस फलित ज्योतिषका काफी विरोध किया गया था। आज समूचे भारतमें फलित ज्योतिषका जयजयकार है। कौन पूछता है कि यह किस विदेशसे आया था।

मुसलमानोंके साथ सिक्खोंकी सदा लड़ाई लगी रही। किन्तु उन्हींसे उन्होंने पूजा सीखी। कुरानकी पूजाके स्थानपर सिखोंने ग्रन्थ साहबकी पूजा चलाई। बुतपरस्ती समझकर सब देवियां हटाई गईं, किन्तु वे यह समझ ही नहीं सके कि ग्रंथपूजा भी एक बुतपरस्ती ही है। मुसलमान लोग जिस प्रकार भगवदुपासनाके समय सिर खुला नहीं रखते, उसी तरह सिर ढका रखना सिक्खोंने भी उन्हींसे लड़ते-लड़ते सीखा। आज किसी सिक्ख गुरुद्वारेमें कोई अनावृत-मस्तक होकर नहीं जा सकता।

राजपूतोंने भी मुसलमान बादशाहोंके साथ निरंतर लड़ाईकी; परन्तु उन्हींसे इज्जतदारीके चिह्नके रूपमें परदा-प्रथा और अफीम-सेवन सीख लिया। सम्भव है, पहले-पहल उन्होंने इन बातोंका विरोध ही किया होगा। पर एक बार 'प्राचीनता' से भूषित होते ही उन्हींकी सन्तानें इनके लिए लड़ने लगीं। एक बार जोर-जबर्दस्तीसे जो लोग अन्य धर्ममें दीक्षित होनेको बाध्य किये गये थे, उन्हींके पुत्रादिने उसी धर्मके लिए अपने आदिम धर्मके विरुद्ध रक्तकी नदियां बहाई हैं। भाग्यके ऐसे निष्ठुर परिहास इतिहासकी दुनियामें प्रायः देखनेको मिल जाया करते हैं।

असवर्ण विवाह

आर्यलोग जब इस देशमें आये तो यहांके मूल निवासियों की तुलनामें उनकी संख्या नहींके बराबर थी। किन्तु उन दिनों वे बहुधा विच्छिन्न नहीं थे, नाना वर्णों और उपवर्णोंमें विभक्त नहीं थे इसलिए एक संहत दलके रूपमें थे। यही कारण है कि उन दिनों उनकी शक्ति अपराजेय थी। इतिहासमें यह हमेशासे ही देखा जाता है कि जब एक संहत और व्यूहबद्ध दल संख्यामें अपने से अनेकगुना असंहत और विच्छिन्न गृहस्थ लोगों पर आक्रमण करता है तो जो संहत और व्यूहबद्ध होते हैं वेही विजयी होते हैं। गृहस्थ बिचारे अपना घर-द्वार लेकर ही व्यस्त रहते हैं, संहत नहीं हो पाते। आक्रमण-कारियोंके यह सब बला नहीं होती, इसीलिए वे व्यूहबद्ध हो कर काम कर सकते हैं। इसी कारणसे आर्य लोगोंने आर्येतरोंको पराजित किया।

किसी किसीका मत है कि अनार्योंके संस्रवसे अपनेको बचानेके लिये ही आर्योंने जातिभेद स्वीकार किया था। पहले यह भाग वर्ण (रंग)के द्वारा हुआ था इसीलिए जतिभेदका नाम है वर्ण भेद! जातिभेदसे जान पड़ता है कि इस भेदके मूलमें "एथनिक" (Ethnic) विचार है। गुण और कर्मके अनुसार पहले ब्राह्मण और राजन्य ये दो विशेष श्रेणियां हुई यद्यपि इनमें परस्परका प्राचीर अलंघनीय नहीं था। परस्पर इनका विवाह भी होता था और एक श्रेणीसे

दूसरी श्रेणीमें जानेका रास्ता भी खुला हुआ था। इसीलिए उन दिनों 'ब्रह्म-राजन्यौ' शब्दमें एक भेदके होते हुए भी सम्बन्ध जान पड़ता है। बाकी सब आर्य वैश्य थे और आर्येतर जातियां शूद्र। जो सब आर्येतर जातियां आर्य-संस्कृतिमें नहीं आई थीं वे सब 'निषाद' कहलाईं। आर्योंमें सभीने वेदके आधार को मान लिया था, ऐसी बात नहीं है। वेद-विरोधी व्रात्य आर्य भी थे। वेद विरोधी अनेक व्रात्योंको दलसे निकाल कर शूद्र बना दिया गया था।

ऐतरेय ब्राह्मणके एक उपाख्यानमें जरा गंभीर भावसे विचार करनेका एक विषय है। विश्वामित्रके सौ पुत्र थे। उनमें आधे मधुच्छंदासे बड़े थे, आधे छोटे। बड़े पचास पुत्रोंने पिताकी आज्ञाका पालन नहीं किया इसलिए वे अन्ध्र, पुण्ड्र, शबर, पुलिन्द, मुतिब इत्यादि अत्यन्त हेय अन्त्यज हुए। मधुच्छंदा इत्यादि छोटे कई पुत्र मान्य और श्रेष्ठ हुए (ऐतरेय ब्राह्मण, ७ म पंचिका, ६ म खण्ड, ३३ अध्याय)। यहां देखा जाता है कि अन्ध्र-शबर आदि ब्राह्मणोंके बड़े भाई हैं। यह बात जरा विचारणीय है। जान पड़ता है इसमें एक बड़े Ethnic (मानव) सत्यका आभास रह गया है। अन्ध्र-पुण्ड्र, शबरादिगण सचमुच ही तो बड़े भाई हैं, क्योंकि वे पहिले ही इस देशमें आये हैं और ब्राह्मणादि छोटे भाई हैं, क्योंकि वे बादमें इस देशमें आये हैं। किसी किसी अंशमें आर्य-पूर्व संस्कृति आर्य-संस्कृतिसे हीन तो थी ही नहीं, वरन् किसी किसी अंशमें श्रेष्ठ भी थी।

जब जातिभेद धीरे धीरे प्रतिष्ठित हुआ तो वह नाना प्रकारके सामाजिक आचार-विचारोंमें भी आत्म-प्रकाश करने लगा। शतपथ ब्राह्मणमें देखा जाता है कि ब्राह्मणादि चार वर्णोंके चैत्यकी आकृति भिन्न भिन्न तरहकी होती थीं। (१३।८।३।११)। फिर चार जातियोंके अधिकार-भेद और उसकी सीमायें भी निर्दिष्ट हुईं (ऐतरेय ब्राह्मण ७।२९)। इसमें देखा जाता है कि ब्राह्मण-क्षत्रियोंके अधिकारकी तुलनामें वैश्यों और शूद्रोंके अधिकार बहुत संकुचित हैं।

शतपथ ब्राह्मणसे पता चलता है कि उन दिनों चार वर्णोंके संभाषणकी रीति और भाषा भी भिन्न भिन्न प्रकारकी हो उठी (१।१।४।१२)।

धीरे धीरे कर्मानुसार सूत्रधार(बढ़ई), रथकार आदि श्रेणियां भी बन गईं। अनार्योंमेंसे अधिकांश नदी और जलाशयोंके किनारे रहते थे। उनमें मछली मारने और खानेका रवाज था। इसीलिये उन दिनों इनकी श्रेणी अर्थात् कैवर्त, दास, मैनाल आदिके नाम प्रायः ही मिल जाते हैं। नौका चलानेवालेको नावज और वन रक्षकोंको उन दिनों वनप कहा जाता था। कुम्हारका नाम कुलाल, नाईका वप्ता, लुहारका कर्मार। इस तरह वृत्ति और व्यवसायके अनुसार भाग हुए और कुछ देश और कुलके अनुसार भी भाग हुए।

समाजमें जातिभेद प्रतिष्ठित होनेपर भी बहुत दिनों तक भिन्न भिन्न जातियोंमें विवाहादि सम्बन्ध होते थे। बृहद्देवतामें देखा जाता है कि दार्भ्य रथवीति यज्ञ करनेके लिये अत्रिपुत्र अर्चनानसको पुरोहित पदपर वृत किया पुरोहितके पुत्र श्यावाश्व भी यज्ञमें पिताकी सहायता करनेके लिये साथ साथ गये। राजाकी सुन्दरी कन्याको देख कर श्यावाश्वने उसके साथ विवाह करना चाहा। राजाने अपनी रानीसे कहा कि अत्रिवंशीय श्यावाश्व कुछ उपेक्षणीय (अदुर्बलः) जामाता नहीं है। पर रानीने कहा कि श्यावाश्व यद्यपि पुरोहित हैं, पर मंत्रद्रष्टा ऋषि नहीं हैं। यदि किसी ऋषिको कन्यादान करो तो कन्या वेदमाता हो सकती है। इसलिये श्यावाश्व निराश होकर महर्षि अत्रिके आश्रममें गये। आरण्यमें उनके सामने मरुद्गण अविर्भूत हुए और श्यावाश्वने 'य इम् वहन्ते' मंत्रका साक्षात् किया। इस प्रकार ऋषि हो जानेके वाद वे योग्य वर समझे गये (बृहद्देवता ५।५०-७९)। शतपथ ब्राह्मणमें भी लिखा है कि महर्षि च्यवनने राजा शर्यातकी पुत्री सुकन्यासे विवाह किया था (४।१।५७)। ये सब विवाह उन दिनों बिल्कुल असाधारण नहीं समझे जाते थे।

उशिजपुत्र ऋषि कक्षीवान्का परिचय अन्यत्र दिया गया है। ऋग्वेदमें इनका कई वार उल्लेख आया है (ऋग् १।१८१; १।५१।१३; १।११२।११; ८।९।१०; ९।७४।८ इत्यादि)। इन्होंने राजा श्वनयमाव्यकी कन्यासे विवाह किया था। ये स्वनय अत्यन्त दानी थे। कक्षीवान्ने इनकी दानशीलताकी वहुत प्रशंसा की है (ऋक् १।१२६)।

वैदिक युगमें ऐसे विवाहोंका और भी वहुत उल्लेख है। विस्तारभयसे उनकी चर्चा नहीं की जा रही है। महाभारतमें भी ऐसे विवाहोंकी चर्चा है। महर्षि भृगुके पुत्र ऋचिकने राजा गाधिकी परम सुन्दरी कन्या सत्यवतीसे विवाह करना चाहा। इसपर राजाने कहा कि हमारे कुलमें नियम है कि भीतर लाल और वाहर श्यामल कानवाले ऐसे एक सहस्र घोड़े जवतक नहीं पाते, तवतक किसीको कन्या नहीं देते। ऋचिकने वरुणकी कृपासे ऐसे हजार घोड़े दिये और फलतः सत्यवतीके साथ विवाह कर सके। पुत्रवधू समेत पुत्रको देखकर महर्षि भृगु वहुत प्रसन्न हुए (वन० ११५।२१)।

ऋचिक-पुत्र यमदग्निने राजा प्रसेनजित्की कन्या रेणुकाकी पाणि-प्रार्थना की थी। राजाने कन्यादान किया (वन० ११६।२)। दशरथ राजाकी कन्या शान्ताके साथ ऋष्यश्रृंगने विवाह किया था। द्रौपदीके स्वयम्वरके अवसर पर ब्राह्मण वेशधारी अर्जुन जव कन्यार्थी होकर सामने आए, तो इसमें किसी को कोई अन्याय नहीं दिखा था। पुराणोंसे ऐसी और भी वहुतसी घटनायें उद्धृत की जा सकती हैं, पर अधिक उद्धृत करनेका कोई प्रयोजन नहीं दिखता।

पारस्कर गृह्यसूत्रके कालमें भी अनुलोम विवाह प्रचलित था, यद्यपि उन दिनों सवर्ण अर्थात् अपने ही वर्णकी कन्यासे विवाह करना अच्छा माना जाता था। अनुलोम विवाहमें ऊंचे वर्णका पुरुष निम्नतर वर्णकी कन्यासे विवाह कर सकता

है। ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य तीनों ही, इस प्रकार, शूद्रकन्यासे विवाह कर सकते थे, पर शूद्राके साथ किये गये विवाहमें वैदिक मंत्रोंका उच्चारण विहित नहीं था (१।४।८-११)। गौतम धर्मसूत्र (४।१६) और बौधायन धर्मसूत्र (१।८) में इस प्रकारके अनुलोम विवाह सिद्ध होनेपर भी क्रमशः वे हीन विवेचित होने लगे। गौतमके मतसे क्षत्रिय भार्याके गर्भसे उत्पन्न ब्राह्मण सन्तान सवर्णाजात (अर्थात् ब्राह्मण पुरुष द्वारा ब्राह्मणी स्त्रीसे पैदा हुई) सन्तान के समान ही है (Ghurye P. 78)।

स्मृतिके युगमें धीरे धीरे यह प्रथा कम होती गई। मनु यद्यपि असवर्ण विवाहको अस्वीकार नहीं कर सके तथापि उन्होंने इसकी तीव्र निन्दा की है (३-१२; ३।४३-४४)। मनुस्मृतिके नवें अध्यायमें मनुको यह बात सोचनी जरूर पड़ी है कि असवर्ण स्त्रीसे उत्पन्न सन्तानको सम्पत्तिमें क्या हक़ है, पर प्रसन्न चित्तसे नहीं (९।१४८, इत्यादि)। उन्हें यह भी लिखना पड़ा है कि गुरुकी असवर्ण पत्नियोंका शिष्य लोग कैसे सम्मान करेंगे (२।२१०)।

यद्यपि स्मृतिके नाना स्थानोंपर अनुलोम विवाहोत्पन्न सन्तानको वैध ही स्वीकार किया गया है, तथापि सम्पत्ति-विभागके समय ब्राह्मणके क्षत्रिया, वैश्या, और शूद्रासे उत्पन्न पुत्रादिमें मनुने तारतम्य विचार किया है (९।१५१-१५४)। फिर भी इस प्रकारके विवाहकी वैधता मनु अस्वीकार नहीं कर सके।

पहले इस प्रकार असवर्ण विवाहसे उत्पन्न सन्तानें पिताकी ही जाति पाती थीं, क्योंकि आर्योंके समाजमें बीज अर्थात पुरुष ही प्रधान है। आर्येतर समाजमें कन्या अर्थात् क्षेत्र प्रधान था। धीरे धीरे आर्योंमें भी कन्या या क्षेत्रका प्राधान्य स्थापित हो गया। आजकल मालाबारके नम्बूद्री ब्राह्मण, जो नायरोंकी लड़कियोंके साथ गृहस्थी चलाते हैं, उसे विवाह न कहकर 'सम्बंधन्' कहा जाता है। इस 'संबन्धम्' से जो सन्तति होती है वह नायर ही होती

है। यह व्यवस्था कन्या-तंत्र देशके ही उपयुक्त है। पहले ऐसी सन्तति जो पिताकी जातिकी मानी जाती है, इसका स्वयं ऐतरेय ब्राह्मणकार महीदास ही हैं। स्वर्गीय सत्यव्रत शामश्रमीने अपनी विद्वत्तापूर्ण पुस्तिका 'ऐतरेया-लोचनम्' में इस बातको सुन्दर ढंगसे लिखा है। एक ऋषिकी इतरा या शूद्रा पत्नीसे उत्पन्न पुत्र ही ऐतरेय थे। यज्ञके समय ऋषिने अपनी ब्राह्मणी पत्नीसे उत्पन्न पुत्रको ही गोदमें लेकर उसे नाना तत्वोंका उपदेश दिया और विचारे ऐतरेयकी उपेक्षा की। दुःखित होकर ऐतरेयने अपनी मातासे अपने मनका दुःख बताया। उनकी माताने अपनी कुलदेवी महीको स्मरण किया। शूद्रगण तो महीकी सन्तान हैं (Children of the soil)। पृथ्वी-गर्भसे देवी आवि-र्भूत हुई और ऐतरेयको दिव्य सिंहासन पर बिठाकर सर्वोत्तम ज्ञान देकर तिरोहित हुई (पृ० ११-१२)। तपस्या और उक्त प्रकारसे लब्धज्ञानके बल पर उन्होंने जिस ग्रन्थकी रचना की वही ऋग्वेदका सबसे श्रेष्ठ ब्राह्मण ऐत-रेय ब्राह्मण हैं। महीदेवीसे शिक्षा पानेके कारण ऐतरेय महीदास भी कहाते हैं (पृ० ११)।

यहांतक कि हरिवंशमें भी बीजकी ही प्रधानता स्वीकार की गई है। माता तो भस्त्रा (चमड़ेका पात्र, भाथी) -मात्र है। पुत्र पिताका होता है। जिस पितासे वह उत्पन्न होता है वही होता है[1]। विष्णुपुराण (४।१९।२) में भी यह मत पाया जाता है।

मनुके जमानेमें भी असवर्ण विवाह एकदम अप्रचलित नहीं हो गया था। लेकिन सवर्णसे विवाह ही पसन्द किया जाने लगा था (३।४३)। इसीलिये मनुने कहा है कि द्विजातियोंके विवाह में अपने अपने वर्णकी (सवर्ण) कन्या

१—माता भस्त्रा पितुः पुत्रो येन जातः स एव सः।

(हरि० ३२।१७२४)

ही श्रेष्ठ है, किन्तु स्वेच्छाकृत विवाहमें ये कन्यायें उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं (३।१२)— शूद्र केवल शूद्रकन्यासे ही विवाह कर सकता है ; वैश्य, वैश्यकन्या और शूद्र कन्यासे, क्षत्रिय, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तीनोंकी कन्यासे और ब्राह्मण इन सबसे और अपने वर्णकी भी कन्यासे विवाह कर सकता है [1]। असवर्ण विवाहमें भिन्न भिन्न जातिकी कन्याओंके साथ विवाहमें भिन्न भिन्न विधियोंका भी मनुने विधान किया है (३।४४)। शंखसंहिता (४।६-८;४।१४), विष्णुसंहिता (२४।१-८) और व्याससंहिता (२।१०-११) से भी इस बातका ही समर्थन होता है। व्यास (२।१०) कहते हैं कि सवर्ण स्त्रीके होते हुए भी जो कोई असवर्ण कन्यासे विवाह करे, तो उस कन्यासे उत्पन्न संतान भी सवर्णोत्पन्न सन्तानसे हीन नहीं होती।

शूद्र भार्यामें ब्राह्मण द्वारा उत्पन्न कन्यासे यदि कोई ब्राह्मण विवाह करे, तो मनुके मतसे इस प्रकार सात पुश्तके बाद सन्तान पूरा ब्राह्मण हो जायगी (१०।६४-६५)। मनुने यह स्वीकार किया है कल्याणकारी विद्या अपर या हीन जनसे भी ली जा सकती है, परम धर्म अन्त्यज चाण्डालसे भी और स्त्री-रत्न दुष्कुलसे भी ग्रहण किया जाना चाहिये (२।२३८)। अनुलोम विवाहोत्पन्न सन्तानकी चर्चा याज्ञवल्क्यसंहिता (१।९१-९२) में भी है और दक्षसंहिता (६।१७) और गौतमसंहिता (४ थ अध्याय) में भी।

असवर्ण स्त्रियां सहधर्मिणी न हो सकती हों, सो बात नहीं है। यज्ञके लिये अग्निमंथन कार्य ब्राह्मणकी सवर्णा स्त्रीके करनेका ही विधान है ; किन्तु अभावमें असवर्ण पत्नी भी यह कार्य कर सकती थी (कात्यायन संहिता ८।६)।

१—शूद्रैव भार्या शूद्रस्य सा च स्वा च विशः स्मृते।
ते च स्वा चैव राज्ञः स्युस्ताश्च स्वा चाग्रजन्मनः॥
(मनु० ३।१३)

विष्णु संहितामें धर्मकार्यमें सवर्ण स्त्रीको प्रशस्त कहा है पर अभावके समय अव्यवहित पर वर्णकी पत्नीके साथ उक्त कार्यके करनेका विधान किया है (२६।१-३), यद्यपि शूद्र स्त्रीके साथ धर्मकार्य करनेको उचित नहीं माना गया (२६।४)। आगे दिखाया जायगा कि यह नियम सब समय समाजमें मान्य नहीं था। मनुने स्वयं विचार किया है कि अधम योनिजा कन्या अक्षमाला वसिष्ठके साथ युक्त होकर और तिर्यक्-कन्या शारंगी मंदपाल ऋषिकी परिणीता होकर मान्या पदवीको प्राप्त हुई थीं। इनके सिवा और अनेक नारियां निकृष्ट कुल में उत्पन्न होकर भी पतिके महद्गुणके कारण उत्कृष्ट स्थान प्राप्त कर गई थीं[1]। शास्त्रकारोंने यह भी निर्देश किया है कि सवर्णा और असवर्णा स्त्री से उत्पन्न सन्तानोंके जातकर्मादि संस्कार कैसे किये जांय (व्यास १। ७-८)। लेकिन ऐसा देखा जाता है कि असवर्ण पत्नियों और उनकी सन्तानोंपर से संहिताकारोंकी ममता क्रमशः कम ही होती गई।

ममताके इस ह्रासका प्रमाण सम्पत्ति-विभागसे जान पड़ता है। विष्णुसंहिता (१८। १-५) कहती है कि ब्राह्मणके यदि चारों वर्णोंकी पत्नियां हों, तो सम्पत्तिके दस भाग किये जाने चाहिये। चार भाग ब्राह्मणीसे उत्पन्न पुत्र पायेंगे, तीन भाग क्षत्रिया पत्नीवाले, दो भाग वैश्या भार्यासे उत्पन्न और एक भाग शूद्रा भार्यासे उत्पन्न पुत्र प्राप्त करेंगे। इस व्यवस्थाका समर्थन मनुने भी किया है (९। १५३)। विष्णु संहितामें आगे चलकर बताया गया है कि किसी एक

१—अक्षमाला वसिष्ठेन संयुक्ताधमयोनिजा।
शारङ्गी मंदपालेन जगामाभ्यर्हणीयताम्।
एताश्चान्याश्च लोकेऽस्मिन् अपकृष्टप्रसूतयः।
उत्कर्षं योजिताः प्राप्ताः स्वैः स्वैर्भर्तृगुणैःशुभैः।
(मनु ९। २३-२४)

वर्ण या दो वर्णकी पत्नियोंके पुत्र न होनेपर क्या व्यवस्था होगी। अन्तमें, यदि अकेली शूद्रासे उत्पन्न पुत्र ही हो, तो वह आधी सम्पत्तिका अधिकारी बताया गया है—द्विजातीनां शूद्रत्वे कः पुत्रोऽर्द्धहरः (विष्णु १८)। याज्ञवल्क्य संहिता (रिक्थ भाग प्रकरण १२८) का भी यही मत है।

मनुका अपना मत यह है कि ब्राह्मणके ब्राह्मणीका पुत्र ३ भाग क्षत्रियाका पुत्र २ भाग, वैश्या पुत्र १½ भाग और शूद्रा-पुत्र १ भाग पायेगा (९। १५१)। गौतम संहिता (२९ अध्याय) में भी ऐसी ही व्यवस्थाका समर्थन है।

मनु शूद्रागर्भजात पुत्रको दसवें हिस्सेसे अधिक देनेके क़तई खिलाफ़ हैं, चाहे अन्यवर्णकी पत्नियोंसे सन्तान हों या नहीं[१]। युधिष्ठिरने भीष्मसे पूछा था कि ब्राह्मणकी ब्राह्मणीके गर्भसे उत्पन्न पुत्र तो निःसन्देह ब्राह्मण है, क्षत्रिया और वैश्यासे उत्पन्न भी ब्राह्मण ही है फिर बंटवारे में यह विषमता क्यों की जाती है (अनुशासन पर्व ४७। २८)। भीष्मने इसपर जवाव दिया कि ब्राह्मणी जातिमें श्रेष्ठ हैं, इसलिये वे ज्येष्ठाकी तरह माननीय हैं। संसारके कर्तव्य और उत्तरदायित्वका भार बहन करनेमें भी वही अग्रणी हैं, इसीलिये वे श्रेष्ठ हैं और इसीलिये ऐसी व्यवस्था की गई है।

ब्राह्मण गुरुकी सवर्णा और असवर्णा दोनों तरहकी पत्नियां होती थीं। ब्राह्मणादि शिष्यगण उनका सम्मान कैसे करें, इस बातपर मनुका विधान है कि सवर्णा पत्नी तो गुरुके समान ही पूज्य है, किन्तु असवर्णायें प्रत्युत्थान और अभिवादन आदिसे सम्मानित की जानी चाहिये (२। २१०)। विष्णु संहितामें यह बात और भी स्पष्ट करके कही गई है। हीनवर्णोत्पन्ना गुरु पत्नियोंको दूरसे

१—नाधिकं दशमाद्दद्याच्छूद्रापुत्राय धर्मतः।
(९। १५४)

अभिवादन करना चाहिये, पादस्पर्शादिसे नहीं (३२ । ५) उशनःसंहिताका भी यही मत है (३ । २७)।

पहले ही बताया गया है कि ब्राह्मणादि वर्णोंके शव देह पुराने जमानेमें शूद्र दास स्मशानमें ले जाया करते थे। बादमें शूद्रोंका शवको स्पर्श करना निषिद्ध हो गया। आगे चलकर देखते हैं कि यद्यपि पिता और माताके शवको वहन करना और दाह करना पुत्रका ही कर्तव्य है (विष्णुसंहिता १९।३) तथापि द्विजातिका शव शूद्र पत्नीके गर्भसे उत्पन्न पुत्र वहन नहीं कर सकता (१९। ४)।

सवर्णा और असवर्णा पत्नियोंकी सन्तानोंकी मृत्युसे अन्यान्य पुत्रोंका अशौच कैसे होता था, इसकी नाना प्रकारकी व्यवस्थायें विष्णुसंहिता (२२ अध्याय), उशनःसंहिता (६ ष्ठं अध्याय) और शंखसंहिता (१५। १६-१८) आदि धर्मशास्त्रोंमें वर्णित है। प्रसङ्गवश यहां उशनाःकी एक बातका उल्लेख किया जा रहा है। ब्राह्मणके सेवक क्षत्रिय हों, वैश्य हों या शूद्र हों, सबके लिये ब्राह्मणके समान दस दिनका ही अशौच विहित है (६ । ३५)। अधिक दिनका अशौच होनेसे काम काजमें बाधा पड़ सकती थी, शायद इसीलिये यह व्यवस्था की गई थी।

अबतक हम अनुलोम विवाह (ऊंचे वर्णके पुरुषका नीचे वर्णकी कन्याके साथ विवाह) की ही चर्चा करते आये हैं। शास्त्रके मतसे यह विहित है; पर इसका उल्टा प्रतिलोम विवाह अर्थात् ऊंचे वर्णकी कन्याका नीचे वर्णके वरके साथ विवाहका समर्थन शास्त्र नहीं करता। किन्तु प्राचीन कालके अनेक दृष्टान्तों से ऐसा नहीं मालूम होता कि यह प्रथा एकदम अचल है। दैत्याचार्य शुक्र ब्राह्मण थे। उनकी पुत्री देवयानीने ययाति राजासे विवाह करना चाहा। ययातिने संकुचित होकर कहा—मैं क्षत्रिय हूं; तुम्हारे योग्य नहीं हूं (आदि ८१। १८)। इसपर देवयानीने कहा कि ब्राह्मण क्षत्रिके साथ और क्षत्रिय ब्राह्मणके

साथ संसृष्ट है। जहां ऐसी घनिष्ठता है वहां मुझे पत्नीरूपमें ग्रहण करनेमें तुम्हें क्या आपत्ति है। तुम स्वयं ऋषि भी हो और ऋषिपुत्र भी हो, मेरे साथ विवाह करो [१]। अनेक तर्कके बाद ययातिको राजी होना पड़ा। स्वयं शुक्राचार्यने प्रसन्नतासे इसपर अपनी सम्मति दी थी (८१ । ३१)।

ब्राह्मण-क्षत्रियकी घनिष्ठताकी बात कह कर यहां देवयानीने प्रतिलोम विवाह किया। किन्तु शास्त्रमें इस कार्यके लिये इनकी किसीने कोई निन्दा भी नहीं की न लोकमें किसीने इन्हें जाति-बहिष्कृत किया।

नैमिषारण्यमें रोमहर्षण सूतपुत्र शौनकादि ऋषियोंको भागवतकी कथा सुना रहे थे। बलराम जब वहां गये, तो वे उठे भी नहीं और अंजलि बांधकर नमस्कार भी नहीं किया। बलरामजीने क्रोधके साथ ऐसे सूतपुत्रको ऋषियोंके बीच अत्युच्च आसनपर बैठा देखा [२]। ये सूत प्रतिलोमज थे। श्रीधर स्वामीने उक्त श्लोकोंकी टीकामें 'सूतं प्रति लोमजं' ऐसा लिखा है। इस प्रकार प्रतिलोमज होनेसे किसी प्रकार रोमहर्षणका स्थान नीचा हो गया था, ऐसा तो नहीं दिखता।

स्मृतियोंके देखनेसे जान पड़ता है कि शूद्रकन्या और अन्त्यजकन्यासे विवाह करना एक दम अचल था। किन्तु शान्तनुके धीवरकन्याके गर्भसे उत्पन्न

१—संसृष्टं ब्रह्मणा क्षत्रं क्षत्रेण ब्रह्म संहितम्।
ऋषिश्च ऋषिपुत्रश्च नाहुषांग वहस्व माम्।
(आदि० ८१।१९)

२—लोमहर्षणमासीनं महर्षेः शिष्यमैक्षत।
अप्रत्युत्थायिनं सूतमकृतप्रह्वांजलिम्।
अध्यासीनं च तान् विप्रान् चकोपाद वीक्ष्य माधवः।
(भागवत १० । ७८ । २२-२३)

सन्तान ही तो कौरव-पाण्डव थे। द्रौपदी जब वरणीयोंके जाति-कुलका विचार करने लगीं तो उस समय पाण्डवोंके क्षत्रियत्वके विषयमें तो उन्हें कोई सन्देह नहीं हुआ था हालांकि वही द्रौपदी महावीर कर्णको सूतपुत्र कहकर वरण करनेमें असम्मति प्रकट कर चुकी थीं। शायद उन दिनों भी सामाजिक दोष ताजे होनेपर ही भयंकर समझे जाते थे, पुराने होने पर वे समाजको स्वीकार हो जाते थे !

आचार्य घुरे कहते हैं कि सुमित्रा भी शूद्रकन्या थीं (पृ० ८० और पृ० ५९) यद्यपि इसके लिये उन्होंने कोई प्रमाण नहीं दिया। पर उनसे उत्पन्न दशरथके दोनों पुत्र तो पूरे क्षत्रिय ही माने गये थे !

इसी पुस्तकमें अन्यत्र कहा गया है कि दीर्घतमा ऋषिने दासीके गर्भसे कक्षीव और चक्षुष नामक दो पुत्र उत्पन्न किये थे (वायुपुराण ९९।७०) दोनों ही ऋषि हुए। ये विवाहित माताके गर्भसे नहीं पैदा हुए थे।

जिस अंध-मुनिपुत्र (श्रवणकुमार) को वध करनेके कारण राजा दशरथ इतने मुह्यमान हुए थे, वह भी शूद्रा माता और वैश्य पिताके पुत्र थे (अयोध्या काण्ड ६३।५१)। फिर भी ये एक तपस्वी थे, मस्तक पर जटा थी, परिधानके वल्कलाधीन था (वही ६३।२८;३६) और दशरथ उनके प्राणत्यागकी बातसे नितान्त सन्तप्त थे (वही ६३-५२)। इस अन्धतापसको राजा दशरथने महर्षि (६४।१) मुनि (६४।७) तापस (६४।१६) आदि कहा है और उनकी माता और उनके पिताको 'भगवन्तौ' कहा है (६४।१८)। उन्होंने यह भी कहा कि वह 'ऋषि' शाप देकर उन्हें तभी भस्म कर सकते थे (६४।२०)। अन्धतापसोंने दशरथसे कहा था कि ज्ञानपूर्वक उसप्रकार 'तपोनिष्ठ' 'ब्रह्मवादी' 'मुनि' पर अस्त्रप्रहार करनेसे सिर सातखण्डोंसे विभक्त हो जाता है [1]।

१—सप्तधा तु भवेन्मूर्धा मुनौ तपसि तिष्ठति।
ज्ञानाद्विसृजतः शस्त्रं तादृशे ब्रह्मवादिनि॥ (वही ६४।२४)

यही नहीं, दशरथने अज्ञानपूर्वक मारा था, यदि उन्होंने ज्ञानपूर्वक उस मुनिको वध किया होता, तो तत्काल उन्हें 'ब्रह्महत्या' का पाप लगता [१]। इसका मतलब यह हुआ कि ज्ञानपूर्वक शूद्राके गर्भजात वैश्यपुत्र तपस्वीका वध करने पर भी दशरथको ब्रह्महत्याका पाप लगता। इस तपस्वीपुत्रके शास्त्राध्ययनको सुनकर माता-पिता ब्राह्म मुहूर्तमें आनन्दित होते, यह तापस-कुमार स्नान करके, अग्निमें आहुति देकर माता-पिताकी सेवामें नियुक्त रहते थे। अगर इन्हें ज्ञानपूर्वक मारा गया होता, तो क्षत्रियको जरूर ब्रह्महत्या लगती।

अब सवाल यह होता है कि उत्तरकाण्डके ७६वें अध्यायमें जो दशरथके पुत्र मर्यादा पुरुषोत्तम रामके शूद्रतपस्वीके शिरश्छेदकी कहानी दी हुई है, वह क्या सही है? कथा है (७३ अध्याय) कि किसी ब्राह्मणका पुत्र अकालमें ही मर गया। राज-व्यवस्थाकी गलती ही इसका कारण समझी गयी। प्रतीकारके लिये राम बाहर निकले। दण्डकारण्यमें शंबूक नामक तपस्वीको तप करते देख उसका सिर काट लिया और देवताओंने साधुवाद और पुष्पवृष्टि की। उत्तर-काण्डकी अनेक कथाओंको पंडित-जन प्रक्षिप्त मानते हैं। मैं स्वयं ऐसा नहीं कहना चाहता। मैं कहता हूं कि इस हिसाबसे तो अन्ध मुनिपुत्र भी 'तपोधन ब्रह्मवादी' होने के उपयुक्त पात्र नहीं थे। उस तापस कुमारके वधकी कहानी के साथ शंबूकके वधकी कहानी मिलाकर देखनेसे क्या जान पड़ता है? यह स्मरण किया जा सकता है कि तुलसीदासजीने अपनी रामायण में उत्तरकाण्डकी इन घटनाओंको छोड़ दिया है।

१—अज्ञानात्तु हतो यस्मात् क्षत्रियेण त्वया मुनिः।
तस्मात्त्वां नाविशत्याशु ब्रह्महत्या नराधिप॥
(६४।५५)

मार्कण्डेयपुराणमें एक शूद्र तापसकी कथा पाई जाती है। जब राजा वपुष्मान्‌ने तपस्वी नरिष्यन्तको मार डाला तब नरिष्यन्तकी पत्नीने उस "शूद्र-तापस" से अपने पुत्र दमके पास यह खबर भिजवाई। दमने यह संवाद सुनकर अपने मंत्री और पुरोहितको बुलाकर कहा कि आपने यह बात सुनी; जो इस "शूद्र तपस्वी" ने कही है—'श्रुतं भवद्भिर्यत्प्रोक्तं तेन शूद्रतपस्विना।" (१३६।२) इस शूद्र तपस्वीके तपसे पृथ्वीका रसातल चले जानेका कोई उल्लेख नहीं मिलता, और न इस तपस्वीके इस अपकर्मके लिये किसीने प्राणदण्डकी सजा देनेकी ही जरूरत समझी।

स्कंदपुराणके आवन्त्यखण्ड (रेवा खण्ड) में एक भक्त शबरकी कथा पाई जाती है (५६।५९)। यह सस्त्रीक शबर आहारकी खोजमें चैत्र शुक्ला एकादशीके दिन शूलभेद तीर्थमें आ उपस्थित हुआ। उसने ऋषि-मुनि-संघको देखा (५६।६७-६८)। यह जानकर कि उस दिन पुण्याह है वह देवशिलाके पास गया और कुमुदसे जनार्दनकी पूजा की (५६-८२)। उपवास व्रत करके उस शबर भक्तने श्रीफल लेकर यथाविधि होम करके समस्त देवताओंको नमस्कार करके स्त्री सहित भोजन किया [१]। यहां भी उस ऋषि-मुनि संघ सेवित आश्रममें शबरके द्वारा विष्णुपूजा और होम अनुष्ठित करनेमें कोई बाधा पड़ती नहीं दिखती।

पुराणोंमें नाना स्थानोंपर शूद्र और अन्त्यजोंकी तपस्याकी कथा पाई जाती है। विशेष कर शिवरात्रि आदि व्रत तो व्याध आदि जातियों से ही आर्य संस्कृतिमें गृहीत हुए हैं। हीनवर्णके आदमियोंकी इस तरह पूजा और तपस्याके तो बहुत प्रमाण मिलते हैं, किन्तु उत्तरकाण्डके ब्राह्मणकी भांति बच्चेकी अकाल

१—गृहीत्वा श्रीफलं शीघ्रं होमं कृत्वा यथाविधि।
सर्व देवान्नमस्कृत्य भुक्तोऽपि च तया सह॥
(वही, ५६।१२३।१२४)

मृत्युका अभियोग कहीं नहीं सुनाई देता और न कहीं राम जैसे शिरश्छेदकारी धर्मरक्षकका ही पता मिलता है। खैर, ये सब तो साधारण तपस्या और पूजाकी बात हुई। ऐसे भी दृष्टान्त पाये जाते हैं, जहां ऐसे लोग यागयज्ञके पुरोहित नियुक्त हुए थे, जो ब्राह्मणेतर कुलकी माताओंसे उत्पन्न हुए थे। आगे लाट्यायन श्रौतसूत्र और द्राह्यायण श्रौतसूत्रके प्रमाणसे यह बात दिखाई जा रही है।

शांखायन गृह्यसूत्रमें बताया गया है कि मातामें यदि अपतिव्रता दोष हो तो उस दोषको क्षालन करनेके लिये मंत्र पाठ करना होता है। ये मंत्रपाठक लोग समाजके ब्राह्मण और यज्ञके होता होते थे। आपस्तंब श्रौतसूत्रमें (१।९।९), आपस्तंब मंत्रपाठमें (२।१९।१) और हिरण्यकेशि गृह्यसूत्रमें (२।१०।७) भी यही बात है। स्वयं मनु (९।२०) ने भी इस मंत्रका उल्लेख किया है। इस प्रकार स्पष्ट है कि ब्राह्मण या पुरोहित होनेके लिये जन्मसे विशुद्ध होना ही होगा, ऐसी कोई बात नहीं है। इसीलिये काठकसंहितामें ब्राह्मणके पिता-माताकी बात पूछना निषिद्ध है। अन्य धर्म ग्रंथोंमें भी दैव कर्ममें ब्राह्मण-परीक्षा निषिद्ध है (शंखसंहिता १३।१)।

लाट्यायनीय श्रौत सूत्रमें दशपेय यागके प्रकरणमें (९म प्रपाठक, २य कंडिका ५-७) यह विधि है कि दस पुरोहित सोमचमस पान करनेके पूर्व अपने पिता पितामहादि क्रमसे दस पीढ़ी तकके और माता पितामही आदि क्रमसे दस पीढ़ी तकके नाम उच्चारण करेंगे। माता पितामही आदिमें यदि किसी ऐसीका नाम आ जाय, जो ब्राह्मण-कन्या नहीं थी, तो उसे छोड़कर ब्राह्मण कन्याओंके नामसे ही दसकी संख्या पूरी करनी चाहिये। और यदि नाम याद न हों तो जहां तकसे याद हों वहींसे याद किये जांय[1]।

१—ते दश मातृदश पितृन् इत्यन्वाख्याय प्रसर्पेयुः पुरादशमात्पुरुषादित्याह ॥५॥
यत्र अब्राह्मणीमधिगच्छेयुर्ब्राह्मण्योवाभ्यासं दशमं पूरयेयुः ॥६॥
अस्मरतश्च यतः स्मरेयुः ॥७॥

द्राह्यायण श्रौतसूत्रमें भी इस यज्ञकी यही विधि है। इन बातोंसे स्पष्ट है कि अब्राह्मणीकी सन्तति ब्राह्मण ही होते थे और उनका पौरोहित्य भी वैध ही था। इसीलिये लाट्यायन और द्राह्यायणके युगमें असवर्ण विवाह, जो अच्छी तरह प्रचलित था, इसमें सन्देह नहीं रहता। पंडित शाम शास्त्री अपने Evolution of Castes ग्रंथमें (पृ०४) ऐसा ही समझते हैं।

वर्ण-विशुद्धिका वैज्ञानिक विचार

शायद एक समय जाति वर्ण या रंग द्वारा ही स्थापित हुई होगी। किन्तु इतने दिनों तक नाना जातियोंका एक साथ वास करनेके फल-स्वरूप वर्णकी विशुद्धि कहां तक टिकी रह सकती है? जिस मनोवृत्तिमें संयमपर जाति या वर्णकी विशुद्धता निर्भर करती है, वह कितनी उद्दाम है और उसके सामने आदमी कितना निरुपाय है इसका प्रमाण आजकी अवस्थासे और शास्त्र पुराणादि की कथाओंसे चल जाता है। शास्त्रों और पुराणोंमें देवताओं और ऋषि मुनियों के चरित्रमें भी उस दोषका प्रवेश कुछ कम मात्रामें नहीं है। आजकी जाति जो वर्ण (रंग) के ऊपर प्रतिष्ठित नहीं है इसका सबूत—'करिया ब्राह्मन गोर चमार' आदि प्रचलित लोकोक्तियां हैं।

भारतीय मनुष्य गणनाकी रिपोर्टसे जान पड़ता है कि ब्राह्मण क्षत्रिय आदि सभी जातियोंके चेहरे प्रदेश-भेदसे भिन्नभिन्न तरहके हैं। द्रविड़-बहुल देशमें वह द्रविड़-मुखाकृतिसे मिलते हैं,मंगोल-बहुल प्रदेशोंमें मंगोल चेहरोंसे और शक-बहुल प्रदेशोंमें शक आकृतियोंसे (Cens. ofIndia, 1921,Vol.I.P.489)।

युक्तप्रान्त और बिहारके ब्राह्मणोंके साथ बंगालके ब्राह्मणोंके चेहरेमें बहुत कम समानता है। बल्कि महाराष्ट्र चित्पावन और शेनवी ब्राह्मणोंके साथ बंगालके ब्राह्मणोंकी समानता है। यह द्राविड़त्वका साक्षी है। बंगाली विवाहमें शंखकी चूड़ियोंका व्यवहार भी इसी बातका साक्षी है (Ghurye, P.120-121)। बंगालके चण्डाल और ब्राह्मणोंके चेहरेमें जो समानता है, उतनी भी बंगालके ब्राह्मणों और युक्तप्रान्तके ब्राह्मणोंके चेहरोंमें नहीं है (वही)। श्री रिज़ली और डाक्टर वाइज़की बात उद्धृत करके कैम्पबेल साहब कहते हैं कि बंगालके चमारों की मुखाकृति इस प्रदेशके ब्राह्मणोंकी मुखाकृतिकी अपेक्षा अधिक आर्यसादृश्य लिये हुए है (Ind. Ethnology. Vol, II. P. 293, 271)। गणितकी भाषामेंकहें,तो बंगालके ब्राह्मण और चाण्डालका अन्तर १.११ है और बंगालके ब्राह्मण और युक्तप्रान्तके ब्राह्मणका अन्तर ३.८९ है (Ghurye, P. 11)

ललाट और नाकके परिमाणसे जाति निर्णय करनेकी जो वैज्ञानिक प्रणाली है, उससे यदि विचार किया जाय, तो इस देशमें विशुद्ध आर्यका मिलना ही कठिन है (Cens.Ind. Vol. I. P.500)। यह जरूर है कि यह मापका प्रमाण अन्तिम और अचूक प्रमाण नहीं भी हो सकता।

यह पहले ही दिखाया जा चुका है कि पुराने जमानेमें एक जातिसे दूसरी जातिमें बदल जाना सदा होता रहता था। आजके समाजमें यद्यपि वैसी प्राण-शक्ति नहीं है, तथापि पूर्वी बंगालमें आज भी अनेक तथाकथित निम्नवर्णके लोग अर्थ और प्रतिपत्तिकी वृद्धिके साथ ही साथ 'भद्र' कही जानेवाली श्रेणीमें मिल जाते हैं (Cens. Ind. Vol, V, I, P. 351)। भारतमें सर्वत्र ही देखा जाता है कि किसी हीन वर्णके आदमी राजा होते ही क्षत्रियत्वका दावा करते हैं। नाना कारणोंसे ब्राह्मण लोग भी इस दावेको मंजूर कर लेते हैं। कभी कभी अर्थ-लोभसे और कभी कभी—जैसा शिवाजी आदि वीरोंके उदा-

करणसे स्पष्ट है—राजनीति-गत उच्चतर आदर्शके कारण यह समर्थन प्राप्त होता है।

कोच, तिपरा, गारो हाजं प्रभृति उत्तर और पूर्वी बङ्गालकी बहुतेरी जातियां जमाने से इस देशमें 'जल-अनाचरणीय' थीं; अर्थात् इनके हाथका जल नहीं ग्रहण किया जाता था। इस समय इन जातियोंके लोग अपने क्षत्रियत्वका दावा करते हैं। संख्या और प्रभावके बलपर तथा आज कलकी शिक्षा-दीक्षाके गुणसे इस समय बहुत जगह उनका दावा मान लिया गया है (वही पृ० ५२०)।

प्रायः ही देखा जाता है कि भारतकी प्राचीन आर्यभूमिसे जो प्रदेश जितनी ही दूर हैं, उनमें आर्यरक्त उतना ही कम है और उतनाही नाना आर्येतर रक्तसे उसका सम्मिश्रण हुआ है (वही पृ० ३६३)। फिर भी इन्हीं दूरस्थ प्रदेशोंमें धार्मिक कट्टरता और सामाजिक संकीर्णता अधिक है।

मणिपुरी, कोच, गारो डलू, हाजं आदि जातिके लोग क्षत्रियत्वके दावेके साथ ही साथ अपनेमें बहुत कुछ परिवर्तन भी करनेमें समर्थ हुए हैं (वही पृ० ३५८)। निचले आसामके 'काछारी' लोग ब्राह्मण गुरुकी शरणमें जानेपर 'शरणीया' नाम धारण करते हैं। फिर या तो 'छोटे कोच' या 'बड़े कोच' होकर बादमें कोच लोगोंमें मिल जाते हैं (Cens. Report, 1931, Vol, III, Part I, P, 221)। कोच होते ही राजवंशी नाम लेकर उन्हें क्षत्रियत्वका दावा उपस्थित करना आसान हो जाता है।

मणिपुरी आदि जातियोंकी बातें तथा उच्चतर जातियोंमें अनेक जातियों के बदलनेकी बात इसी ग्रन्थमें अन्यत्र लिखी गई है। इन सब आर्येतर जातियों में से अनेकोंमें पहले विधवा विवाह, स्त्रीस्वाधीनता, वन्य वराहकी मृगया आदि प्रचलित था। बड़ी उमरमें लड़के-लड़कियां स्वयं अपना जोड़ा स्थिर करके विवाह करती थीं। अब वे आर्य होनेके नशेमें विधवा-विवाहको छोड़ रहे हैं और बाल

विवाहकी चलन जोरोंसे बढ़ा रहे हैं। इसके परिणाम स्वरूप उनमें भी नैतिक अधोगति दिखाई दे रही है। मृगया और मांसाहारादि त्याग करनेसे शारीरिक बलवीर्य भी क्रमशः ह्रास होते जा रहे हैं। परदा प्रथा नये सिरेसे उनमें घुस रही है और स्त्री-शिक्षाके मार्गमें वाधा खड़ी हो रही है (Cens. Report I.P.162, 233)। उच्च होनेका एक और आवश्यक गुण है, दूसरी जातियों को घृणा करना और छुआ छूतका मानना। यह बात भी उच्चतर वर्णत्वके दावेके साथ इनमें आ रही है (वही पृ० ५२९)। उच्च होनेकी दुराशा मामूली बात थोड़े ही है!

स्पृश्यास्पृश्य विचार

जाति और कुलकी विशुद्धि-रक्षाके लिये अन्यके संस्पर्शसे अपनेको बचाना पड़ता है। पर ऐसा जान पडता है कि इस प्रकारका प्रयत्न आर्योंने ही प्रवर्तित नहीं किया। द्रविड़ और द्रविड़-पूर्व जातियां भी अपनी अपनी सांस्कृतिक विशेषतायें इन्हीं नियमोंसे सुरक्षित रख सकी थीं। आर्योंने यह बात उन्हीं से सीखी होगी। आज भी स्पर्शास्पर्शका विचार प्राचीन आर्यभूमिकी अपेक्षा आर्योतर प्रधान प्रदेशोंकी जातियों में ही अधिक तीव्र और कठोर है।

दक्षिणमें नायर जातिसे तियाँ जाति वाले बारह पग दूर रहने को वाध्य हैं। पुलयन जातिके लोग तो नजदीक भी नहीं आ सकते। शूद्रके घरकी चौहद्दीमें स्थित जलाशयमें ब्राह्मणका स्नानादि नहीं चल सकता (Wilson's Indian castes, Vol,II P. 74)। इलावन या शानारगण २४ पग दूर रहनेको मज़बूर हैं। पुलयनके स्पर्शसे ब्राह्मणको सचेल स्नान करना पड़ता है (वही)। घुरेने अपने ग्रन्थमें इस विषय की अनेक बातें इकठ्ठी की हैं (पृ० ९-१४)।

निम्नतर जातियोंमें यह भेद इतना उग्र है कि कह कर समझाया नहीं जा सकता। पुल्यन जातिके किसी आदमीको यदि कोई पारिया छू दे, तो पुल्यन पांच बार स्नान करके और उंगलीसे रक्त निकाल देनेके बाद जाकर शुद्ध होता है। कुरिच्चन जाति यदि किसी अन्य नीच जाति से छू जाय तो उसकी शुद्धिकी व्यवस्था और भी भयंकर है। सर्वत्र यही देखा जाता है कि ऊंची जातियों की अपेक्षा नीची जातियोंमें इसकी तीव्रता कहीं अधिक कठोर है।

दक्षिण भारतमें उल्लादन जाति यदि ४० हाथके भीतर आ जाय तो शूद्र भी दूषित हो जाता हैं, ब्राह्मणादि की तो बात ही क्या है (Thurston.VII P-220)। नायादि जातिका आदमी दो सौ हाथ की दूरीपर आ जाय तो सभी अपवित्र हो जाते हैं (वही Vol, V, P. 275)। उन्हें कुछ भिक्षा देनी हो तो दूर जमीनपर रख कर वहां से दाता हट जाता है। फिर डरते डरते वे आकर भिक्षा उठा ले जाते हैं (वही पृ० २७४)।

जिस प्रकार ब्राह्मणोंके लिये पारिया अस्पृश्य हैं, ठीक उसी प्रकार पारियाके लिये ब्राह्मण भी अस्पृश्य हैं। पारिया या होलेया जातिके मुहल्लेसे जानेवाले ब्राह्मणको मार खानी पड़ती है, पहले तो कभी कभी प्राण भी देने पड़ते थे। इसके बाद ब्राह्मणके वहांसे हट जाने पर ये (पारिया) लोग गोबरसे अपने गांव और मुहल्लेकी शुद्धि किया करते हैं (Thurston, VI, P. 88)।

कभी कभी आपसके इस द्वेषका हेतु बड़ा मजेदार होता है। मद्रास प्रान्तमें कापू जातिकी संख्या सबसे अधिक है। कहते हैं कि इनके पूर्व पुरुषोंने पांडवोंकी जार-कन्यासे विवाह किया था। इनकी कोई कोई शाखा नर्तकी की सन्तान है (Thurston II P. 245, P.247)। इनमें स्त्रियोंकी ही प्रधानता है और किसी किसी शाखामें विधवा-विवाह भी चलता है (वही)।

कापुओंकी 'येरलम' शाखा अत्यन्त ब्राह्मण-विद्वेषी है। कारण यह बताया जाता

है कि कोई दरिद्र ब्राह्मण अपनी कन्याका विवाह यथासमय अर्थाभावके कारण नहीं कर सका और कन्याको कुमारी छोड़ कर ही चल बसा। अन्य ब्राह्मणोंने उस असहाया कन्याको जातिच्युत किया। कन्या निश्चय ही निर्दोष थी और उसे दण्ड भी बिना दोषके ही दिया गया था। एक कापूने विपद्ग्रस्त कन्याको अपने घरमें स्थान दिया। उसीसे उत्पन्न सन्तान 'येरलम' हैं। ये कहते हैं कि ब्राह्मणोंके दिमाग तो होता है किन्तु हृदय नहीं होता, नहीं तो निर्दोष कन्याको जातिच्युत क्यों करते? न तो ये ब्राह्मणका छुआ कोई अन्न ही ग्रहण करते हैं और न अपने किसी अनुष्ठानमें उन्हें बुलाते ही हैं। विवाहमें हवन नहीं होता, क्योंकि ऐसा करने पर ब्राह्मणोंको बुलाना आवश्यक हो जाता। वृद्धा पुरंध्रियां आचारादि करके विवाह करा देती हैं (Thurston III P, 229)।

बंगालके 'काले पहाड़' के ब्राह्मण-विद्वेषके मूलमें भी कुछ ऐसे ही हेतु थे। पंजावके 'काले मिहिर' की कहानी भी वहुत कुछ ऐसी ही है। ब्राह्मणोंने उसके प्रति अन्याय किया था, उसे वह मृत्यु तक भूल नहीं सका और बराबर बदला लेता रहा। इसका पुराना नाम जयमल था। उसकी कबरके पास ब्राह्मण नहीं जा सकते (Gloss. Punjab and N.W.P.Vol. III. P, 425)।

होलेय अत्यन्त नीच मानी जानेवाली जाति है। ब्राह्मणके स्पर्शसे उनका गृह एकदम अपवित्र हो जाता है (Mysore. III. P, 344)। इनके गांव में प्रवेश करनेपर ये लोग ब्राह्मणोंको कुछ दिन पहले तक मार डालते थे। उड़ीसाके कुम्भीपटीया जातिके आदमी सबका छुआ खा सकते हैं किन्तु ब्राह्मण, राजा, नाई और धोबी उनके लिये अस्पृश्य हैं। और भी ऐसी अनेक नीच समझी जाने वाली जातियां हैं, जिनके लिये ब्राह्मणका स्पर्श किया हुआ अन्न अशुचि है।

अब विचार करके देखा जाय कि यह भेद-बुद्धि या वर्जन-शीलता क्या

आर्योंने इस देश में परिचित कराया होगा? अन्यान्य देशोंमें भी तो आर्योंकी नाना शाखायें हैं; उनमें यह भेद-बुद्धि क्या वर्तमान है? यदि है, तो उसकी उग्रता कहां तक है? जिस प्रदेश में शुरू-शुरूमें आर्य लोग आये उस पंजाबमें यह भेद-बुद्धि अधिक तीव्र है या दूरतम दक्षिणात्यादि प्रदेशों में। आर्य लोगोंके प्रथम आगमन-युग अर्थात् ऋग्वेदके कालमें यह भेद-बुद्धि अधिक थी या क्रमशः बादमें बढ़ती गई है?

असलमें आर्योंके इस देशमें आनेके समय उनमें जातिभेद या तो था ही नहीं या था भी तो बहुत मामूली रूप में। तीव्रता धीरे धीरे बढ़ी है। अथवा प्राचीन आर्यभूमिमें यदि जातिभेद कम उग्र हो तो भी यह सन्देह हो सकता है कि यह प्रथा आर्योंकी ले आई हुई नहीं है। इन्होंने इसे यहां आकर स्वीकार किया है।

प्राचीन ग्रीस, रोम और जर्मनीके आर्योंमें कौलीन्याभिमान तो था पर जातिभेद जैसी कोई चीज़ नहीं थी। ईरानके अग्नि-उपासकों में भी ठीक इसी प्रकारका जातिभेद नहीं है; पारसी लोग उसे नहीं मानते।

दक्षिणमें नीच जाति यदि ब्राह्मण मुहल्लेमें आजाय या ब्राह्मण यदि नीच जातिके मुहल्ले में चला जाय, तो खून-खच्चर की नौबत आ जाती है। नायर स्त्रियोंके साथ नम्बूद्री ब्राह्मणोंका संबंध तो होता है; पर नायरके छूनेसे ब्राह्मणको अपवित्र होना पड़ता है! कम्मालन (बढ़ई लुहार आदि) १६ हाथ, ताड़ी बनानेवाला २४ हाथ, पालय या चेरुमा कृषक ३२ हाथ और पारिया ४० हाथ के भीतर आजाय, तो ब्राह्मणादि ऊँची जातिके लोग अपवित्र होते हैं। ब्राह्मण वगैरः ऊँची जातियों के जलाशयके पास से भी यदि कोई नीच जाति चला जाय तो जलाशय व्यवहारके अयोग्य हो जाता है। रामानुजी वैष्णवोंका अन्न और पाकक्रिया किसीके देखनेसे भी अशुद्ध हो जाती है।

पंजाव आदि आर्य-प्रधान प्रदेशोंमें ऐसी तीव्रता नहीं है। दक्षिणात्यमें जहां अनार्य जातियों की ही प्रधानता है, यह भेद तीव्र है। आजकल आधुनिक शिक्षा और विचारगत उदारताके कारण उच्च जातिके अनेक युवक इस भेद-भावको तोड़नेका प्रयत्न कर रहे हैं; पर नीची समझी जाने वाली जातियां अपने भेद-भावको शिथिल नहीं करना चाहतीं। कभी-कभी देखा गया है कि ऊँची जातिके लड़के जब उत्साहवश नीची जातिके आदमीके हाथका भात ग्रहण कर लेते हैं, तो वह भात देनेवाला ही उसके हाथका छुआ अन्न-जल नहीं ग्रहण करता! कहता है—'तुमने जब हमारे हाथका भात खाया है तो और नीच जातियोंका भी जरूर खाया होगा। इसलिये तुम्हारे हाथका अन्न हम कैसे ग्रहण कर सकते हैं' !!

अस्पृश्यता निवारणका वर्तमान आन्दोलन शुरू होनेके बहुत पहलेसे शान्ति-निकेतन आश्रममें स्पर्शास्पर्श विचार नहीं मानाजाता था। सन् १९०८ में मैंने देखा कि नौकरोंमें से अधिकांश हाड़ी डोम आदि श्रेणीके हैं। कुछ थोड़े ही लोग उनसे छूत मानते थे। अधिकांश आश्रमवासी उनके हाथका अन्न-जल निःसंकोच ग्रहण करते थे और अब भी करते हैं। आठ दस वर्ष पहले की वात है। एक दिन एक क्रियाके उपलक्षमें मेरे घर कई ग़रीब मोचियोंने भात मांगा। उन दिनो बड़ा अकाल पड़ा हुआ था। मैंने देखा कि यद्यपि हम लोगोंने उन मोचियोंको खिलाने की आज्ञा दी थी तथापि मेरे ही हाड़ी डोम आदि नौकर उन्हें घरमें घुसने देना नहीं चाहते थे। परन्तु हमारे आश्चर्यका ठिकाना न रहा जब मेरे हाड़ी डोम जातीय भृत्योंने यह कह कर कि रंधनशालाका सब अन्न अपवित्र हो गया है, उस दिन कुछ नहीं खाया!

इन सारी बातों पर विचार करने से जान पड़ता है कि यह प्रथा आर्यों की लाई हुई नहीं है। यहां आकर उन्होंने अनार्यों के भीतर यह भयंकर भेद-

विभेद प्रचलित देखा और उसके प्रभावको वे भी अतिक्रम नहीं कर सके ? खूब संभव है बहुत दिनोंतक उन्होंने इसे अस्वीकार करनेकी चेष्टा भी की थी, पर बादमें बहुसंख्यकों के सामने उन्हें हार माननी पड़ी थी। आज यह प्रथा उनके मनमें इस प्रकार घर कर बैठी है कि इसे ही उन्होंने अपनी वर्ण-श्रेष्ठताका प्रधान लक्षण मान लिया है। वे यह बात भूल जाते हैं कि जिन महर्षियोंके नाम पर उनकी कुल-मर्यादा और वंश-प्रतिष्ठा अवलंबित है वे स्वयं छुआछूतका ऐसा विचार नहीं करते थे।

इस देशमें आर्योंके आनेके बाद ज्यों ज्यों समय बीतता गया है, जाति-भेद त्यों त्यों तीव्र होता गया है। आर्योंके मूल स्थानसे जितनी ही दूर वे हटते गये हैं, यह भेदभाव भी उनके मनमें उतना ही उग्र होता गया है [१]।

१—यह विचित्र बात है कि ऊंच नीचके भेद मिटानेके प्रयत्नमें तत्तत् प्रदेशके मुसलमानों की ओरसे भी बहुत विरोध होता है। ऐसा प्रायः देखा गया है कि यदि नाई नमःशूद्र (बङ्गालकी एक अन्त्यज समझी जानेवाली वीर जाति) की हजामत बनाने गया है या मोची डोम आदिने उसकी पाल्की उठाई है, या नमःशूद्र जूता पहनकर रास्तेसे निकला है,तो बङ्गालके गांवके मुसलमान लाठी लेकर उनपर टूट पड़े हैं ! राजा राममोहन रायके प्रायः समकालीन ब्राह्मणवंशीय महात्मा ढेढ़राजको झाझरके नवाबने आठ वर्षतक जेलमें सिर्फ इसलिये सड़ाया था कि उन्होंने हिन्दुओंमें से जातिभेदकी प्रथा उठा देनी चाही थी। अंग्रेजोंकी जीत होनेपर जब नवाब भाग खड़े हुए, तब जेलका फाटक उन्होंने खुलवा दिया और ढेढ़राजकी मुक्ति हुई; पर यह कह कर धमका देनेकी बात वे (नवाब) उस समय भी नहीं भूल सके कि फिर ऐसा अनाचार मत करना ! आजसे कुछ साल पहले मैं ढाका जिलेके एक नमःशूद्र विद्यालयको देखने गया। वहां गांवके एक बूढ़े मुसलमान सज्जनने बड़ी सरलताके साथ कहा कि मैं नहीं समझता कि आप जैसे भले आदमी इन चाण्डालोंको पढ़ाने

जातिभेदका सर्वप्रधान अवलम्बन स्मृति है। इनमें भी प्रधान स्थान मनुस्मृति का है। मनुस्मृतिकार वेद-कालके अनेक बाद प्रादूर्भूत हुए थे। आचार्य केलकर उन्हें मगधवासी समझते हैं (उनकी युक्तियोंके लिये दे० History of Castes in India, P, 66)। इस स्मृतिकारका देश चाहे जहां कहीं भी रहा हो, काल निश्चय ही बहुत बाद का है क्योंकि उनके विधि-निषेधमें आर्योंकी जो रीति-नीति दी हुई है, वह अनेक परवर्ती युग की हैं।

आरम्भमें छुआछूत और रोटी-बेटीका विचार आज जैसा कठोर नहीं था यह बात प्राचीन शास्त्रोंके अध्ययनसे स्पष्ट हो जाती है। ये विचार धीरे धीरे शताब्दियों बाद तीव्र हुए हैं।

पण्डित प्रवर श्री अनन्त कृष्ण आयार महोदयने अपने Mysore Tribes and Castes नामक ग्रन्थ (Vol I. P. 128-159) में दिखाया है कि किस प्रकार इस देशमें जातिभेदकी प्रथा आविर्भूत हुई और किस प्रकार धीरे धीरे बद्धमूल हुई। उन्होंने वैदिक और बौद्ध युगकी जातिभेदकी अवस्था वर्णन करनेके बादमें वैश्योंकी सामाजिक दुर्गतिपर विचार किया है। इसके बाद परवर्ती कालकी आलोचना करके वे लिखते हैं—"वैदिक युगमें जातिभेद भ्रूणावस्थामें था। ब्राह्मण और पुराण युगमें उसकी उत्पत्ति हुई। धीरे धीरे इस जातिभेद का प्रसार और प्रभाव बढ़ता गया। चारों ओरकी पारिपार्श्विक अवस्थाओंके योगसे यह प्राकृतिक नियमानुसार सहज भावसे धीरे धीरे बद्धमूल हुआ और आज भी यह धीरे धीरे और भी दृढ़ भावसे स्थापित होता जा रहा है (वही पृ० १५४-१५५)।

की बातका कैसे समर्थन करते हैं। ये रहेंगे तो हर हालतमें चाण्डाल ही न?" ऐसे सरल लोगोंके सिवा एक तरहके आधुनिक शिक्षित मुसलमान भी किसी गूढ़ राजनीतिक उद्देश्यसे इस आन्दोलनका विरोध करते हैं। उनकी धारणा है कि हिन्दुओंमें भेदभाव रहनेसे ही उनकी जातिका कल्याण है!

जीवजन्तु और वृक्षलतादिके नामसे आत्मपरिचय
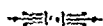
आर्योंकी पूर्ववर्ती अनेक जातियां अपना परिचय किसी जीव जन्तुसे या वृक्ष-लता आदिके नामसे दिया करती थीं। नाग और सुपर्णोंके नामसे यह बात आगे अधिक खुलासा होगी। नाना देशोंमें अति प्राचीन कालसे एक विशेष चिह्न या लाञ्छनसे परिचय देनेका रवाज दिखाई देता है। यह चिह्न साधारणतः या तो किसी जीव-जन्तुके होते हैं या वृक्षलता और पुष्पोंके। जो वस्तु लाञ्छन या चिह्न रूपमें व्यवहृत होती है, वह वस्तु उस जातिके प्रत्येक व्यक्तिके श्रद्धा और सम्मानकी चीज होती है। अंग्रेजीमें इसे 'टोटेम' (Totem) कहते हैं। लड़कपनमें रामायणमें वानरों और भालुओं को मनुष्योचित व्यवहार करते देख बड़ा कुतूहल होता था, बड़ा होनेपर मालूम हुआ कि आज भी अपनेको वानर और भालुओंके वंशधर कहनेवाले लोग इस देशमें हैं। और भी बादमें चलकर मालूम हुआ कि यह सब टोटमका ही व्यापार है।

ऋग्वेदमें तृत्सुओंने सुदामके अधीन युद्ध करके भेद नामक योद्धाको हराया था। इनके दलमें योद्धाओं की कई जातियोंका उल्लेख देखा जाता है, एक जाति का नाम था अज—अजासश्च शिग्रवो यक्षवश्च (ऋग्वेद ७।१८-१९)। अज का अर्थ सभीको मालूम है (बकरा)। शिग्रु भी खूब सम्भव कोई टोटेम ही रहा होगा। क्योंकि आयुर्वेदीय निघण्टु (देवेन्द्रनाथ उपेन्द्रनाथ सेन, १३२७, पृ० १७२) के अनुसार शिग्रु 'सहिजन' नामक वृक्षको कहते हैं। इसी सूक्तमें मत्स्य (मछली) नामक जातिकी चर्चा है (७।१८।६) और शतपथ ब्राह्मण में भी मत्स्योंके राजाका उल्लेख है (१३।५।४।९)। कौशितकि उपनिषद्में

गार्ग्यवलादिके 'मत्स्यों' के देशमें वास करनेकी कथा है (४।१)। गोपथ ब्राह्मण,महाभारत तथा पुराणों आदिमें भी इनकी चर्चा है। किसी किसीने कहा है कि मैकडोनाल साहबने कौशिक, गोतम, मांडूकेय आदि शब्दोंसे 'टोटेम' की प्रथा सिद्ध करनी चाही है, वह अच्छी तरह प्रमाणित नहीं हुई (Vedic Mythology P. 153)। पञ्चविंश ब्राह्मणमें पारावत जातिकी बात है, पर किसी किसीने कहा है कि उसका अर्थ पर्वतवासी है।

अनेक आर्य और अनार्य श्रेणियोंके आदि पुरुष कश्यप हैं। बङ्गालमें कहावत है कि जिसका गोत्र खो जाय वह 'काश्यप' हो जाता है। कश्यप शब्दका अर्थ है कछुआ। शतपथ ब्राह्मणमें कहा गया है कि ब्रह्मा प्रजापतिने कूर्म रूप धारण किया। कूर्म और कश्यप वस्तुतः एक ही चीज़ हैं। इसीलिये यदि कोई भी व्यक्ति कूर्म या कश्यपको आदि पुरुष कहता है, तो गलती नहीं करता। क्या कुर्मी जातिका कोई सम्बन्ध इस कूर्मसे है ?

रिजली साहबने अपने (People of India) नामक विशाल ग्रन्थमें टोटेम के सम्बन्धमें अनेक ज्ञातव्य बातें लिखी हैं (P. 93-102)। उन्होंने दिखाया है कि आज भी कितनी ही जातियां अपना परिचय वृक्षलता और जीव जन्तुओं के नाम पर देती हैं। जिस जातिका जिस वस्तुसे परिचय है अर्थात् जो जिसका टोटेम है, वह जाति उस वस्तुको कभी आघात या असम्मान नहीं करती और न साधारण व्यवहारमें उसका प्रयोग करती है। अर्थात् टोटेमके प्रति एक तरह से पूज्य और उपास्य भाव सभी रखते हैं।

आज भी भारतमें अपनेको हनुमान् और जम्ववान्के वंशधर कहने वाले हैं। काठियावाड़के पोरबन्दर या सुदामापुरीके राजा लोग हनुमान्के वंशज हैं। उनकी पताकापर हनुमान्का चित्र अंकित होता है। ध्रांगध्रा प्रभृति राज्योंमें भी इन्हीं के भाई बन्धुओंका राज्य है।

जीव जन्तुओंके नामसे आत्मपरिचय देनेकी कथा नाना पुराणोंमें नाना भाव से आई है। सभी पुराणोंसे इस विषयके इतने प्रमाण एकत्र किये जा सकते हैं कि सबको स्थान देनेके लिये इस छोटी पुस्तकमें जगहकी कमी पड़ जायगी। इसलिये यहां महाभारत में आये हुए नामोंकी थोड़ीसी चर्चा की जा रही है।

उलूक नामक एक दलके लोगोंको अर्जुनने उत्तर देश जय करते समय हराया था। उलूक अर्थात् उल्लू (सभापर्व २७। ५)। नागोंके शत्रु जैसे सुपर्ण (=गरुड़) थे उसी प्रकार उलूक काकोंके शत्रु थे। इसलिये इन्हें काकवैरी कहा गया है (लिंगपुराण, उत्तर, ३। ६४-७५)। इन काक जातिके योद्धाओंकी कथा भी भीष्मपर्व (९। ६४) में दी हुई है। नाग-विशेषका नाम ही कर्कोटक है। बेल, ईख आदि कई पेड़ पौधोंका नाम भी कर्कोटक है। वाहिकोंके प्रसंगमें कर्णपर्व (४४। ४२) में कर्कोटक जातिका उल्लेख है। यादवोंकी एक शाखाका नाम कुक्कुर (=कुत्ता) है (सभा १९।२८)। इनकी चर्चा सब समय अन्धकोंके साथ है (वन० १८३।३२)। हरिवंशके अड़तीसवें अध्यायका नाम ही 'कुकुर-वंश-वर्णन' है। एक शृगाल राजाके साथ भी श्रीकृष्णकी लड़ाई का हाल हरिवंश (१०० वां अध्याय) से मालूम होता है; वह भी क्या ऐसा ही कुछ है? सभापर्वमें रासभ? (गधा) जातिका भी उल्लेख मिलता है(५१।२५)।

भीष्मपर्वमें संजय धृतराष्ट्रसे नाना नद-नदी और जानपदोंका परिचय देते हैं (९म अ०)। वहां मनुष्योंमें मत्स्य (४०), गोधा (= गोह), कुक्कुर (४२), महीषक (५९), मूषक (५९ और ६३) कौक्कुटक (६०), प्रोष्ठ (= बैल, ६०), पशु (६७), काक (६४), इत्यादि नाम है (नामोंके आगेकी संख्या श्लोकोंकी है)। भीष्म पर्वमें (५०।५४) नाकुल राजाओंकी बात भी है। महाभारत और पुराणोंमें बहुत जगह मातंग चण्डालोंकी चर्चा है। मातंग

हाथीको कहते हैं। भेड़ा और सूअरको रोमश कहते हैं। युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें रोमश जातिके वीर उपहार ले आये थे (सभा ५१।३०)। दुर्योधनके दलमें वृक (= भेड़िया) जातिके योद्धा थे (भीष्म० ५१।१६)। ऊंट या फतिंगा इन अर्थोंमें शरभ शब्दका प्रयोग होता है। वसिष्ठकी कामधेनुसे यवन, पौण्ड्र, किरातोंकी भांति शरभ जातिके योद्धाओंका भी जन्म हुआ था (आदि पर्व १७५।३६)। युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें उपहार देनेवालोंमें कौंकुर (सभा० ५२।१५), कुकुर (वहीं १६) तार्क्ष्य (= गरुण, सुपर्ण १५) का नाम है। शूकर जातिके राजाने सौ हाथी उपहार भेजे थे (वही २५)। इन स्थानोंपर वृक्षलता और पशु-पक्षियोंके नामपर आदमियोंका परिचय पाया जाता है।

जिस प्रकार तार्क्ष्य (गरुड़ पक्षी) से जातिका परिचय देना ऊपर दिखाया गया है, उसी प्रकार अन्यान्य पक्षियोंके नामपर भी जातियोंका परिचय दिया था। द्रोणाचार्यके सैन्य व्यूहके पश्चाद्भागकी रक्षाका भार शकुन योद्धाओंके ऊपर था (द्रोणपर्व १९।११)। शान्तिपर्व (६५।१३) से जान पड़ता है कि 'कंक' जातिके योद्धाओंने भी युधिष्ठिरको उपहार भेजा था। अनुशासनपर्वमें मद्गुरु जातिको नौकाजीवी जाति की चर्चा है (४८। ११)। मद्गुरु एक पक्षीको भी कहते हैं और एक 'भागुर' नामक मछलीको भी कहते हैं। मछ-लियोंके नामसे परिचित अनेक जातियोंका उल्लेख नाना पुराणोंमें हैं।

महाभारतमें वक, कोक (भीष्म० ९।६१), सुमल्लिका (९।५५) आदि पक्षियोंके नामसे परिचित मनुष्योंकी चर्चा है। सुमल्लिका एक प्रकारका राजहंस है और कोक चकवाको कहते हैं। हंसकायन (सभा० ५२।१४), हंसमार्ग (भीष्म० ९), हंस पथ (द्रोण० १९।७) जातिके आदमियोंके नाम भी हैं। इनका या तो 'हंस' पक्षीसे 'टोटेम' का सम्बन्ध था या फिर हिमालयके जिस

पथसे हंस मानसरोवरको जाते हैं, ये वहींके रहनेवाले थे। त्तित्तिर जातिके आदमियोंका नाम भी भीष्मपर्व (५०।५१) में है।

भेड़ाको 'हुण्ड' कहते हैं। इस नामके आदमी भी (भीष्म० ५०।५२) महाभारतमें है और 'षन्ड'का नाम भी आनेसे नहीं रहा (९-४३)। शशक (वन० २५४।२१) और अश्वक (भीष्म० ९।४४) भी हैं। 'वत्स'के साथ भी क्या 'वत्स' का कोई सम्बन्ध है? तार्क्ष्योंकी चर्चा तो ऊपर हो ही चुकी है; उरग (= सांप) भी है (अनुशासन ३३।२२)। झिल्ली या झींगुरके नाम परझिल्लिक जातिका भी वर्णन जंबूखण्ड वर्णना (भीष्म० ९।५९) में हैं। यहांतक कि मशक नामक मानव जातिकी भी खबर महाभारतसे मिल जाती है (वहीं ११।३७)।

वृक्षोंमें पहले तालको ही लिया जाय। इस वृक्षके नामपर तालचर (उद्योगपर्व १४०।२६) तालजंघ (वन० १०६।८) तालवन (सभापर्व ३१।७१) आदि जातियोंका तालसे सम्बन्ध था। शाल्व जाति (सभा० १४।२६) के साथ शाल्व वृक्षका योग है। खूब संभव करुष जातिके साथ (आदि० १२३।४०) करूषक फलका योग है। कीचक (सभा० ५२।२) के साथ क्या कीचक (वांस) का योग असंभव है? दार्व (भीष्म० ९।५४) के साथ दारु दार्व या दार्वी वृक्षोंका योग हो सकता है। जागुड़ (=वन० ५१।२५) भी है, राम (=हींग) भी (सभा० ३२।१२) है। आजकलके काबुली पठानोंके साथ क्या इसका सम्बन्ध है?

शिव और विष्णुके सहस्र नामोंमें न्यग्रोध नाम भी है। न्यग्रोध बरगदके पेड़को कहते हैं। शायद शैवों और वैष्णव भागवतोंमें इस वृक्षकी पूजा प्रचलित थी। 'शिबियों' के साथ शायद शिवजीका सम्बन्ध है। शिव और गणपतिका नाम अज है। अज नामक मनुष्योंकी जातिका उल्लेख आगे ही किया

गया है। दक्षका नाम जो अजमुख पड़ा उससे क्या यही कथा बताई गई है कि जिनके मुखमें देवताका नाम था उनके मुखमें अब शिवका नाम आया, इस समय उनका उपास्य या देवता शिव होनेसे उनका नाम हुआ अजमुख या शिवमुख? यह स्मरण रखना चाहिये कि शिवके गणोंमें से एकका नाम अजपाद या अज-एकपाद था। किरात जातिके साथ किरात वेशधारी शिवका भीतर ही भीतर सम्बन्ध होना असंभव नहीं है। गुह कार्तिकेयका नाम है और शिव विष्णुके सहस्र नामोंमेंसे यह एक नाम भी है। इस जातिके आदमियोंकी चर्चा भी पाई जाती है। दक्षिणापथमें इनका जन्म हुआ था और इनका नाम पुलिन्द शबरादिके साथ लिया गया है (शान्ति० २०७।४२)। मतंग जातिके साथ मातंगी देवीका योग भी हो सकता है। गणेशका नाम हेरम्ब है। सभापर्व (३१।१३) में एक हेरम्बक जातिका नाम भी है। इस प्रकार नाना उपास्योंके नामसे भी नाना मानव-मण्डलीका परिचय पाया जाता है। अथवा उन सब जातियोंके नामपर उनके उपास्य देवता प्रसिद्ध हुए हैं। जिस मानव-मंडलीमें जो देवता पूजित हुए हैं, उस मानव-मंडलीका लांछन या टोटेम ही संभवतः उस देवताका वाहन है। षण्ड शिवके उपासक हैं और नाग भी हैं। सुपर्ण या गरुण विष्णुके उपासक हैं। कई जगह विशेष विशेष देवता ही विशेष विशेष मानव-मण्डलीके 'टोटेम' हैं।

रिज़ली साहबने People of India नामक ग्रन्थमें भारतके आदिम-निवासियोंकी जो तालिका बनाई है उसमें 'टोटेम' का अच्छा परिचय मिलता है। इन जीवोंके नाम पर ही इनका गोत्र हुआ करता है। ओराँव जातिके इसी प्रकारके ७३ गोत्र या विभाग हैं। इनमें तिरकी (चुहिया), एक्का (कछुआ), लाकड़ा (लकड़बग्घा), बाघ, गेडे (हंस), खोयेपा (जंगली कुत्ता), मिनकी (मछली), चिर्रा (गिलहरी) आदि हैं (पृ० ७९३)। संथालोंमें एगों (चूहा),

मुर्मु (नीलगाय), हंस, मारुडी (जंगली घास), बेसरा (वाज), हेमरण (सुपारी) शंख, कारा (भैंस) आदि गोत्र हैं (वही)।

भूमिकोंमें शालरिसि (मत्सस्य विशेष), हंस, शांडिल्य (पक्षी), हेमरन (सुपारी), तुमरंग (कद्दू), नाग (सर्प) आदि गोत्र हैं (वही पृ० ९५)

माहिली जातिमें भी डुंरी (गूलर) हंस, मुर्भु (नीलगाय) नाम हैं। कोए जातिमें कश्यप (कच्छप), शोल (मछली), वासिवक (वगला), हंस, वटकू (सूअर), सांयू (सांड) आदि हैं। कुर्मी जातिमें तयार (भैंस), डुमुरिया; चोंच मुक्रुआर (मकड़ी), हस्तवार (कच्छप), वाघ आदि नाम हैं (वही पृ० ९६)। जगन्नाथी कुम्हारोंमें कौण्डिन्य (वाघ), सूर्य, नेवला, गरु (वैल), मुदिर (मेढक), भरभद्रिया (गौरैया), कूर्म आदि नाम हैं।

युक्तप्रान्तके मिर्जापुर जिलेकी आगरिया जातिमें इसी प्रकारके सात भाग पाये जाते हैं। 'मर्कास' गोत्रके लोग 'मर्कास' अर्थात कच्छप नहीं खाते; कच्छप ही उनका टोटेम है। गोइरार गोत्रवाले गोइरार वृक्षके पूजक हैं, इस वृक्षको वे काट नहीं सकते। परसवान या पलसवान इसी तरह पलासके उपासक हैं; शनवान् 'सन' को आदरणीय मानते हैं और किसी काममें सनका व्यवहार नहीं करते; वड़गवाड़ वरगदके पेड़को पवित्र समझते हैं; वंझक्वार या वंगछ्वार लोग वेंग या मेढकको तथा गिधले गीधको इसी प्रकार आदरणीय समझते हैं। (Tribes and castes of the N. W. P, and Oudh, W. crooke Vol. I P. 2)

डाल्टन साहवके (Ethrology) से इस प्रकारकी वहुत खवरें संग्रहकी जा सकती हैं।

गोरखपुर जिलेके नागवंशी क्षत्रिय लोग 'नाग' को ही अपना पूर्वपुरुष कहते हैं और नागको अति पवित्र और आदरणीय समझते हैं (Crooke Val VI. P. 39)।

युक्तप्रांतकी नट जातिमें कई इसी प्रकारके गोत्र हैं। 'जघट' एक सर्पको कहते हैं। 'उरे' सूअर है, 'मरई' एक दरख्त है, 'भिंभरिया' एक तरहका वांस है। ये सब उनके गोत्रोंके नाम हैं (वही Vol, IV P. 72)।

टोटेमकी यह घटा दक्षिणमें ही अधिक है। अनन्त कृष्णा आयर लिखित Mysore Tribes and castes पुस्तकके प्रथम खण्डमें 'टोटेमिज्म' नामक अध्यायमें वहुतसी बातें संगृहीत हैं (पृ० २४२-२६२)। आडू (वकरी) गोत्रवाले आडू या वकरीको नहीं मारते। मैसूर राज्यमें इसी प्रकार आने (हाथी), आरसिना (केसर), अरसू (वट), अद्दि (गूलर), वेडू (नीम), हुरंली (चना), मेनसु (पीपल), नगरे (वृक्ष विशेष) आदि गोत्र हैं (वही पृ० २४६-२४८)। इनके सिवा कुत्ता, खरगोश, वकरा, भैंसा, विच्छू, चींटी, चन्दन, पीपल, इमली जीरा, लाची, कपास, मोती,शंख आदि गोत्र भी हैं (पृ० २४८)। उस देशमें होलेय जातिकी संख्या वहुत है। उनमें हाथी, भैंसा, खरगोश, सांप, कोयल, गूलर, इमली, नीम, केला, कस्तूरी, मल्लिका, नागफनी, कबूतर, पान,मटर, मधु, चाँद, सूर्य, पृथ्वी, सोना, चान्दी, छाता, आदि गोत्र भी हैं (पृ० २४९)।

वहांके कोमती या वैश्योंमें भी, आंवला, नीवू , कद्दू, चना, लाल कमल, नील कमल, श्वेत कमल, करैला, चिचिंगा, तितलौकी, उड़द, केला, रेड़ी, पिपुल, सन, आम, अनार वंशवीज, गेंहू, दाख, खजूर, गूलर, ईख, मूली, जायफल, सरसों, चन्दन, इमली, सिंदूर, कपूर आदि गोत्र है (वही पृ० २५१)।

देवाङ्ग जातिमें वैल वहुत पवित्र माने जाते हैं। वैलके मरनेपर वे लोग वड़े समारोहसे उसका मृतक सत्कार करते हैं।

तैलंग देशके गोल्ला लोगोंमें अवूल (वैल), चिन्थल (इमली), गुर्रम (घोड़ा), गोर्रला (भेड़ा), गोरंटला (मेंहदी), कटारी (छुरी), नक्कल (स्यार), उल्लियोयन (प्याज), वकयल (वैंगन), आदि गोत्र हैं (वही)।

गोल्ला लोगोंमें जो राधिन्दाला (पीपल) गोत्रवाले हैं,वे पीपल के पत्तेका व्यवहार नहीं करते और कुचिला गोत्रवाले इसी नामके वृक्षका व्यवहार नहीं करते ।

मैसूरके ताँतियोंमें शिव और पार्वती नामके दो भाग हैं । दोनोंमें कुल मिलाकर ६६ गोत्र हैं, जिनमें आपसमें विवाह नहीं हो सकता । ये गोत्र भी कुछ इसी प्रकारके हैं । इनमें भैंसा,बैल, घोड़ा, नाग, गौरैया, शंख, चील, जीरा, मल्लिका, केवड़ा, दूब, पीपल, केसर, हल्दी आदि हैं (पृ० २५३) ।

तिलंगानेके नाइयोंमें चितल्ल (वृक्ष विशेष), घोड़ा, जंबू (एक तरहका पतलो) होंके, करु (वृक्ष), मल्लिका, सेवती, मोर, हल्दी आदि गोत्र हैं (पृ० २५४) ।

इस पुस्तक (पृ० २५५) में उस प्रदेशके पशु पक्षी वृक्षादि द्वारा सूचित गोत्रोंकी बड़ी सूची दी हुई है । इसमें सिंह, बाघ, भालू, श्वेत वाराह, हाथी, वानर, साही, खटवांस, चूहा, गेंड़ा, भैंस, बैल, गाय, भेड़ा, बिल्ली, कुत्ता, हिरन, मोर, कोयल, गौरैया, बिच्छू, चींटी, मछली, नेवला, आदि जन्तु हैं । बरगद, गूलर, आम, पीपल, चंपा, चंदन, सागौन, बेल, नारियल, सुपारी, सागू, खजूर, शालि, ताल, बांस, ज्वार, मल्लिका, पिप्पली, धान, केला, हल्दी रीठा आदि हैं । नागवंशवाले मरे नागको देख लें, तो उन्हें अशौच होता है और क्षौर तथा स्नानसे शुद्धि होती है । मादिगा अपनेको मातंग कहते हैं और मातंगी देवीकी पूजा करते हैं (वही, Vol. IV,P. 131-2) ।

E. Thurston की Castes and Tribes of Southern India पुस्तकके सात खण्डोंमें जीव-जन्तु और वृक्षोंके नामसे परिचय देनेवाली अनेक जातियोंका नाम है । उन्होंने इसे अंग्रेजी वर्णमालाके अनुसार सजाया है । यहां उनकी गिनाई ऐसी जातियोंकी एक सूची दी जा रही है । उनका अनुवाद भी यथा-संभव दे दिया गया है ।

दक्षिणभारतकी जन्तु टोटेमवाली जातियां

जाति या टोटेम	हिन्दी रूपान्तर	जाति या टोटेम	हिन्दी रूपान्तर
अने	हाथी	गोल्लरी	बन्दर
अरने	छिपकली	गोर्रेल	मेड़ा
अवु	सांप	गोभी	गोह
अवुल	गौ	गुर्रम	घोड़ा
बल्लि	सरीसृप	हनुमान	हनुमान्
बालू	भालू	हाथी	हाथी
वारेलु	भैंस	हुली	वाघ
वेंगरी	मेढक	इगा	माछी
वाघ	वाघ	ईनीचि	गिलहरी
भोलिया	जंगली कुत्ता	इरुव	चींटी
विल्व	स्यार	जयकोंड	गोह
वोम्बदे	एक मछली	जाम्बुवर	जाम्बवन्त
चेलि	छाग	जव्वड़ी	खटाश
चेलु	गोजर	जलकुप्पा	मछली
चिमला	पिपीलिका	जेरीबोतुल	गोजर
धोम	मशक	जिङ्का	हरिण
ध्ववम	कच्छप	जिवल	कीट
एड्डुलु	बैल	काक	काक
एलुगु	भालू	कसडि	कमठ
एरुमे या गेदल	महिष	कप्पल	विच्छू
गेवल	कौड़ी	करडि या खिंवुडि	भालू
गाय	गाय	कर्कटवान्नय	विच्छू
गिद्द	गिद्ध	कत्थे	गधा

जाति या टोटेम	हिन्दी रूपान्तर	जाति या टोटेम	हिन्दी रूपान्तर
केन	चींटी	नारियंगल	स्यार
केसरी	सिंह	नात्थलु	घोंघा
किंकिल	कोकिल	नाभी	कुत्ता
कीट	सुग्गा	पण्डि	सूअर
कोचियो	कच्छप	पसु	पशु
कोदि या कोदल	मुर्गा	प्रेंगदमय	चूहा
कोगरा	सारस	पिल्ली	बिल्ली
कोटाादि	वन्दर	पन्तु	कोयल
कोरियनव्या	कुक्कुट	पुञ्जल	मुर्ग
कुसवि	मेढा	शकुन पक्षी	शकुन पक्षी
कोविल	कोकिल	संकु	शंख
कूर्म	कूर्म	सेनपुलि	लाल वाघ
कुदिर	घोड़ा	पिंचिग	गौरैया
कुत्रकी	वन्यछाग	तवेलु	कच्छप
माकडो	मर्कट	थेलु	वृश्चिक
मौडि	गाय	तिरुमन	हरिण
मेकल	वकरी	तोलर	भेड़िया
मिद्थल	टिड्डी	वालि सुग्रीव	वालि सुग्रीव
मोहिरो	मयूर	वट्टे	ऊंट
नवलिपित्त, नेभिल्लि	,,	वेङ्कलिपुलि	वाघ
मोल	खरगोश	विंक	दीमक
मूषिक	चूहा	येल्कमेति	चूहा
नाग	नाग	येदुल	वैल

इस प्रकार प्रायः सभी जन्तुओं और पेड़ पौधोंके नामपर अपना परिचय देनेवाली एक-न-एक जाति मौजूद है। अंग्रेजीमें इस प्रकार परिचय देनेकी प्रथाको 'टोटेजिम' कहते हैं। आर्य पूर्वजातियोंमें ही इस प्रकार परिचय देनेकी प्रथा अधिक प्रचलित थी और है।

आर्यपूर्व जातियोंके साथ सम्बन्ध

आर्योंके आगमनके पहले इस देशमें नाग और सुपर्ण आदि आर्येतर जातियां ही प्रबल थीं। इन नागों और सुपर्णोंके साथ आर्योंका विवाहादि सम्बन्ध खूब प्रचलित था। हम जानते हैं कि अर्जुनने नागकन्या उलूपीसे विवाह किया था। राजतरङ्गिणीके अनुसार नागकन्या चन्द्रलेखाका विवाह ब्राह्मणसे हुआ था। ऐसे विवाह उन दिनों सब तरहसे वैध समझे जाते थे और उनसे उत्पन्न सन्ततियाँ अनायास ही पिताकी जातिकी मान ली जाती थीं। नाग जातिमें से अनेकोंने वैदिक कालमें ब्राह्मण और ऋषिका पद प्राप्त किया था। ऋग्वेदके दशम मण्डलके ९४ वें सूक्तके रचयिता कद्रूके पुत्र नागवंशीय अर्बुद थे। इसीलिये सायणने कहा है—कद्रू्वाः पुत्रस्य सर्पस्य अर्बुदस्यार्षम्। तैत्तिरीय संहिताके अनुसार ऋग्वेदके १०।१८९ सूक्तकी रचयित्री ऋषि हैं 'सर्पराज्ञी'। इसी तरह १००।७६ सूक्तके ऋषि हैं नाग-जातीय इरावतके पुत्र जरत्कर्ण। सायणने कहा है—इरावतः पुत्रस्य सर्पजातेजर्रत्कर्णस्यार्षम्।

महाभारतकी कथा है कि जब राजा जनमेजय सरमाके दिये हुए शापसे मुक्त होनेके लिये यज्ञ करानेके लिये योग्य पुरोहितकी खोज कर रहे थे, तब श्रुतश्रवा ऋषिके पुत्र सोमश्रवाको उपयुक्त देखकर पुरोहितके रूपमें वरण किया। ऋषि श्रुतश्रवाने उस समय कहा था—'यह मेरा पुत्र नागकन्याके गर्भसे उत्पन्न महातपस्वी स्वाध्यायसम्पन्न और मत्तपोवीर्यसम्भूत है' (आदि० पौष्य० १७ श्लोक)।

जरत्कारु महातपा उर्ध्वरेता तपस्वी थे (आदि० ४५ अध्याय)। इनके कोई सन्तान नहीं थी। इसीलिये उनके शंसितव्रत ऋषि पितामहगण अधो-

लोकमें गिर रहे थे। जरत्कारुने यह देख कर इसका कारण पूछा, तो उन्होंने उत्तर दिया कि 'हम लोगोंका एकमात्र वंशधर जरत्कारु विवाह न करके तपस्यामें रत है। हम अब वंशहीन हैं, इसीलिये हमारी अधोगति हो रही है।' यह सुनकर जरत्कारुने उनसे अपना परिचय दिया और कहा कि 'हे पितामहगण, मैं गरीब हूं, मेरे जैसे दरिद्रको कौन कन्या-दान करेगा?' पितामहोंने कहा कि 'सन्तति हुए बिना हमारा उद्धार नहीं हो सकता।' सारी दुनिया खोजनेपर भी जब उन्हें कोई कन्या नहीं मिली, तो दुःखसे भर कर एक दिन अरण्यमें ऊंची आवाजसे बोले—'मैं दरिद्र हूं, इतने दिनों तक उग्र तपस्यामें रत था। अब अपने पितृ-पितामहोंके आदेशसे विवाह करनेकी इच्छा रखता हूं। कोई क्या मुझे अपनी कन्या देगा?' उस समय नागराज वासुकिने अपनी बहनको उनके हाथमें समर्पण किया (आदि० ४६ अध्याय)। यह विवाह वैध था और इससे उत्पन्न सन्तानने जरत्कारुके पितृ-पितामहोंको अधोगतिसे उद्धार किया था।

इस विवाहसे ही महातपस्वी आस्तीकका जन्म हुआ। इन्होंने ही जनमेजयके नाग यज्ञमें जनमेजयसे उसके बन्द करनेकी प्रार्थना की थी। अपना परिचय देते समय इन्होंने कहा था—नागकुल हमारे मामाका कुल है, इसीलिये इस नागयज्ञकी विरति चाहता हूं।' इसपर जनमेजयने कहा कि 'हे द्विजवरोत्तम, इसे छोड़कर कुछ और वर मांगिये'(आदि० ५६ अध्याय)। इसपर सभी वेद-विद् ब्राह्मणोंने कहा कि, महाराज इन्होंने जो वर मांगा है, वही दिया जाय। ब्राह्मणको उसके प्राप्यसे वंचित न करें। जब ये यज्ञका अवसान ही चाहते हैं तो यज्ञ बन्द हो (आदि० ५६ अध्याय)।

यज्ञ विरत हुआ। तपस्वी आस्तीक प्रसन्न मनसे विदा हुए। चलते समय उनसे जनमेजयने कहा—हे द्विजवरोत्तम, आपकी प्रार्थनाके अनुसार यज्ञ तो विरत हुआ किन्तु यही आपके योग्य पर्याप्त सत्कार नहीं है। आप पुनः इस

नगरीमें पधारें। मेरी इच्छा अश्वमेध यज्ञ करनेकी है। उसमें आपको ही सदस्य होना होगा (आदि० ५८।१६)। इस प्रकार देखा जाता है कि नाग माताके गर्भसे उत्पन्न होनेके कारण इनके द्विजत्व और ऋषित्वमें कुछ भी धब्बा नहीं लगा।

इन सब घटनाओंसे प्रमाणित होता है कि उन दिनों नाग जातिकी कन्यासे आर्य लोग विवाह कर सकते थे और इन विवाहोंसे उत्पन्न सन्तान पिताकी जाति प्राप्त होती थी। ऐसा जान पड़ता है कि आरम्भमें यह सब भेद-बुद्धि आर्योंमें नहीं थी। इस देशमें बस जानेके बहुत बाद भेद-बुद्धि धीरे धीरे बद्ध-मूल हुई है।

नाग यहां जो साँप नामक जन्तुका वाचक नहीं है, यह स्पष्ट ही ज्ञात हो जाता है। आर्योंके पूर्व जो सब आर्येतर जातियां अपनी अपनी संस्कृति और सभ्यता लेकर यहां वास कर रही थीं उनमें नागों और सुपर्णोंका स्थान महत्त्वपूर्ण था। नागका शाब्दिक अर्थ साँप है और सुपर्णका पक्षी। खूब सम्भव है इन दोनों जातियोंके लांछन (टोटेम) ये दोनों जन्तु थे। इसीलिये उन दिनों आर्योंमें इस प्रकारके शाप प्रचलित थे—चण्डाल योनिको प्राप्त होओ, निषाद योनिको प्राप्त होओ, तिर्यग् योनिको प्राप्त होओ। तिर्यग् अर्थात् अनार्यत्वको प्राप्त होना। ऐतरेय आरण्यकमें इस बातको अत्यन्त स्पष्ट भाषामें इस प्रकार कहा है—तानि यानि वयांसि वङ्गा मगधाश्चेरपादाः (२।१।१।५) अर्थात् ये जो वङ्ग, मगध और चेर देशके वासी हैं यही तो पक्षी हैं।

सुपर्ण वंशीयोंमें श्रेष्ठ महापुरुष गरुड़ थे। नागों और सुपर्णोंमें गहरी दुश्मनी बहुत पुरानी थी। शायद इससे आर्योंको सुविधा भी हुई थी। नाग लोग प्रधानतः शिवके उपासक थे और सुपर्ण लोग विष्णुके। गरुड़ विष्णुके वाहन हैं और नाग शिवके भूषण। ऐसा जान पड़ता है कि आर्योंके आगमनके

कारण नाग लोग प्रधानतः मध्यभारतमें और सुपर्ण लोग पूर्वी भारतकी ओर हट गये थे। इसीलिये वङ्ग-मगध आदिके वाशिन्दोंको पक्षी कहा गया है। किरातोंने हिमालयमें शरण ली। ये किरात भी सुपर्णोंके शत्रु थे, इसीलिये गरुड़ का एक नाम ही 'किराताशी' है। नागोंके साथ सुपर्णों का विरोध तो वहुत प्रसिद्ध वात है। किरातोंके विजयसे भी महाभारतमें देखते हैं कि विनता अपने पुत्र गरुड़से कह रही है कि सहस्र-सहस्र किरातोंको भक्षण करके अमृत ले आओ (आदि० २८।२)।

इस तरह देखा जाता है कि नाग, किरात, निषाद आदि जातियां सुपर्णोंकी शत्रु थीं। सुपर्णकन्या विनताको नाग जातीया कद्रू का वहुत दिनों तक दासीत्व करना पड़ा था। वादमें उसके पुत्र गरुड़ने इस दासीत्वसे उसे मुक्त किया था। इससे क्या यह सूचित नहीं होता कि एक समय सुपर्णगण नागोंके निकट परा-भूत और दासत्व प्राप्त थे, वादमें उनसे मुक्त हो सके थे ?

महाभारतमें मन्दपाल नामक एक और महर्षिकी कथा है। ये खाण्डव वनमें वास करते थे। जरत्कारुकी भांति इन्होंने भी विवाह नहीं किया था और इनके पितृगण भी अधोगतिको प्राप्त हो रहे थे। अन्तमें इन्होंने भी तिर्यक्कन्याके साथ व्याह किया था (आदि० २३१।५-१४)। इस स्त्रीसे उनके चार ब्रह्मवादी पुत्र हुए। (१) ज्येष्ठ जरितारि कुलप्रतिष्ठापक हुए, (२) दूसरे सारिसृक् कुलवर्धन हुए, (३) तीसरे स्तम्वमित्र तपस्वी हुए और (४) चौथे द्रोण ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ हुए (आदि० २३२।९-१०)। ब्रह्मर्षि होनेके कारण अग्निके खाण्डववन-दाह करते समय इन्हें दग्ध होनेकी सम्भावना नहीं थी (२३५।८)। उन्हें वेदवित् समझ कर ही अग्निने उन्हें नहीं जलाया (२३६।१-३)। इस प्रकार स्पष्ट है कि तिर्यक्कन्याके गर्भसे उत्पन्न होनेके कारण इनके वेदवित् ब्रह्मर्षि होनेमें कोई वाधा नहीं हुई। इसी तरह अप्सरा-

कन्या शकुन्तलाके गर्भसे दुष्मन्तका जो भरत नामक पुत्र हुआ वह पिताके समान ही वीर क्षत्रिय हुआ।

महाभारतसे नाग और सुपर्ण जातियोंकी कथायें उद्धृत की गई हैं। पर आज भी इस देशमें बहुतसी जातियां हैं, जो अपनेको नागवंशीय कहती हैं। जैसा कि पहले ही कहा गया है नाग लोग दक्षिण और मध्य देशकी ओर हट गये थे। यही कारण है कि भारतवर्षके मध्यवर्ती प्रदेशोंमें ही नागपुर और छोटानागपुर आदि हैं। कहते हैं, कि छोटानागपुरके कूर जातिके पूर्व-पुरुष नाग ही थे। उत्कलकी पाण जातिमें नाग गोत्र है। विष्णुपुरके राजा लोग भी अपनेको नागवंशी कहते हैं।

कैम्पबेलने अपनी पुस्तक (Indian Ethnology, Vol, 1) में लिखा है कि नायर लोग नागपूजक हैं। खूब सम्भव है ये लोग भी प्राचीन नागवंशी हों (पृ० ३१३)। नाग जातिके बहुतसे लोग बौद्ध हो गये थे (पृ० ३०९)। स्वर्गीय जायसवालने भारतके वाकाटक वंशीय राजाओंके एक विस्मृत इतिहास-का अपूर्व परिचय दिया है। ये लोग नागवंशीय राजा थे। एक समय नाग-वंशके लोग सारे भारतमें फैले हुए थे।

महाराष्ट्रके पाञ्चालोंमें सुपर्ण दैवज्ञ हैं। पांचालगण बंबई, मैसूर और मद्रासमें ही अधिक हैं। इनमें सुनार, लुहार, कसेरे, प्रस्तरकार और बढ़ई हैं। ये अपनेको ब्राह्मण और विश्वकर्माकी सन्तति बताते हैं। अपना यजन-याजन ये स्वयं करते हैं और ब्राह्मणका छुआ अन्न ग्रहण नहीं करते।

रघुकुलके मित्र जटायु, शायद इन्हीं सुपर्णोंके कोई जात-भाई होंगे।

महाभारतमें नाड़ीजंघ नामसे प्रसिद्ध पितामहके प्रिय सुहृद् कश्यपात्मज महाप्राज्ञ पक्षियोंमें श्रेष्ठ बकराजकी कथा है। ये भी शायद ऐसे ही पक्षी थे (आदि० १६९-१७२ अ०)। इनके कहनेपर एक वेद-ज्ञान-हीन गौतम नामक

ब्राह्मण धनके लिये एक दस्युके पास गये। वह दस्यु ब्रह्मनिष्ठ सत्यसंध और दानरत था। ब्राह्मणको उसने एक नया वस्त्र और एक विधवा स्त्री दान किया। गौतम उस स्त्रीके साथ वहीं वास करने लगे (शान्ति० १६९ अ०)। बादमें गौतम वहांसे फिर नाड़ीजंघके पास गये। फिर बकराजके द्वारा सत्कृत होकर उन्हींके कहनेसे गौतम मेरुव्रजपुरमें धार्मिक राक्षस राजाके पास गये और अन्यान्य ब्राह्मणोंके समान ही धन-रत्नादिसे सत्कृत हुए (शान्ति० १७१ अ०)।

पुराणोंके युगमें असवर्ण विवाह निन्दित होने लगा था। अनुलोम क्रमसे असवर्ण विवाहका समर्थन स्कंदपुराणके ब्रह्माण्ड खंडोक्त धर्मारण्य खण्डके षष्ठाध्यायमें है। गरुड़पुराण (पूर्व खण्ड ९५ अ०), में भी ऐसे विवाह वैध समझे गये हैं ; पर वहीं लिखा है कि यद्यपि द्विजातियोंका शूद्रकन्यासे विवाह कहा गया है, पर मैं इसे ठीक नहीं समझता क्योंकि पत्नीमें अपना ही जन्म होता है [१]। लेकिन यदि कन्या शूद्रकी न होकर वैश्य या क्षत्रियकी हो तो क्षत्रिय या ब्राह्मणके लिये ऐसे विवाह चल सकते हैं (९५।६)। पर जमानेके साथ द्विजोंमें भी अनुलोम विवाह उठ गया।

वेदमें और यज्ञमें शूद्र और स्त्रीको अधिकार नहीं है। यद्यपि स्त्रियां द्विजपत्नी होंगी तथापि उन्हें वेदाधिकार नहीं है। फिर भी पूर्वकालमें वेद-मंत्रोंकी रचयित्री स्त्रियां कम नहीं थी। प्राचीन कालमें यजमान-पत्नीके करणीय बहुतसे अनुष्ठान हुआ करते थे। फिर द्विजातियोंको इस अधिकारसे क्यों वंचित किया जाय ? संभव यह जान पड़ता है कि जब आर्य लोग इस देशमें आये होंगे, तो स्वभावतः ही उनके साथ स्त्रियोंकी संख्या कम रही होगी।

१—यदुच्यते द्विजातीनां शूद्रदारोपसंग्रहः।
न तन्मम मतं यस्मात् तत्रायं जायते स्वयम् ॥
(९५।५)

इसीलिये उन्हें आर्येतर जातिकी कन्या ग्रहण करनेमें कोई आपत्ति नहीं रही होगी। अन्तमें इन आर्येतर जातिकी स्त्रियोंकी संख्या ही ज्यादा हो उठी होगी और उनकी प्रवृत्ति भी पतिकुलके यज्ञ-यागादिकी अपेक्षा पितृकुलकी पूजापद्धतिकी ओर ही अधिक रही होगी। इसीलिये वे स्वयं भी शायद यज्ञादि कृत्योंमें विशेष उत्साहशीला नहीं रही होंगी। इसीलिये अन्तमें स्त्री और शूद्रको एक श्रेणीमें डाल दिया गया होगा। इसी पुस्तकमें अन्यत्र दिखाया गया है कि इन शूद्र पत्नियोंने ही आर्योंके समाजमें शिव विष्णु आदिकी पूजाका प्रवेश कराया था।

आजकल यद्यपि ब्राह्मणका विवाह अब्राह्मण कन्याके साथ नहीं हो सकता तथापि नारीका अधिकार जहांका तहां ही है। आज भी श्रौत मंत्रके लिये ब्राह्मण पत्नियां ही अधिकारिणी हैं। कहीं-कहीं तो निष्ठा यहांतक बढ़ी है कि बहुतसे ब्राह्मण पंडित अपनी पत्नियोंके हाथका अन्न भी ग्रहण नहीं करते। शूद्रके हाथसे कैसे अन्न ग्रहण करें? दक्षिणके नम्बूद्री ब्राह्मण लोग नायर स्त्रियोंके साथ संसार करते हैं सही, पर उनके हाथका छुआ अन्न जल नहीं ग्रहण करते, दिनमें उनको स्पर्श भी नहीं करते, और प्रातःकाल स्नान करके शुद्ध हो लेते हैं। इन स्त्रियोंसे उत्पन्न अपनी सन्तानको भी वे स्पर्श नहीं करते। इसलिये वे अपनेको अन्यान्य सब ब्राह्मणोंसे श्रेष्ठ भी समझते हैं। अन्यान्य ब्राह्मणों को वे हीन और स्पर्शके अयोग्य समझते हैं।

काशीमें मैंने एक नम्बूद्री ब्राह्मणसे पूछा था कि 'आपलोग शूद्रकन्याके साथ गार्हस्थ्य बंधनमें क्यों बंधते हैं?' उन्होंने जवाब दिया—सभी स्त्रियां तो शूद्र ही हैं। हम लोग तो फिर भी उनके साथ केवल संबंध ही करते हैं, उनके हाथका अन्नादि नहीं ग्रहण करते। प्रभात कालमें स्नान करके शुद्ध हो जाते हैं। अन्यान्य ब्राह्मण लोग तो शूद्राके साथ सम्बन्ध भी करते हैं और उनके

हाथका अन्न भी ग्रहण करते हैं। यह अच्छा है या हमारा शौचाचार अच्छा है? इसपर मुझे निरुत्तर होना पड़ा।

इन नम्बूद्री ब्राह्मणोंमें केवल सबसे बड़े भाईको ब्राह्मणकन्यासे विवाह करनेका अधिकार है और बाकी पुत्रोंको नायर कन्याओंसे सम्बन्ध करनेको बाध्य होना पड़ता है। फल यह होता है कि बहुतसी ब्राह्मण कन्यायें अविवाहित रह जाती हैं और बहुतसे नायर युवक भी अविवाहित रह जाते हैं। तथापि जब जस्टिस् शंकरन् नायारने विवाह संस्कार कानून पास कराना चाहा था, तो उस देशके प्राचीन पंथियोंने बड़ा ज़बर्दस्त विरोध किया था। जस्टिस शंकरन्‌की इच्छा यही थी कि नम्बूद्री पुरुष नम्बूद्री कन्याओंके साथ ही विवाह करें और नायर पुरुष नायर स्त्रियोंके साथ। इस प्रकार बहुतसे स्त्रियोंको और पुरुषोंको जो जबर्दस्ती कौमार व्रत पालन करना होता है, वह बंद हो और इस कौमार व्रतके कारण सामाजिक अस्वास्थ्य की कमी हो। परन्तु प्राचीन पंथियोंने यह कह कर घोर विरोध किया कि इस प्रकारके नवीन संस्कारोंसे देश और धर्मका अधःपतन होगा!

कुछ लोग पूछते हैं कि आर्य लोग क्या आर्येतर जातियोंमेंसे सिर्फ नागों और सुपर्णोंकी कन्यायें ही ग्रहण करते थे? राक्षसोंकी कन्यायें नहीं? वस्तुतः आर्येतर जातियोंमें ये दो जातियां अधिक सभ्य और संस्कृत थीं। नागकन्यायें तो सौन्दर्य और चारुताके लिये प्रख्यात थीं। राक्षसोंमें जो वंश सभ्य और सुसंस्कृत होते थे उनसे आर्योंका विवाह सम्बन्ध ज़रूर होता था। रावणकी कहानी तो प्रसिद्ध ही है। रामायण उत्तरकाण्डमें लिखा है कि पुलस्त्य नामके एक ब्रह्मर्षि थे (२।४), उनके पुत्र मुनिश्रेष्ट विश्रवा पिताकी भांति ही तपस्वी हुए (३।१)। वे सत्यवान्, शीलवान्, स्वाध्याय-निरत, शुचि, भोगमें अनासक्त और नित्यधर्म परायण थे (३।२)। इन्हींके वंशमें राक्षसी माताके गर्भसे रावण-

का जन्म हुआ था। अतएव रावणको मारनेसे रामको ब्रह्महत्याका पाप लगा था। रावण पापपरायण होने पर भी विद्या, बुद्धि और तपश्चर्यामें अग्रगण्य था। पुत्र रावणके स्नेहसे वाध्य होकर महर्षि पुलस्त्यको माहिष्मतीपुरमें जाना पड़ा। वहीं कार्तवीर्यार्जुनके यहां रावणको वन्दी होना पड़ा था (३।२-४)। मेघनाद भी याग यज्ञमें प्रवीण था (२५।४-५)। महाभारतके मेरुव्रज नगरके धर्मशील राक्षसराजकी ब्राह्मण भक्तिका हाल तो पहले ही कहा गया है।

स्कंद पुराणकी कथा है कि स्वामीके आदेशसे राक्षसी सुशीला पुत्र प्राप्तिके लिये शुचि नामक मुनिके पास गई थीं। इसी सम्वन्धसे कपालाभरण नामक पुत्र हुआ था। यद्यपि सुशीला मुनिकी अपनी पत्नी नहीं थी; तथापि ब्राह्मणसे उत्पन्न होनेके कारण उनका पुत्र कपालाभरण ब्राह्मण ही हुआ। इसे हत्या करनेके कारण इन्द्रको ब्रह्महत्या लगी थी (स्क० पु० सेतु माहत्म्य ११।६०)।

यह समझना भी ठीक नहीं कि सभी राक्षस असभ्य और नर-मांसाशी थे। उत्तम नामक राजासे वलाक राक्षसने कहा था कि हे राजन्, हम लोग मनुष्यका मांस नहीं खाते। वे अन्य श्रेणीके राक्षस हैं, जो ऐसा करते हैं—न वयं मानुषाहारा अन्ये ते नृप राक्षसाः (मार्कण्डेय पुराण ७०।१६)। ये राक्षस रूपवान् भी थे, इसीलिये वलाकने कहा था कि हमारी स्त्रियां रूपमें अप्सराओं के समान हैं। उनके होते हुए हम लोग मानुषियोंके प्रति लालसा क्यों करेंगे[1]? साधारणतः चार श्रेणीके राक्षस थे (वायु० ७०।५५)। इनमें वेदाध्यायी और तपोनिष्ठ राक्षस भी थे (वही० ५३)। मत्स्यपुराणसे दानवोंकी कठोर तपस्याका परिचय मिलता है (१२९।७-११) जिससे ब्रह्मा भी प्रसन्न हुए थे।

१—सन्ति नः प्रमदा भूप रूपेणाप्सरसां समाः।
राक्षस्यस्तासु तिष्ठत्सु मानुषीषु रतिः कथम्॥
(वही ७०।१९)

राजा दम सूर्यवंशके प्रख्यात धार्मिक राजा थे। उन्होंने अपने पितृश्राद्धके अवसरपर राक्षसकुलोद्भव ब्राह्मणोंको भोजन कराया था[१]। राजा दमकी इस कीर्तिका वर्णन करके पुराणकार कहते हैं सूर्यवंशोद्भूत राजा ऐसे थे[२]।

जातिभेदमें प्रधानतः दो बातें हैं, खान-पान और व्याह-शादी। इन्हींको संक्षेपमें 'रोटी-बेटी' का व्यवहार कहते हैं। एक तीसरी बात मृतक-संस्कार और श्राद्ध है, जो इन दोनोंके बाद ही महत्त्वपूर्ण है। इसके विषयकी चर्चा अन्यत्र इसी पुस्तकमें की गई है।

अनेक पण्डितोंका मत है कि वैदिक युगमें और यहां तक कि सूत्रयुगमें भी सभी जातिके लोगोंके हाथका अन्न ग्रहण किया जाता था (Sham sastri, P. 6)।

वेदमें शुरू शुरूके अंशोंमें कहीं भी इस खान-पानकी समस्यापर विचार नहीं मिलता। किन्तु उपनिषदोंके समयमें एक प्रकारका खान-पानका विचार चल पड़ा होगा, ऐसा जान पड़ता है। छान्दोग्य उपनिषद्में उषस्ती चाक्रायणकी कथा है। वे एकबार अवस्थाके विपर्यय वश कुरुदेश त्याग करके हस्तिपालकोंके 'इन्य' ग्राममें आये। वे लोग 'कुल्माष' उबाल कर खा रहे थे। क्षुधित चाक्रायणने वही मांगकर खा लिया। जब वे लोग उन्हें पानी पिलाने लगे तो चाक्रायणने कहा कि तुम्हारे हाथका उबाला माष तो खा चुका हूं किन्तु पानी नहीं पीनेसे भी हमारा काम चल जायगा (छान्दोग्य १।१०।१-११)। इससे उन दिनों खान-पानके विचारका पता चलता है। किन्तु पूर्ववर्ती वैदिक युगमें यज्ञके व्रत दीक्षाके समय जो खान-पान सम्बन्धी संयमका निर्देश है वह अन्य कारण से। यज्ञके समय पवित्र होकर रहना ही उसका उद्देश्य है, जाति-विचार नहीं।

१—ब्राह्मणान् भोजयामास रक्षःकुलसमुद्भवान्।

२—एवंविधा हि राजानो बभूवुः सूर्यवंशजाः।

(१३७।३६)

भगवान् मनुने स्पष्ट ही कहा है कि काठ, जल, मूल, फल, अन्न, स्वयं आया हुआ, मधु और अभय दक्षिणा सब जगहसे ग्रहण करना चाहिये[1]। आगे चलकर पुनर्वार सब जगहसे जल ग्रहणका विधान करके मनु भगवान्ने इस बात को और स्पष्ट कर दिया है[2]।

रामायण और महाभारतमें ऐसी बहुत कथायें हैं जहां मुनिगण क्षत्रिय और वैश्य गृहस्थोंके घर सब प्रकारका अन्न ग्रहण करते बताये गये हैं। महाभारतकी बहुत प्रसिद्ध कथा है कि वनमें द्रौपदी बहुतसे तपस्वियोंको प्रति दिन भोजन कराया करती थीं। एकबार महाकोपन दुर्वासा ऋषिने असमयमें शिष्यों सहित उपस्थित होकर अन्न मांगा। ऐसे संकटके समय द्रौपदीके सहायक श्रीकृष्ण हुए और किसी प्रकार उनकी लज्जा बची (वन० २६ अध्याय)। इसी प्रकार आदि पर्वमें राजा पौष्यका ब्राह्मण उतङ्कको अन्न दान करना प्रसिद्ध है (आदि० ३। ११५)।

सूत्रकालमें भी देखा जाता है कि ब्रह्मचारी ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य सबके घर अन्न ग्रहण कर सकता था (आपस्तंब ३।२८-३०)। गौतम धर्मसूत्र (२।४२) के अनुसार पतित और अभिशप्तको छोड़कर बाकी सबके घर ब्रह्मचारी अन्न ग्रहण कर सकता था। गौतम संहिता (२ य अध्याय) की भी यही व्यवस्था है। उशनः संहितामें भी सार्ववर्णिक भैक्षाचरणका विधान है (१।५४)। और मनुने भी कहा है कि जरूरत पड़नेपर ब्रह्मचारी सर्वत्र भिक्षा मांग सकता है (२।१८५)। पद्मपुराण, (स्वर्ग खण्ड २५।६१) से भी यही बात सम-

---

१—एधोदकं मूलफलमन्नमभ्युद्यतं च यत्।
सर्वतः प्रतिगृह्णीयान्मध्वथाभयदक्षिणाम्। (४।२४७)

२—शय्यां गृहान् कुशान् गन्धान् अन्नं पुष्पं मणीन् दधि।
धानामत्स्यान् पयो मांसं शाकं चैव न निर्णुदेत् ॥ (४।२५०)

थित होती है। आपस्तम्ब कहते हैं कि अनेक लोगोंका मत है कि ब्राह्मणके लिये शूद्रको छोड़कर स्वधर्ममें वर्तमान जिस किसीका अन्न विहित है (१८।१३)।

महाभारतमें ठीक ऐसी ही बात मिलती है (अनु० १३५।२-३)। सभापर्वमें राजा हरिश्चन्द्रके राजसूय यज्ञमें अधीनस्थ राजा लोग ब्राह्मणोंको अन्न परोस रहे थे (१२।१४) और वैश्योंकी भांति राजा लोग भी अन्न परोसनेमें लग गये थे (४९।३५)। इसी तरह द्रौपदीके स्वयम्वरके समय भी दास-दासी और पाचक भृत्य सबको अन्न परोस रहे थे (आदि० १९४।१३)।

गौतम संहितामें भी देखा जाता है कि पशुपालक, क्षेत्रकर्षक कुलक्रमागत नापित और परिचारक यदि शूद्र भी हों तो इनका अन्न ग्रहणीय है—पशुपालक क्षेत्रकर्षक-कुलसङ्गतकार-पितृ-परिचारिका भोज्यान्नाः (१७ अ०)।

इस प्रकार देखा जाता है कि कुछ शूद्रोंके अन्न तो ग्रहणीय हैं और कुछके नहीं। इसका कारण क्या है ?

जिन शूद्रोंने आर्योंकी रीति-नीति और धर्म ग्रहण नहीं किया था, जो साफ सुथरे नहीं रहते थे, उनका अन्न ग्रहणीय नहीं समझा गया था। जो साफ-सुथरे और आचार परायण थे, उनका अन्न ग्रहण किया जाता था। इसीलिये लघु विष्णुस्मृतिमें कहा है कि शूद्र दो प्रकारके हैं। जिन्होंने धन और प्राण समेत ब्राह्मणोंका शरण ग्रहण किया है, वे भोज्यान्न हैं, अर्थात् उनका अन्न ग्रहणीय है और जो ऐसा नहीं कर सके वे अभोज्यान्न हैं (५।११)। इसीलिये शूद्र दो प्रकारके हैं—श्राद्धी और अश्राद्धी। श्राद्धी अर्थात् विश्वास भाजन। पहले भोज्यान्न हैं, दूसरे नहीं[1]। गौतम संहिताकी उपर्युक्त व्यवस्था इसीलिये है। गौतमके टीकाकार मस्करिने इस बातके समर्थनमें उशनाका यह मत उद्धृत

१—शूद्रोऽपि द्विविधो ज्ञेयः श्राद्धी चैवेतरथा।
श्राद्धी भोज्यस्तयोरुक्तोह्यभोज्योहीतरः स्मृतः (५।१०)

किया है—स्वगोपालो भोज्यान्नः स्वक्षेत्रकर्षकश्च। मनुके श्लोकको भी टीकाकारने उद्धृत किया है[१]।

मनुस्मृतिमें यह श्लोक जरासा पाठभेदके साथ पाया जाता है। वहां 'क्षेत्रकः' की जगह 'आर्द्धिकः' पाठ है[२]। अर्थ वही है। अर्थात् जिन्होंने स्वयंको निवेदन करके सेवाव्रत ग्रहण किया है ऐसे खेत जोतनेवाले, कुलवन्धु, गोपाल, और दास तथा नाई शूद्र होनेपर भी भोज्यान्न हैं (मनु० ४।२५३)। यह श्लोक ही कूर्मपुराण (उपरिभाग १७।१७) में भी है और गरुड़पुराणमें (पूर्व खंड ९६।६६) भी है। व्यासने भी इसी बातका समर्थन किया है (३।५१-५२)। कूर्मपुराण में विशेष इतना है कि इन शूद्रोंका अन्न ग्रहणीय तो है, पर थोड़ा मूल्य दे लेना चाहिये[३]।

पाणिनिने 'शूद्राणामनिरवसितानां (२।४।१०) इस सूत्रमें शूद्रोंके दो भाग किये हैं—वहिष्कृत और अवहिष्कृत। इसपर आचार्य कैयटने लिखा है कि शूद्रोंको पंचयज्ञमें अधिकार है (Indian Culture, 1938. Turner, P.371)।

१—क्षेत्रकः कुलमित्रश्च गोपालो दासनापितौ।
एते शूद्रेषु भोज्यान्ना यश्चात्मानं निवेदयेत्॥

२-बृहद्यमस्मृति (३।१०), यमसंहिता (२०), पराशरसंहिता (११। २०) में यही श्लोक थोड़ा सा परिवर्तित रूपमें यों मिलता है—
दासनापितगोपालकुलमित्रार्धसीरिणः।
एते शूद्रेषु भोज्यान्ना यश्चात्मानं निवेदयेत्॥
याज्ञवल्क्यसंहिता (१।१६८), गरुड़ पुराण (पूर्वखंड, ९६।६६) और निर्णयसिंधुमें भी यही भाव इस परिवर्तित रूपमें है—
शूद्रेषु दासगोपालकुलमित्रार्द्धसीरिणः।
भोज्यान्ना नापितश्चैव यश्चात्मानं निवेदयेत्॥

३—एते शूद्रेषु भोज्यान्ना दत्त्वा स्वल्पं पणं बुधैः। (उपरि भाग० १७।१८)

स्कंदपुराणमें लिखा है कि यदि शूद्र भगवद्भक्त हो, तो उसे ब्रह्मज्ञानका उपदेश दिया जा सकता है पर अशुचि ब्राह्मणको नहीं (नागरखण्ड २६२।५०)। स्वयं वेद भी सत्यको सबके निकट प्रकट करनेका उपदेश देता है—यथेमां वाणीं कल्याणीमावदानि जनेभ्यो ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय च स्वाय चारणाय च (वा० सं० २६।२)।

सुश्रुत संहितामें सूत्रस्थानमें कहा गया है कि किसी किसीका मत है कि कुल-गुण-सम्पन्न शूद्रको भी विना मंत्र और विना दीक्षाके ही अध्ययन करना चाहिये (२-५)। सुश्रुतके टीकाकार डल्हणने भी इस मतका समर्थन किया है ।

मीमांसा दर्शनके शूद्रस्थानाधिकार निरूपणके समय कहा गया है—चातुर्वर्ण्य विशेषात् (६।१।२५)। इसपर भाष्यकार शवर स्वामी प्रश्न करते हैं—इस अग्निहोत्रादि कर्ममें क्या चारों वर्णोंको अधिकार है, या शूद्रको छोड़कर वाकी तीन वर्णोंका ही है ? यहां हम क्या श्रुति पाते हैं। वेदमें तो चारों वर्णके लिए 'यज्ञ करें' 'आहुति दें' आदि विधान है, क्योंकि वेदमें किसी वर्ण विशेषके अधिकारकी तो कोई वात नहीं है ? इसीलिये शूद्रको भी इस अधिकार से निवृत्त नहीं किया गया[1] । इसके वाद भाष्यकारने श्रुति वाक्यके साथ आत्रेयका एक वचन उद्धृत कर इस मतपर आपत्ति उठाई है और फिर 'वादरि' का मत उद्धृत करके उसका समाधान किया है। वादरिका मत है कि निमित्तार्थ ही कहीं कहीं श्रुतिमें विशेष्याधिकारकी वात है। इसलिये उसमें सवका अधिकार

१—अग्निहोत्रादिनि कर्मणि उदाहरणं तेषु सन्देहः—किं चतुर्णां वर्णानां तानि भवेयुः। उत अपशूद्राणां त्रयाणां वर्णानामिति। किंतावत्प्राप्त ? चातुर्वर्ण्यमधिकृत्य 'यजेत' 'जुहुयात्' इत्येवमादि शब्दमुच्चरति वेदः। कुतः, अविशेषात्। नहि कश्चित् विशेष उपादीयते। तस्मात् शूद्रो न निवर्तते।

सिद्ध हुआ[१]। किन्तु बादके सूत्रों और उनपर किये गये विचारोंसे जान पड़ता है कि यह मत भी क्रमशः संकीर्ण हो गया है (६।१।२८-३८)।

कोई कोई ऐतरेय ब्राह्मणके (८।१।४) मंत्र[२]से शूद्रोंके यज्ञाधिकारका अनुमान करते हैं। इस मंत्रमें शूद्रके साथ प्रतिष्ठाके योगका उल्लेख है। इसी प्रकार आपस्तम्ब श्रौतसूत्र (१।१९।९) में कहा गया है कि ब्राह्मणादि चारों वर्ण क्रमशः 'एहि' 'आगाहि' 'आद्रव' 'आधाव' कह कर हविष्कृत्का आवाहन करें। या फिर, जैसा कि इसके आगेके सूत्रसे स्पष्ट है, सभी 'एहि' कहकर ही आवाहन कर सकते हैं। इस तरह शूद्रको हविष्कृत्के आवाहनकी व्यवस्थाका अर्थ है शूद्रको भी यज्ञका अधिकारी मानना। टीकाकार रुद्रदत्त इन सूत्रोंकी टीका करते समय कहते हैं कि यहां 'शूद्र' का अर्थ है निषाद-स्थपति, जिनके यजनका उपदेश उक्त श्रौतसूत्रमें ही है (१२।९।१४)। इन निषादस्थपतियोंके विषयमें वैदिक इन्डेक्समें अनेक प्रमाण देकर सिद्ध किया गया है कि इन्होंने आर्योंका वश नहीं स्वीकार किया था और अपने आपमें गणनेता थे (कात्यायन श्रौतसूत्र १।१।१२)।

आपस्तंब परिभाषासूत्र (१।२) की टीकामें कपर्दी स्वामीने 'निषादस्थपतिं याजयेत्' यह वचन उद्धृत करके इनके याजन करानेको विहित माना

१—निमित्तार्थेन बादरिः तस्मात्सर्वाधिकारं स्यात्।

(६।१।२७)

२—ब्रह्म वै स्तोमानां त्रिवृत् क्षत्रं पंचदशो ब्रह्म खलुवै क्षत्रात् पूर्वं ब्रह्मपुरस्तान्म उग्रं राष्ट्रमव्यथामसदिति विशः सप्तदशः शौद्रोवर्ण एकविंशं विशं चैवास्मै राष्ट्रौदंच वर्णमनुवर्त्मानौ कुर्वत्यथो तेजो वै स्तोमानां त्रिवृत् वीर्यं पञ्चदश प्रजातिः सप्तदशः प्रतिष्ठा एकविंशस्तदेनं तेजसा वीर्येण प्रजात्या प्रतिष्ठायान्ततः समर्द्धयति।

है (G. Ol. P 11 ,)। इसी सूत्रकी व्याख्यासे जाना जाता है कि गवेधुक् यागमें निषादस्थपति प्रयोजनीय वैदिक मंत्र याद कर लिया करते थे। स्त्रियों (S.B.E. XXX P. 317) और रथकारके सम्बन्धमें भी यही व्यवस्था है (वही० पृ० ३१६)।

आज दिन भी विवाहके समय नाई 'गौर्वचन' उच्चारण करता है। कई जगह इसका आशय ठीक न समझकर नाई नाना भांतिकी तुकबंदियां बोलते हैं। 'गौर्वचन' असलमें 'गौः गौ; गौः' इस प्रकार तीन बार गौ शब्दके उच्चारण करनेको कहते हैं (गोभिल ४।१०।१८)। आशय है कि यज्ञमें बलिदानके लिये (गौ सांढ़) आ गया है। उन दिनों वैवाहिक यज्ञमें भी गो-बलि होती थी। अहिंसा धर्मकी प्रतिष्ठाके बादसे वह प्रथा अब उठ गई है।

नापितके इस प्रकार कहनेपर कोई पूज्य व्यक्ति कहते थे कि गौको वरुण-पाशसे मुक्त करो...वह घास खाय और पानी पिये (गोभिल गृह्यसूत्र ४।१०।१९) और इसके बाद ऋग्वेदका एक मंत्र (८।१०१।१५) पढ़ा जाता था। इससे सिद्ध होता है कि नापितको यज्ञमें कुछ काम करने और अन्ततः वेदमंत्र सुननेका अधिकार था।

छान्दोग्य उपनिषद् (४।२) में जानश्रुति पौत्रायण नामक शूद्रकी कथा है। ये रैक नामक ब्रह्मवादीके पास पहले छ सौ गायें, निष्क, अश्वतरी, रथ, उपहार लेकर गये, पर रैक्वने उन्हें शूद्र कह कर प्रत्याख्यान किया। बादमें जानश्रुति अपनी कन्या देने लगे ; पर फिर भी प्रत्याख्यात हुए। किन्तु बादमें शिष्य रूपसे सेवा करनेके बाद रैक प्रसन्न हुए और उन्होंने जानश्रुतिको ब्रह्म विद्या दी। इस आख्यानसे दो बातें प्रकट होती हैं। एक तो यह कि कुछ लोग जो यह मानते हैं कि शूद्रका उपनयन होता था, वह निराधार नहीं

है ; क्योंकि यहां शूद्रका गुरुगृहमें वास स्पष्टही प्रमाणित होता है। दूसरी वात यह है कि ब्राह्मण शूद्र कन्यासे विवाह कर सकते थे। यद्यपि इस कथामें यह नहीं वताया गया है कि रैक्कने वादमें उस कन्याको ग्रहण किया था, या नहीं (शायद किया हो, क्योंकि ऐसे मामलोंमें पहले नाहीं करना और वादमें स्वीकार करना कोई असाधारण बात नहीं है) पर इतना तो स्पष्ट ही है कि अगर वह कन्या ग्रहणीय न होती, तो जानश्रुति उसे उपहार रूपमें देनेको जाते ही नहीं। उन दिनों शूद्रोंके प्रति सामाजिक व्यवहार वहुत उत्तम नहीं था, यह देखते हुए जानश्रुतिका दो बार प्रत्याख्यात होना वहुत ज्यादा अशोभन नहीं लगता।

अब प्रश्न है कि क्या कारण है कि आर्य लोगोंने निषाद-स्थपतियोंको, जो उनका वश नहीं मान रहे थे, यज्ञमें कुछ भाग लेनेका अधिकार दिया और अपने एकान्त अनुगत शूद्रोंको वैसा अधिकार नहीं दिया? यह चिरंतनी नीति है कि जो सम्पूर्ण रूपसे अपनेको समर्पण कर देता है, उसका मान कम हो जाता है। अव भी गुरुओं और मंडलीपतियोंमें देखा जाता है कि वे जव ऐसे लोगोंको चेला या अनुगत वनाना चाहते हैं, जो लोग ज़रा वुद्धिमान और आत्मसम्मान-प्रिय होते हैं, तो ये चेले पूर्ण तौरपर अपनेको पकड़में नहीं आने देते। जो लोग वाहर रहकर शेखी जमाया करते हैं उनकी पद मर्यादा भी वनी रहती है। जो लोग भोले आदर्शवादी होते हैं और संपूर्ण रूपसे अपनेको सौंप देते हैं, वे दो दिन वाद ही शुभग्रहोंकी भांति विसार दिये जाते हैं। रहीम ने ठीक ही कहा है :—

भले भले कहि छाड़ियत, खोटे ग्रह जपदान।

लंपट पुरुष भी जव स्त्रियोंको भुलाकर अपने आधीन कर लेते हैं, तो फिर उनके साथ दुर्व्यवहार करने लगते हैं। यह मनोविज्ञानका सहज सत्य

है। जिसे पा लिया है उसकी उपेक्षा और जिसे अभी नहीं पाया है, उसके लिये आग्रह यही स्वभावतः ठीक है। यह भी देखा जाता है कि जो प्रवल पराक्रान्त राजा अपनी प्रजाओंको उत्पीड़ित करते हैं, वही वाहरी दस्युओं और गुण्डोंसे वहुत भद्रतापूर्ण व्यवहार करते हैं।

यह राजनीतिक बुद्धि आर्योंके भी थी। यही कारण है कि निषादस्थपति लोगोंके प्रति उन्होंने जितनी ममता दिखाई है, उतनी अपने एकान्त अनुगत शूद्रोंके प्रति नहीं दिखा सके। अथर्ववेदमें (१५।१।१) व्रतहीन व्रात्योंकी जो इतनी स्तव-स्तुति है, उसके मूलमें भी शायद यही कारण है। कुछ लोगोंका मत है कि व्रतहीन आर्य ही व्रात्य थे और कुछ लोग इन्हें व्रतहीन अनार्य मानते हैं। पर सर्वसम्मत वात यह है कि वे आर्य आचारकी आवश्यकता नहीं मानते थे। क्या इसीलिये वेदमें इनकी इतनी स्तुति है? शूद्रोंमें भी जो लोग जानश्रुतिकी भांति राजा या जननेता थे वे फिर भी वहुत कुछ भद्रव्यवहारकी प्रत्याशा कर सकते थे।

महाभारतमें आर्य लोगोंकी दस्युओंके साथ इस विषयमें कैसी नीति थी, उसका अच्छा उदाहरण मिलता है। दस्युओंने भी आर्योंकी वश्यता नहीं मानी थी। फिर भी उनके प्रति उनकी ममताका अभाव नहीं था। युधिष्ठिरको भीष्म उपदेश दे रहे हैं कि दस्यु लोग सहज ही वहुत सैन्य संग्रह करके काम काजके योग्य हो सकते हैं (शान्ति० १३३।११), अतः उनके साथ जन-चित्त-प्रसादिनी मर्यादा स्थापन करनी चाहिये[1]। उनके साथ विरोध उपस्थित हो, तो नृशंस व्यवहार नहीं करना चाहिये[2]। जो लोग दस्युओंका धन-जन विनाश नहीं करते, वे ही सुखपूर्वक राज्य भोगते हैं और जो विनाश करते हैं उनके लिये निरुपद्रव होकर राज्य करना असंभव है (१३३।२०)।

१—स्थापयेदेव मर्यादां जनचित्तप्रसादिनी। (वही १३)
२—न वलस्थोऽस्मीति नृशंसानि समाचरेत् (१९)।

इन सब वातोंकी पुष्टिके लिये आगे चलकर भीष्मने (शान्ति० १३५ अध्याय) कायव्य नामक दस्युका उपाख्यान कहा। कायव्य क्षत्रिय पिता और निषादी मातासे उत्पन्न थे। नीतिसंगत भावसे सबका उपकार करके और धर्म का उल्लंघन न करके उन्होंने शक्ति पाई। वृद्ध, अन्ध, वधिर, तापस और ब्राह्मणोंके प्रति वे अति दयालु थे (६-८)। उन्हें इस प्रकार मुहूर्त-देश-कालज्ञ प्राज्ञ, शूर और दृढ़व्रत देखकर वहुतसे दस्युओंने आकर उन्हें अपना ग्रामणी या नेता वनाया (११)। कायव्यने उनसे कहा कि तुम लोग स्त्री, भीत, तपस्वी और शिशुओंको न मारना। जो युद्ध न करता हो उसपर हाथ न उठाना, स्त्रीको वलपूर्वक न पकड़ना (१४), सत्यकी रक्षा करना, मंगल कार्यमें वाधा न पहुंचाना (१५) और उनके ही विरुद्ध आक्रमण करना जो हमारा प्राप्त हमें न देना चाहें (१९), दण्ड दुष्टोंको दमन करनेके लिये है शिष्टोंको पीड़ा देनेको नहीं (२०)।

इससे जान पड़ता है कि दस्युओं और निषादोंमें अनेक योग्य पुरुष थे। उन्हें यज्ञादिमें योग देने देना कुछ भी अन्याय नहीं है। अन्याय यह है कि जिन शूद्रोंने आर्योंकी वश्यता स्वीकार की थी, उनमें जो योग्य थे उन्हें उससे वञ्चित करना। यद्यपि यह स्वाभाविक है कि मनुष्य अपने अनुगत और शरणापन्नोंकी उपेक्षा करता है। कभी कभी उनके प्रति निर्मम भी होता है, पर स्वाभाविक होनेसे कोई वात धर्मसंगत नहीं हो जाती।

यहां फिरसे दूसरे अध्यायमें उद्धृत भृगुके उस वचनको स्मरण कर लिया जा सकता है कि सृष्टिके आरम्भमें सभी ब्राह्मण थे (शान्ति० १८८।१०)। नानाविधि कर्मों द्वारा पृथक किये हुए ब्राह्मण ही अन्यान्य वर्णोंमें गये हैं। इसीलिये उनका यज्ञ क्रिया रूप धर्म नित्य है, वह प्रतिषिद्ध नहीं हो सकता[1]।

१—इत्येतैः कर्मभिर्व्यस्ता द्विजा वर्णान्तरंगताः।
धर्मो यज्ञक्रिया तेषां नित्यं न प्रतिषिध्यते॥ (शान्ति० १८८।१४)

यद्यपि ये चार वर्णोंमें विभक्त हुए, पर उन सबका वेदमें अधिकार था। यही विधाताका विधान था। लोभवश उसे खोकर बहुतसे लोग अज्ञानताको प्राप्त हुए हैं[1]। यहां टीकाकार आचार्य नीलकण्ठ जो कुछ कहते हैं[2] उस हिसाबसे तो आज भी बहुतसे तथाकथित आर्य लोग लोभ और तामसिकाके दोषसे वेदाध्ययनका अधिकार खो चुके हैं और शूद्रत्वको प्राप्त हो गये हैं।

समाजमें जीवन और गति

प्राचीन कालमें, फिर भी समाजमें गति और प्राण था। अध्यातम योगके विषयमें बृहदारण्यकमें कहा गया है कि यहां आकर चाण्डाल चाण्डाल नहीं होता और पौल्कस पौल्कस नहीं रहता—"चाण्डालोऽचाण्डालः पौल्कसोऽपोल्कसो भवति" (४।३।२२)। इससे जान पड़ता है, तब भी समाजमें एक गति है, एक स्पन्दन है। तब भी समाजकी सीमायें विधि-निषेधकी दुलंघ्य दीवारोंसे घेर नहीं दी गई हैं। जिस दिनसे हिन्दू समाजमें 'विधि-निषेधकी दीवारें कठोर बना दी गई उसीदिनसे उसमें एक प्रकारकी गतिहीन जड़ता आ गई है।

१—इत्येते चतुरो वर्णाः येषां ब्राह्मी सरस्वती।
विहिता ब्रह्मणा पूर्वं लोभात्त्वज्ञानतं गताः।
(वही १८८।१५)

२—"चतुरश्चत्वारो ब्राह्मी वेदमयी चतुर्णामपि वर्णानां ब्राह्मणा पूर्वं विहिता। लोभदोषेण त्वज्ञानतां तमोभावं गताः शूद्रा अनधिकारिणो वेदे जाताः इत्यर्थः॥

ऊंची जातिका नीची जाति हो जाना कठिन नहीं है, पर हमने अन्यत्र देखा है कि वहुतेरी नीची जातियोंसे उत्पन्न व्यक्ति ऊंची जातिके हो चुके हैं। साधारणतः समाजके जीवन और गतिके अनुसार ऊंच-नीच होना नियंत्रित होता है। कभी कभी राजाओंने कई जातियोंको ऊपर या नीचे उठा दिया है, जैसे वल्लालसेनने वङ्गालके सुवर्ण वणिकोंको पतित कर दिया था (आगे देखिये) और कभी कभी किसी एक महापुरुषने जातिकी जातिको ऊपर उठा दिया है, जैसा कि मणिपुरमें हुआ है।

इन दिनों भी मनुष्य गणनासे जाना गया है कि वहुतसी ब्राह्मण शाखायें नीची जातियोंसे ऊपर उठी हैं। विल्सनने अपनी पुस्तक (What Castes are) में इसके कई उदाहरण दिये हैं। कोंकणस्थ या चित्पावन ब्राह्मणोंके विषयमें कहा जाता है कि परशुरामने श्राद्धकार्यके लिये ६० आदमियोंको चितासे उठाकर ब्राह्मण वनाया था (पृ० १९)। डाक्टर भाण्डारकरका कथन है कि ये लोग एशिया माइनरसे आये हुए हैं। इनका जहाज समुद्रमें डूव गया था, तव ये भारतवर्षके पश्चिमी किनारेपर उतरे थे। पहले उन्हें हिन्दुओंने समाजमें ग्रहण नहीं किया। वादमें परशुरामकी कृपासे ये समाजमें गृहीत हुए[1] (Census. 1931 Vol I, Part III, XXVIII)। जवल या जावाल लोगोंको भी दूसरे ब्राह्मण स्वीकार नहीं करते। कहते हैं इन्हें भी पेशवाओंके किसी सम्वन्धी परशुरामने कुनवी श्रेणीसे उठाकर ब्राह्मण वनाया था (What Castes are P. 27)।

१—चित्पावनोंके विषयमें प्रसिद्ध है कि परशुरामने पृथ्वीको क्षत्रियहीन करके यज्ञ और श्राद्ध करना चाहा। जब ब्राह्मण नहीं मिले, तो कैवर्तों के गले में जनेऊ डालकर उन्होंने उनको ब्राह्मण वनाया। चिताके पास खड़े होकर यह कार्य उन्होंने किया था अतएव ये चित्पावन कहलाये (Cens.us Baroda. 1931. I.P.433)।

काष्ठ ब्राह्मणोंकी भी यही दशा है। कोई कोई कहते हैं कि ये पहले कायस्थ थे (पृ० २८)।

इसके विपरीत आन्ध्र देशके आराध्य नामक लिंगायत सम्प्रदायके ब्राह्मण उच्चवर्णोंकी यद्यपि गुरुगिरी करते हैं तथापि अन्यान्य ब्राह्मण इनका ब्राह्मणत्व स्वीकार नहीं करते (पृ० ५२)। तामिल और कर्णाट देशके नुम्बि ब्राह्मण गण मन्दिरके पुजारी होनेके कारण अपांक्तेय हो गये हैं। अम्बलवासी गण दक्षिणी ब्राह्मण हैं किन्तु देवल ब्राह्मण होनेके कारण महाराष्ट्रके गुरव ब्राह्मणोंकी भांति पतित होगये हैं (पृ० ८१)। गुर्जर देशमें जो कण्डोल नामक एक श्रेणीके ब्राह्मण हैं, कण्डोल पुराणके अनुसार एक ही साथ १८००० आदमियों-को जनेऊ देकर ब्राह्मण बनाया गया था।

राजपूताना, सिंध और गुजरातमें बहुतसे पुष्करण या पोखरना ब्राह्मण हैं। पुष्कर नामक ह्रदको जिन्होंने कुदाल लेकर खोदा था, बादमें उन्हें ही पोखरना ब्राह्मण बना दिया गया था। इनके सिवा इन प्रदेशोंमें एक तरहके पोखर सेवक या पुष्कर सेवक नामक एक श्रेणीके ब्राह्मण हैं। ये लोग अपनेको पाराशरी ब्राह्मण भी कहते हैं। कहते हैं किसी मेर जातिके आदमीके तीन पुत्र थे, भूपाल, नरपति और गजपाल। भूपालने एक मुनिकी बड़ी सेवा की। मुनिने भूपालको ब्राह्मण बना कर यजुर्वेदकी शिक्षा दी। तभीसे भूपालके वंशज पुष्कर सेवक ब्राह्मण हुए। नरपतिके वंश वाले लोधा बनिया हुए और गजपालकी सन्तानें मेर हुईं। भूपालके वंश वाले मंदिरके सेवकका कार्य करते हैं, उनका गोत्र वशिष्ठ है और शाखा मध्यन्दिन। एकबार जयपुरके महाराज सवाई जय-सिंह पुष्करको गये। वहां पुष्कर ब्राह्मणोंको तीर्थगुरु जानकर उन्होंने एक पोशाक दी। ब्राह्मणने वह पोशाक अपने दामादको दिया, यह दामाद जयपुरके एक मंदिरका भृत्य था। उसके पास पोशाक देखकर राजा जयसिंह समझ सके

कि असलमें वे कैसे ब्राह्मण हैं। और बादमें उन्होंने पुष्करोंको मंदिरके अधिकारसे वंचित किया। पोखरना लोग सिंधमें भाटियोंके पुरोहित हैं (वही पृ०-११४, १६९, १३९)। कोई कोई उन्हें धीवर कन्याके गर्भसे उत्पन्न बताते हैं। (Crook Vol. IV. P. 177)।

कहते हैं कि गुजरातके अम्भीर ब्राह्मण, राजपूत वंशके हैं। ये लोग अहीरोंके पुरोहित हैं (Wilson P. 120)। सूरत जिलेके तपोधन[१] ब्राह्मण शिव मन्दिरके पुजारी होनेके कारण पतित समझे गये हैं (पृ० १२२)। इसी तरह वहांके अनाविल ब्राह्मणोंको भी, जिनकी वृत्ति कृषि है, बहुतसे लोग ब्राह्मण नहीं मानते। कहते हैं वे स्थानीय पहाड़ी जातिके थे। इसी प्रकार सपादलक्ष या सवालाख संप्रदायके ब्राह्मण भी शूद्रोंको जनेऊ देकर बनाये गये थे। (Campbell, P. 259.)

प्रतापगढ़के कुछ ब्राह्मणोंको अहीर बताया जाता है। कुछ लोग इन्हें कुर्मी और कुछ लोग इन्हें भाट कहते हैं। कहते हैं, कि राजा माणिकचंदने उन्हें ब्राह्मण बनाया था (Campbell P. 260 ; crook, I P. XXI)। राजा लोग प्रायः अनेक वार जातिको ऊपर या नीचे चढ़ा उतार सकते थे। कहलूर नामक छोटे राज्यके कोलियोंको वहांके राजाने युद्धके प्रयोजनवश क्षत्रिय बनाया था (Gloss. vol. I P. IV)।

अइलीके ब्राह्मण नोनिया थे। असोथरके राजा भागवतरायने उन्हें जनेऊ दिया था। गोरखपुरके बंजारे लोग अब ब्राह्मण होकर सुकुल, पांडे और मिसिर होगये हैं (वही)। उन्नावके राजा तिलकचंदने एक वार प्यासके मारे लोध जातिके किसीके हाथ का जल पी लिया, जब उनकी जाति उन्हें मालूम हुई, तो उन्होंने इन लोगों को ब्राह्मण बना दिया। ये ही आमताड़के पाठक हैं (वही)।

उन्नावके महावर राजपूत पहले वेहारा (कहार) थे। युद्ध में घायल हुए राजा तिलकचंदको उन्होंने युद्धस्थलसे हटाया था। इसी उपकारके वदलेमें राजाने उन्हें राजपूत वना दिया (वही २६१)। इसी जिलेके डोमवार राजपूत गण पहले डोम थे (वही)। इसी प्रकार बहुतसे राजपूत जाट और गूजर लोग सीदियन या शक जातिके हैं (वही पृ० ४४७)।

साउथ इण्डियन इन्स्क्रिप्शनके तीसरे जिल्द (पृ० ११४-११७) में शिव ब्राह्मण नामक एक विशेष श्रेणीके ब्राह्मणोंका उल्लेख मिलता है (Ghurye P. 94)

क्रूकने लिखा है कि ओझा ब्राह्मण लोग भी पहले द्राविड़ वेगा जातिके थे (वही XXII)। भूमिहार और तगा ब्राह्मणोंका इतिहास भी ऐसा ही है (वही)। इन्होंने अपने ग्रन्थके चतुर्थखण्ड (पृ० ९३) में ओझा ब्राह्मणोंके सम्वन्धमें विस्तृत विवरण दिया है। तगा लोग कहते हैं कि वे लोग जनमेजयके सर्पयज्ञके लिये वंगालसे वुलाये हुए किसी ब्राह्मणकी सन्तान हैं। फिर यह भी किसी किसीका मत है कि ये ब्राह्मण और विवाहिता वेश्याके गर्भसे उत्पन्न हैं। ये लोग ब्राह्मणोचित समस्त आचारोंका पालन करते हैं। (crook, IV, P. 351—353)।

१—तपोधनोंको लोग जरा तिरस्कारके साथ 'भरड़ा' या भरटक कहते हैं। इनमें वहुत हाल तक विधवा-विवाह प्रचलित था पर अब सामाजिक प्रतिष्ठाके लोभसे इन्होंने यह प्रथा बन्द कर दी है।

२—इनके विषयमें प्रसिद्ध है कि श्रीराम जब लंका जीतकर घरकी ओर लौट रहे थे तब बांशदाराज्य के पतउवाड़ नामक स्थानमें यज्ञ करना चाहा। वहां ब्राह्मणों की जरूरत हुई। उन्होंने यहांके १८००० पहाड़ी लोगोंको जनेऊ देकर वनाया। खूब सम्भव नये ब्राह्मणोंने वहांके पुराने ब्राह्मणोंसे द्वेष के कारण ऐसी कहानियां गढ़ ली हैं। नवसारीके अन्तर्गत अनवाला ग्रामके

बड़ौदा वाले सेन्सस (१९३२) से जान पड़ता है कि नागर लोगोंके विषयमें कहा जाता है कि वे नागवंशीय हैं। किसी किसी मतसे शिवके विवाहके लिये और किसी किसीके मतसे शिवके यज्ञके लिये नागर ब्राह्मणोंका उद्भव हुअ था (पृ० ४३४)।

पञ्जावमें देखा जाता है कि वहुतसे ब्राह्मण वंश धीरे धीरे क्षत्रियत्वको प्राप्त हुए हैं। कांगड़ा, कोटल, वहावल और जब्वालके राजपूत पहले ब्राह्मण थे। जब्वालके पुरोहित उन्हींके जाति भाई हैं (Glors, Vol. 1, P. 41)।

अष्ट वंशके ब्राह्मणोंमें कोई शूद्र कन्याके साथ विवाह करें और उसकी व्याह शादीका सम्वन्ध ५, ६ पुश्ततक लगातार ब्राह्मणके घर ही होता रहे, तो वह ब्राह्मण ही हो जाता है (वही पृ० ४१)। ठीक ऐसा ही विधान पूर्वकालीन शास्त्रोंमें भी देखा जाता है। लाहौलके ठाकुर भी यदि कानेतकी कन्यासे व्याह करते हैं और ५, ६ पुश्ततक इसी प्रकार ठाकुरोंमें ही शादी-व्याहका सम्बन्ध जारी रखते हैं, तो फिर विशुद्ध ठाकुर हो जाते हैं (वही पृ० ४२)। ब्राह्मण भी यदि कानेत-कन्यासे व्याह करें तो यही नियम है (वही)। ये लाहौलके ठाकुर असलमें मंगोलियन हैं। अव ये क्षत्रिय बन गये हैं। मगीय लोग भी ब्राह्मण हुए हैं। शाकद्वीपी ब्राह्मण विदेशी हैं, पहले वे लोग सूर्य मन्दिरके पुरोहित थे (वही पृ० ४५)। (Cens. India. VI, 549)के अनुसार ये पहले पारसिकोंके पुरोहित थे और ज्योतिःशास्त्रके अच्छे ज्ञाता थे। पञ्जावमें आभीर ब्राह्मण भी पाये जाते हैं (वही)। गूजर ब्राह्मणोंका आगमन भी, कहते हैं, एशिया और यूरोपकी सरहद परसे हुआ हैं (वही पृ० ४६)। मैत्रक लोग हूणोंके साथ इस देशमें आये थे (पृ० ४७)। अनेक ब्राह्मणोंके नामके साथ मित्र दत्त आदि उपाधियां देखी जाती है (वही पृ० ४७-४८)।

नाम पर इनका नाम अनवाला पड़ा। Censws Of India, Baroda Part.I 1932 P.431)।

शिवल्ली ब्राह्मण लोग अहिक्षेत्रसे तुलुदेशमें वास करते हैं। इनमें स्त्रियों की संख्या बहुत कम है इसलिये उन्होंने बांट आदि नीच जातिकी स्त्रियों से विवाह करना शुरू किया। फिर माधवाचार्यके समय नये बने हुए ब्राह्मणों-की संख्याके साथ इनकी संख्या भी बढ़ी। मत्ति ब्राह्मण पहले मोगार या कैवर्त्त थे बादमें एक संन्यासीकी कृपासे ब्राह्मग हुए (Thurston Vol. V,P. 64)। स्थानीय ग्रन्थों और पुराणोंसे मालूम होता है कि कदंब वंशीय मयूरवर्माके समय आन्ध्र ब्राह्मण लोग दक्षिणी कर्नाटकमें बस गये। यज्ञादि प्रयोजनके अनुरूप उनकी संख्या न होनेके कारण कितने ही अब्राह्मणोंको ब्राह्मण बना लिया गया। इन नये ब्राह्मणोंके गोत्रोंके नाम जंतुओं और वृक्षों के हैं। मयूरवर्माका समय ७५० ई० के आसपास है (वही० P. XLV, XLVI)। बहुतेरी नीच जातियां आचार विचारकी शुद्धिसे ब्राह्मण हो गई हैं। द्रविड़ जातियोंमें ऐसा प्रायः ही हुआ है। बहुत बार राजाके आदेशसे भी ऐसी बातें हुई हैं। मैसूरके मारक ब्राह्मण ऐसे ही हैं (वही P. LIII, LIV, 367)।

नम्बूद्री ब्राह्मणोंका आजकल दावा है कि वे सब ब्राह्मणोंसे अधिक पवित्र और धर्माचारी हैं। किन्तु बहुत लोगोंका मत है कि उनके पूर्वपुरुष मत्स्य-जीवी थे। विवाहके समय अब भी उन्हें आचारानुरोधसे मछली पकड़नी पड़ती है। शिवल्ली ब्राह्मणोंमें भी ऐसा ही आचार है (Vol V, P- 2o2, 203; Vol II.P.330)। उड़ीसाके ब्राह्मण द्रविड़ ब्राह्मणोंको पतित समझते हैं। वे और नीचतर जातियोंके हाथका जल तो ग्रहण कर सकते हैं पर द्रविड़ ब्राह्मणोंके हाथका नहीं (वही Vol I, P. 388)। इस प्रकार कितने ही कैवर्त तो ब्राह्मण हो गये पर मुत्राच कैवर्तवाण क्षत्रियसे कैवर्त्त हो गये! लोभमें पड़ कर ये एक बार मछली मारने गये और पतित हो गये। आज उनका जल भी नहीं चलता (वही, Vol,V,P, 130)।

तुलु लोगोंके इतिहाससे जान पड़ता है कि परशुरामकी अहिक्षेत्रके ब्राह्मणोंसे नहीं बनी। इसलिये केरलमें ब्राह्मणकी आवश्यकताकी पूर्तिके लिये उन्होंने जालके सूत्रका जनेऊ देकर जालियोंको ब्राह्मण बनाया। वे इसीलिये ब्राह्मण हो गये। नागमाची ब्राह्मणोंका भी यही किस्सा है (Vol.1,373;Vol. II, 330)। भोद्री ब्राह्मणोंके पूर्व पुरुष भी नाई थे। भोद्री शब्दका अर्थ ही नाई होता है (वही० पृ० ३८८)। दक्षिणके आराध्य ब्राह्मण अपनेमें ही विवाहादि करते हैं। आवश्यकता होनेपर ये उत्तरी सरकार जिलेके नियोगियों-की कन्या ग्रहण करते हैं। इस परसे जान पड़ता है कि ये भी कभी नियोगी ही थे (पृ० ५३)। यह इस प्रसंगमें उल्लेख योग्य है कि धकड़ो ब्राह्मण शूद्रकन्यासे व्याह करनेके कारण ही पतित हो गये हैं (वही Vol II. I66)। आजकल ये ब्राह्मण भद्रकाली मन्दिरके पुजारी हैं। मद्यपान करनेसे वे पतित हुए हैं (पृ० ३)। उन्नी और तम्बल भी देवल होनेके कारण नीच समझे जाते हैं। तंबल लोग गोदावरी और कृष्णा जिलोंमें तो ब्राह्मण ही कहलाते हैं पर तिलंगानेमें शूद्रकी तरह अवज्ञात होते हैं (पृ० ५)। कम्मालन लोग अपनेको विश्वकर्मा ब्राह्मण कहते हैं। ये लोग वेरीचेट्टी स्त्रीके गर्भसे ब्राह्मणके औरस जात हैं (III, 113)। क्षत्रिय लोग प्राचीन कालमें एक प्रकारके शिल्प कार्य और शिल्पियोंको नीच समझते थे (P. 113). Castes and Tribes of Mysore ग्रन्थमें इनकी वात दी हुई है।

दक्षिण भारतके क्षत्रिय खूब सुसंस्कृत और पंडित होते हैं। इनका विवा-हादि सम्बन्ध नंबूद्री ब्राह्मणसे होता है (वही० IV. 84-85)।

भारतवर्षके अनेक प्रदेशोंमें कृषक श्रेणीके ब्राह्मण हैं, जिनके विषयमें अन्यान्य ब्राह्मणोंका ख्याल है कि वे पहले किसान थे, बादमें ब्राह्मण हो गये। गुजरातके भाटेला, महाराष्ट्रके सेनवी, करनाटकके हैगा, उड़ीसाके महास्थान

या मस्तान ब्राह्मण ऐसे ही हैं (Wilson, I, 52)। उड़ीसाके काम ब्राह्मण भी इसी तरहके हैं (Cens. Ind. VI. 559)। बिहार और युक्त प्रान्तके भुंइहार या भूमिहार ब्राह्मणोंके सम्बन्धमें प्रसिद्ध है कि भूमि-कर्षणके कारण ही उनका स्थान नीचे हो गया। क्रुकका अनुमान है कि ये लोग पहले गौड़ ब्राह्मण थे (Crook, IV. P. 353 and, I, XXII)।

कोकण और मालाबारके ब्राह्मणोंकी आंखें कभी कभी कोमल नील और धूसर रंगकी पाई जाती हैं, जो भारतवर्षकी और किसी जातिमें तो नहीं पाई जाती, सिर्फ सीरियन ईसाइयोंमें देखी जाती हैं। इस साम्यको देखकर तरह तरहके अनुमान किये गयेहैं और किये जा सकते हैं।
(Cens. Ind. Vol. I,491)।

अब भी भारतके नाना प्रदेशकी उच्चतर जातियोंके चेहरोंसे ब्राह्मणोंके चेहरे क्या भिन्न पाये जाते हैं?

सारस्वत ब्राह्मणोंकी एक श्रेणी भोजक कहलाती है। ये लोग ज्वाला-मुखी-वासी हैं। उस प्रदेशके अन्यान्य ब्राह्मणोंका कहना है कि भोजक लोग पहले खेती करते थे। मन्दिरमें सेवकका कार्य करनेके कारण क्रमशः ब्राह्मण हो गये हैं (पृ० १३३)। मारवाड़ बीकानेर आदिमें 'डाकोट' नामक एक ब्राह्मणोंकी शाखा है। ब्राह्मण पिता और आभीर (अहीर) मातासे उनका जन्म है। ये लोग शनिकी पूजा करते हैं और नीच दान ग्रहण करते हैं (पृ० १७३)। इसी तरह गरुड़िया ब्राह्मण भी, जिनके विषयमें कहा जाता है कि ब्राह्मण पिता और चमारी मातासे इनकी उत्पत्ति है, शनिका दान ग्रहण करते हैं। ये राजपूतानेमें अजमेर और उसके आस-पास बसे हैं (पृ० १७४)। बंगालमें जिस प्रकार अग्रदानी ब्राह्मण हैं, करीब करीब उसी तरह राजपूतानेमें आचारज या आचार्य ब्राह्मण हैं। इनका वेद क्या है, और उत्पत्ति कैसे हुई,

इस बातको वे स्वयं भी नहीं जानते, और कोई तो जानता ही नहीं (पृ० १७५)। व्यासोक्त ब्राह्मण पहले शूद्र थे, फिर व्यासके वचनसे बादमें ब्राह्मण हुए (पृ० २७५)। एक समय अस्पृश्य मादिगा जाति और वैश्यकी जाति शायद एक ही थी (Thurs. III. 327)।

बंगालके 'युगी' या नाथ लोग पहले तो वेद स्मृति शासित हिन्दू ही नहीं थे। नाथ धर्म एक स्वतंत्र और पुराना धर्म है। मध्ययुगमें इनमेंके अधिकांश वाध्य होकर मुसल्मान हो गये थे। ये ही जुलाहे हुए। ये स्वयं अपना पौरोहित्य किया करते थे। बादमें उन लोगोंने, जो पुरोहितका काम करते थे, जनेऊ पहनना शुरू किया। इससे समाजमें एक बड़ा जबर्दस्त आन्दोलन हुआ। टिपरा जिलेके कृष्णचन्द्रलालने जनेऊ पहननेका आन्दोलन ज्यादा किया था। बंगालमें इस प्रकारकी कहावत भी मशहूर है कि 'जुगी के पास जनेऊ कब था, उन्हें तो कृष्णचन्द्र दालालने जनेऊ पहनाया।' अब इनमेंसे कितने ही बाहर जाकर पंडित, शर्मा और शर्मासे उपाध्याय होकर बाकायदा ब्राह्मण बन गये हैं। ऐसी कई घटनायें मैं व्यक्तिगतरूपसे जानता हूं।

तामिल और तंजोर प्रदेशमें 'पटन्नुकरन्' तांतियोंका स्थान है। ये गुजरातके आदिम अधिवासी हैं, इन्हें सौराष्ट्रक कहते हैं। ये लोग ब्राह्मणत्वका दावा करते हैं (Mysore, IV P.474)। ये लोग उपवीत धारण करते हैं और अय्या और आयंगर आदि पदवी धारण करते हैं (P. 475)। पटवेगर जाति भी इसी प्रकार गुजरातसे आई हुई वयनजीवी जाति है। कहते हैं, शिवकी जिह्वासे उनका जन्म है। मनुष्यकी लज्जा बचानेके लिये वस्त्र-वयनका आदेश पाकर ये लोग आजकल यही कार्य कर रहे हैं। उनके आदि पुरुषने ब्राह्मणसे उपवीत और वेद पाया था (पृ० ४७६-४७७)। शाले जातिकी भी यही कहानी है। ये भी वयनजीवी हैं। ये शास्त्री पदवीका व्यवहार भी करते हैं

और ब्राह्मणोंकी भांति इनके वेद, शाखा और गोत्र भी हैं (वही P.559-560)।

आसामकी 'करिया' जाति अपनेको अव 'सूत' कहती है (Cens. Ind. 1921, III, Assam I, 143)। यह पहले ही कहा जा चुका है कि काछारी लोग हिन्दू गुरुसे मन्त्र लेकर शरणिया हुए थे। फिर छोटे कोच फिर बड़े कोच और फिर क्षत्रिय—यही सिलसिला है (Cens.Ind.1931, III Part I, P. 221)। इस प्रकार इन प्रदेशोंमें आजकल क्षत्रियोंकी संख्या वढ़ रही है। कहते हैं 'आहोम' नामक मंगोलियन जाति और ब्राह्मणके संसर्गसे यहांके गणकों का जन्म है। ये गणक लोग ब्राह्मणत्वका दावा करते हैं (Cens. Ind. 1921, Assam, I, 144)।

सेंगर राजपूतोंका कहना है कि वे शृंगीं ऋषिकी सन्तान है। संभवतः ये पहले ब्राह्मण थे और राजपूतोंके साथ विवाहादि सम्बन्ध करके वादमें राजपूत हो गये हैं (Crook, IV 123-133)। अनन्तकृष्ण शास्त्रीका कहना है कि दक्षिण भारतके भाट शायद पहले ब्राह्मण ही थे वादमें क्षत्रियोंके साथ सम्वन्ध होनेसे पतित समझे गये (Myssor, II, 276)।

कहीं कहीं दक्षिण भारतमें दरजी भी क्षत्रियत्वका दावा करते हैं। कहते हैं, परशुरामके भयसे उन्होंने अपनी जाति और पेशा छिपा रखा था (वही III, 77)।

पंजावकी पुरानी कथाओंसे मालूम होता है कि डोमोंके आदि पुरुष ब्राह्मण थे। सवके कल्याणार्थ मृत गाय हटाने जाकर वे जाति दे वैठे (Crook, II.315)। ऐसी ही एक और मनोरंजक कहानी है। एकराजाकी दो लड़कियां थीं। एक का पुत्र वलिष्ठ था और दूसरेका दुर्वल। जो दुर्वल था वह स्वभावतः ही ईर्षा-परायण था। एक दिन एक हाथी मर गया था। वलिष्ठ पुत्रने लोक कल्याणकी भावनासे मृत हस्तीको उठाकर अन्यत्र फेंक दिया। दुर्वल पुत्रको मौका मिला और उसने वलिष्ठ पुत्रके विरुद्ध इस अप-कर्मके कारण अभियोग शुरु किया

और समाजने भी बलिष्ठ भाईको पतित बनाया। उसीके वंशज चमार हैं, जो अब मृत पशुको हटानेका काम करते हैं (वही I,P. 22)।

'ढेड़' लोग भी गुजरातकी अस्पृश्य जातिके हैं। इनका भी कहना है कि ये थे तो क्षत्रिय ही, किन्तु बादमें परशुरामके भयसे अपनी जाति छिपा दी थी (Cens. Bar. XIX Part I, 479)। इनका चेहरा सुन्दर होता है और गोत्रादि भी ठीक राजपूतों ही जैसा होता है।

कृषि कार्यके कारण पंजाबके अनेक ब्राह्मणोंको तगा लोगोंकी तरह पतित होना पड़ा है (Punjab Casets P. 6)। पहाड़की थात्री जाति उस दिन भी ब्राह्मण थी किन्तु शिल्प-जीवी होनेके कारण उसका पद गिर गया (वही)। दिल्ली प्रदेशके धारूकरागण अच्छे ब्राह्मण थे, समाजमें विधवा-विवाह स्वीकार करनेके कारण ही उनका पतन हुआ (वही)। उस प्रदेशमें वृत्तिवश एक ही श्रेणीमें कोई कावेथ या कायस्थ है, कोई बनिया और कृषि-जीवी होनेके कारण कोई राजपूत है (वही पृ० ७)। कभी कभी राजा लोगोंने गिर्थ आदि हीन जातियों को प्रसन्न होकर क्षत्रिय बना दिया है (वही)। पञ्जाबके पहाड़ी प्रदेशोंके अनेक राजपूत परिवार पहले ब्राह्मण थे। उन प्रदेशोंमें जाति अबभी बहुत लचीली चीज है। देश-काल पात्रके अनुसार बदलती रहती है (वही)। दिल्लीके चौहान अच्छे राजपूत हैं पर विधवा-विवाहकी स्वीकृतिके कारण पतित समझे जाने लगे हैं (वही)। जो स्त्रियोंको परदेमें रख सकते हैं वे राजपूत हो जाते हैं और जो नहीं रख सकते वे जाट हो जाते हैं (पृ० ७-८)। एक दल राजपूत साग-सब्जीके उत्पन्न करनेके कारण होशियारपुरमें अति नीच अराइन जातिके हो गये हैं (वही पृ० ८)। रेवाड़ीके अहीर विधवा-विवाहका त्याग करके परदा प्रथा स्वीकार करके और अन्य अहीरोंसे सम्बन्ध त्याग करके एक स्वतन्त्र उच्चतर श्रेणीमें बदल गये हैं (वही)। धीरे धीरे ये राजपूत हो जायंगे।

राजपूतानेमें एक तरहके हुसेनी ब्राह्मण हैं, जो आधा हिन्दू आधा मुसल्मान जैसी अनेक जातियोंके गुरु हैं। अजमेरके मैनुद्दीन चिश्तीके समाधिस्थान पर इनमेंसे अनेक दिखाई दे जाते हैं (पृ० २९, १३४)।

बहुत दिनोंकी बात नहीं है। राजा घोरिटनवर्जके समयमें मणिपुरमें एक संन्यासीने वहांवालोंमें वर्णाश्रम धर्मका प्रवर्तन किया। उस प्रदेशमें जो कुछ बंगाली ब्राह्मण पहुंचे उन्होंने स्थानीय जातियोंकी कन्याओंसे विवाह किया और उनसे जो सन्तति उत्पन्न हुई वह मणिपुरमें ब्राह्मण हैं (Cens, Ind. Vol VI,349)। आसामके काच्छारी और कोच जो निरन्तर हिन्दूधर्ममें शामिलहोते जा रहे हैं, यह बात पहले ही बताई गई है (E. R. E. II, 138-139)। मणिपुरके राजा और राजवंशीयगण क्षत्रिय हैं, बाकीमेंसे कुछ शूद्र हैं, कुछ ब्राह्मण। यह सब कुछ सिर्फ १५० वर्षोंके भीतर हुआ है(Cens. Ind. Vol. VI,221)। आजकल इन लोगोंमें वर्णाश्रम व्यवस्थाकी सारी जटिलता इतनी मात्रामें आ गई है कि भारतवर्षका कोई भी सनातनी सम्प्रदाय उसके सामने हतबुद्धि हो सकता है—सब सिर्फ १५० वर्षोंमें !

सन् १९३२ में डा० डी० आर० भाण्डारकरने Indian Antiquary (P.41-55, 61-72) में एक लेख लिख कर सिद्ध किया था कि बङ्गालके कायस्थ और गुजरातके नागर ब्राह्मण मूलतः एक ही हैं। नागरोंमें भी वही सब गोत्र और उपाधि है, जैसे दत्त, घोष, नाग, मित्र इत्यादि। भूति, दाम, दास, देव, पाल, पालित, सेन, सोम, वसु आदि उपाधि भी उनमें हैं (पृ० ४३)। सिल-हटके विधानपुरमें एक ताम्रशासन पाया गया है, जिससे इस बातकी और भी पुष्टि हुई है (पृ० ४३)। प्राचीन ताम्रशासनमें ब्राह्मणोंकी पदवीमें भी भूति, चन्द्र, दास, दाम, दत्त, देव, घोष, मित्र, नन्दी, सोम आदि उपाधियां हैं। उड़ीसामें कटकके नेउलपुरमें प्राप्त ताम्रशासनमें भी भूति, चन्द्र, देव, दत्त, घोष,

कर, कुण्ड,नाग, रक्षित, शर्मन्, वर्धन आदि उपाधियां हैं। यह ताम्रशासन सन् ७९५ ई० के आस पासका है। सेन राजागण भी ब्राह्मण वंशमें उत्पन्न होकर क्षत्रिय वृत्ति भोगी हुए थे, इसीलिये माधाई नगरके ताम्रशासनमें लक्ष्मण सेनने अपनेको 'परम ब्रह्म-क्षत्रिय' कहा है (पृ० ५२)।

सिलहटमें सर्वत्र 'दाश' लोगोंकी वस्ती है। इनका जल नहीं चलता था, पर अब हबीगंजके सिवा अन्यत्र इनका जल चलता है। पर आश्चर्य यह है कि इनके पुरोहित ब्राह्मणोंका जल नहीं चलता। कहते हैं, किसी राजाने मालीके गलेमें जनेऊ डालकर इन्हें ब्राह्मण बनाया था। इसी ब्राह्मण वंशके लोग दाशोंके पुरोहित हैं। इसी तरह कैवर्तोंका जल चलता है पर उनके ब्राह्मणोंका नहीं। श्रीलालमोहन विद्यानिधिने भी यह बात लिखी है (सम्वन्ध निर्णय पृ० १९२)।

देवल ब्राह्मण अनेक स्थानोंपर वृत्तिके कारण पतित माने गये हैं। काशीके गंगापुत्रगण यद्यपि तीर्थ गुरु (पण्डा) हैं तथापि अन्य ब्राह्मण उनको नहीं स्वीकार करना चाहते। गयावाल ब्राह्मणोंकी भी यही दशा है। बहुत लोगोंका मत है कि ये अनार्योंके ब्राह्मण थे (E. R. E. III, 233)। फिर भी सभी हिन्दू, यहां तक कि ब्राह्मण भी इनकी चरणपूजा करते हैं। द्वारकाके तीर्थ-गुरु गुगली या गोकुली ब्राह्मण भी इसी प्रकार तीर्थ गुरु होकर भी हीन माने जाते हैं (What castes are II.101)। मथुराके चौबे लोगोंके आचार व्यवहार और विवाहादि सम्वन्धमें कई लोगोंने सन्देह किया है कि वह आर्योचित नहीं है।

वंगालके आचार्य या गणक ब्राह्मण भी हीन समझे जाते हैं। अन्यान्य प्रदेशोंमें शाकद्वीपियोंकी भी यही दसा है। वंगालके कई ब्राह्मणगण भी निम्न वर्णके लोगोंकी यजमानीके कारण हीन समझे गये हैं। अग्रदानी लोग श्राद्धमें पहले (अग्र) दान लेनेके कारण पतित हुए हैं (वही, २१३)। भाट ब्राह्मणों का स्थान समाजमें अति हीन है। किन्तु राजपूतोंमें, चरणोंका खूब सम्मान

है। पर ये लोग ब्राह्मण नहीं हैं। किसी किसी शाखाके राजपूतों और चारणों-में विवाहादि सम्बन्ध चलता है (वही० पृ० १८१)। जान पड़ता है कि सिलहटके भाट ऐसे ही हैं; अपने देशमें वे क्षत्रिय कहलाते हैं।

जैसा कि पहले ही कहा गया है राजा वल्लालसेनने सुवर्णवणिकोंको पतित किया था। उन्होंने दंभके साथ कहा था यदि दांभिक सुवर्ण वणिकोंको शूद्र न बना दूं,तो मुझे गोघात और ब्रह्मघातका पाप हो—यदि दांभिकान् सुवर्णवणिजः शूद्रत्वे न पातयिष्यामि··· गो ब्राह्मण घातेन यानि पातकानि तानि मे भविष्यन्ति (वल्लालचरित, २३ अध्याय)। इन्होंने ही कैवर्त, मालाकार, कुम्भकार, और लुहार (कामार) जातिका जल चलवाया था।

नम्बूद्री ब्राह्मणोंकी आचार निष्ठा और नायर कन्याओंके साथ 'सम्बन्धम्' की चर्चा पहले हो चुकी है। ये ही आचारनिष्ठ ब्राह्मण तो क्षत्रियोंके हाथका खाते हैं पर नायर स्त्रियां नहीं खातीं (What castes are P. 76)।

तुलुर या तुलव ब्राह्मण भी नम्बूद्रियोंके समान ही सम्मानित हैं। वे अपने को ही उस प्रदेशका मालिक समझते हैं। उस देशकी क्षत्रिय राज-कन्याओंके साथ सहवास करनेका एक मात्र अधिकार उन्हींको है। कुम्ली राजके कन्याओं-के साथ तुलव ब्राह्मणके सहवाससे जो पुत्र उत्पन्न होता है, वही राज्यका अधि-कारी होता है। इच्छा हो तो राजकन्यायें ब्राह्मण बदल भी सकती हैं (वही P. 70)।

कहीं कहीं ब्राह्मणोंमें भी विधवा-विवाह प्रचलित है। औदीच्य ब्राह्मणोंमें श्रीमाली लोग विधवाओंका विवाह करते हैं (पृ० ९८)। वगड़ औदीच्य भी विधवा-विवाह करते हैं, इसीलिये वे हीन माने जाते हैं। किन्तु इनके साथ हल-वद् औदिच्योंका सम्बन्ध होता है। हलवद् लोगोंके साथ कुलीन सिद्धपुरियों का सम्बन्ध होता है (Cens.Bar. 432)। गुजरात और काठियावाड़के सिंधव

सारस्वतोंमें विधवा-विवाह प्रचलित है। ये यजुर्वेदी ब्राह्मण हैं (वही १०५)।

क्रुक कहते हैं कि राजपूत और ब्राह्मणोंमें बहुतेरी आर्यपूर्व जातियोंका मिश्रण है (P.2o1)। मध्य भारतमें बहुतसी गोंड जातियां धीरे धीरे राजपूत बन गई हैं। अवधमें बहुत थोड़े दिन पहले बहुतसी जातियां राजपूत बन गई हैं (वही)। बैगा नामक भूत भाड़ने वाले ओझा पहले अनार्य थे। बादमें ब्राह्मण होगये हैं (वही)।

गुर्खोंकी खस जातिमें ऊंची जातियां नीची जातिकी कन्यासे विवाह कर सकती हैं। इनसे उत्पन्न सन्तान एक सीढ़ी नीचेकी जाति होती है (Camp. 318)।

पंजाबमें किन्हीं किन्हीं ब्राह्मण-क्षत्रियोंमें विधवा-विवाह प्रचलित है (वही ४०३)। लोहाना लोगोंमें विधवा-विवाह प्रचलित है, ये लोग जनेऊ धारण करते हैं। इनके पुरोहित सारस्वत ब्राह्मण उनके साथ खाते हैं। भाटिया लोगोंकी भी बहुत कुछ ऐसी ही रीति है (Cens. Par. 449)। गुजरातके सारस्वतोंमें भी विधवा-विवाह चलता है (Crook,IV. 290)।

जातिभेदकी प्रचण्डता और प्रसार

क्रमशः इस देशमें जातिभेदने ऐसा घर बनाया कि लोगोंने समझना शुरू किया कि देवताओंकी भी जाति होती है। महाभारतमें लिखा है कि यद्यपि इन्द्र भी ब्रह्माके ही पुत्र हैं, तथापि कर्मके गुणसे वे क्षत्रिय हुए (शान्ति० २२। ११)। आज इस मज्जाव्यापी प्रथाको उखाड़ फेंकनेका सामर्थ्य किसीमें नहीं है। कोई भी इसके ऊपर हाथ उठाते समय दुस्साहसका ही कार्य करता है।

राजा राममोहन रायने जब आधुनिक युगके प्रत्यूष कालमें समाजमें सुधार लाना चाहा था, तो उन्होंने जातिभेद हटा कर एक अलग सम्प्रदाय नहीं खड़ा करना चाहा था। उनके सुयोग्य सहकारी महर्षि देवेन्द्रनाथकी भी इच्छा ऐसी नहीं थी। ये लोग वर्ण और जातियोंमें असमान व्यवहार और एक का दूसरे पर अत्याचार पसंद नहीं करते थे। बादमें जब केशवचन्द्र सेन आदिने एक जाति-वर्ण-हीन नवीन सम्प्रदाय स्थापित करनेकी सोची, तभी देशके साथ एक जबर्दस्त मुठभेड़ हुई। ऐसे ही समयमें रामकृष्ण परमहंसकी उदार वाणी सुनाई दी। लोगोंका उधर झुकाव हुआ। स्वामी विवेकानन्द यद्यपि धर्मसाधनामें परमहंस देवके शिष्य थे तथापि वे छुआछूत और जातिभेदके विरोधी थे। लोगोंने उनके इस विरोधको छोड़ कर ही आरामसे उनके मतको स्वीकार किया। पश्चिमी भारतमें स्वामी दयानन्दने गुण कर्मके अनुसार वर्णव्यवस्था स्थापित करनी चाही, पर वह आन्दोलन भी असफल ही रहा। आज हालत यह है कि जाति-वर्णकी कल्पनाको छोड़नेका अर्थ ही समझा जाता है हिंदूधर्मको छोड़ना। इच्छासे हो या अनिच्छा से, भारतीय आर्यधर्म आज जातिभेदसे इस प्रकार जकड़ गया है कि उससे उसे मुक्त करनेकी बात कोई सोच ही नही पाता।

बौद्ध लोग जातिभेदकी प्रथाके विरुद्ध सैकड़ों वर्षतक लड़कर अन्त में हार माननेको मज़बूर हुए। जैनोंने भी इस प्रथाके साथ धीरे धीरे समझौता कर लिया और समझौतेके बल पर ही अब तक टिके रहे। उनका श्वेताम्बर-दिगम्बर बंधन जातिभेदसे भी दृढ़ है (Gloss.I. 105)। जैनोंमें भी ब्राह्मणादि जातियां हैं और उनमें नौ या सात वर्षकी उमरमें ग्रहपूजा, शान्तिस्वस्त्ययन आदिके साथ बालकोंका उपनयन भी होता है (Myssore.III. 421)। उनके विवाहमें ब्राह्मण पुरोहित होम आदि करते हैं (वही ४०९)। वस्तुतः

ब्राह्मण धर्मके विरुद्ध लड़ने से ही यद्यपि उनका आरंभ हुआ था, पर वे अन्त तक चलकर उससे समझौता करके ही अपनी हस्ती बचा सके (वही ४६३)।

भागवत धर्म भक्ति और प्रेमका धर्म है। इसमें जातिभेद का स्थान न होना ही स्वाभाविक था। पर भागवत गण अपने आदर्शके रूपमें भले ही जातपांतको स्थान न दें, समाजमें उसे माननेको मज़बूर हुए हैं। वे लोग भीतर ही भीतर मानते हैं कि "विप्राद्विषड्गुणयुताम्—चण्डालोऽपि द्विजश्रेष्ठ हरिभक्तिपरायणः" किन्तु यह केवल धर्मसाधनाके क्षेत्रमें। समाजसे यह बात वे नहीं चला सके। महाप्रभु चैतन्यदेव प्रेम भक्तिके अधिकारमें यद्यपि जाति और सम्प्रदायका भेद नहीं मानते तथापि खान पान और सामाजिक व्यवहारमें वे इसे अस्वीकार नहीं कर सके थे।

अद्वैताचार्य महाप्रभु चैतन्यदेवके दाहिने हाथ थे। ये श्रेष्ठ वारेन्द्र श्रेणीके ब्राह्मण थे। समाज त्याग करनेका उत्साह उनमें नहीं था। इस विषयमें नित्यानन्द ज्यादा साहसी थे। जातपांत हटा देनेके प्रस्तावपर नित्यानन्द तो राजी थे पर अद्वैताचार्य राजी नहीं थे। अकेले नित्यानन्द वैष्णव समाजसे जातपांत को उखाड़नेमें समर्थ नहीं थे। अद्वैताचार्य इस सामाजिक व्यवहारके सिवा अन्यत्र बहुत उदार थे। इसीलिये वे यवन हरिदासको श्राद्धपात्र दे सके थे। उन दिनों यह मामूली बात नहीं थी। सुना जाता है कि श्री नित्यानन्दने भक्त उद्धारणदत्तके हाथका खानेमें जूंठेका भी विचार नहीं किया था। इसीलिये चैतन्यचरितामृत ग्रंथमें लिखा है कि नित्यनन्द अवधूत थे, ऐसा करनेसे उनका कुछ बनता बिगड़ता नहीं (नान्यदोषेण मस्करी)। बादमें यद्यपि इन्होंने विवाह किया था, पर सबने इन बातोंको उनके अवधूतपनका कार्य ही मान लिया है। महाप्रभु चैतन्यदेवने एक बहुत बड़ा कार्य किया है, शूद्रादि हीन जातियोंको ब्राह्मणादि को भी मंत्र-शिष्य बनानेका अधिकार देकर। यही कारण है कि

आज भी वैष्णव समाजमें अनेकानेक अब्राह्मण गुरुके निकट ब्राह्मण शिष्योंको मस्तक नत करते देखा जाता है।

कहा गया है कि महाराष्ट्रके नामदेव और तुकाराम आदि शूद्र थे। निवृत्तिनाथ, ज्ञानेश्वर, सोपान और मुक्ताबाई यद्यपि ब्राह्मणोंकी सन्तान हैं तथापि उनके पिताने सन्यास आश्रम त्यागकर गृहस्थाश्रममें प्रवेश किया था। इसी लिये उनकी सन्तान शास्त्रीय मतसे पतित हुई। ये लोगभी शूद्र भक्तोंके प्रति भक्ति रखते थे। इन्होंने श्राद्धके अवसरपर ब्राह्मणोंसे पहले अन्त्यजोंको भोजन कराया था। महाराष्ट्रमें शूद्र भक्तोंके अनेक ब्राह्मण भक्त हैं (Ghurye P. 94.95)।

कबीर, दादू आदि भक्तोंने जातिभेदपर कठोर आक्रमण किया है। न करनेसे लोग इन्हींका नेतृत्व क्यों स्वीकार करते? किन्तु आजकल उनके ही सम्प्रदायमें जातिभेद बदस्तूर विद्यमान है। आचार विरोधी कबीरके ही सम्प्रदायके ऊदापंथी बादमें चलकर ऐसे कठोर आचारपरायण हुए हैं कि भारतवर्षके नम्बूद्री ब्राह्मण भी शायद ही ऐसे हों। इस विषयमें सिक्ख लोग ज्यादा सफल कहे जायँगे। गुरु गोविन्द सिंहके खालसा धर्ममें जाति-धर्म-निर्विशेष सभी सादर स्वीकृत हुए हैं। उनमें कलवार यानी मद्य-विक्रेता कलाल जाति भी क्रमशः अभिजात हो सकी है। तथापि इनमें भी मेहतर आदि श्रेणियां आज भी विच्छिन्न हैं। इन्हें 'मजहबी' कहते हैं। मोची और जुलाहे सिक्ख रामदासी कहलाते हैं। ये भी साधारण सिक्ख समाजसे अलग हैं। सिक्खोंमें केशधारी और सहजधारी ये दो भाग हैं। फिर निरञ्जनी, निरङ्कारी, गंगूशाही, मीना, सेवापंथी, कूकापंथी, निर्मला, उदासी आदि श्रेणियां जातिभेदसे कम नहीं हैं।

गोस्वामी तुलसीदास परम भागवत थे। उन्होंने स्वयं लिखा है कि लड़कपनमें दारुण दारिद्र्यवश वे सब जातिके घरका टुकड़ा मांगकर खानेको मजबूर

हुए थे। दर दर भटककर, उन्होंने दिन काटा था। यद्यपि वे स्वयं ब्राह्मण थे पर उनके परम आराध्य क्षत्रिय अवतार श्रीरामचन्द्र थे। यद्यपि उन्होंने स्वयं संसार त्याग कर विरक्त जीवन यापन किया है, फिर भी वर्णभेदको वे अस्वीकार नहीं कर सके।

बारहवीं शताब्दीमें द्रविड़ देशमें भक्त बसवका जन्म हुआ था। शिवभक्ति-प्रधान एक नया सम्प्रयाय उन्होंने खड़ा किया। यही वीर शैव या लिंगायत सम्प्रदाय है। बसवने जातिभेद पर कठोर आक्रमण किया है। किन्तु बादमें उन्हींके शिष्य-प्रशिष्य जंगम नाम ग्रहण करके ब्राह्मणोंकी भांति हो उठे। उनमें आराध्य नामसे प्रसिद्ध ब्राह्मणोंकी एक विशेष श्रेणी भी है। धीरे धीरे इनमें भी शुद्ध-मार्ग-मिश्र-अण्डेवे ये चार वर्ग हो गये। वही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र नया नाम लेकर यहां अवतीर्ण हुए। इनमें अन्त्यज श्रेणी भी है। इस प्रकार देखा जाता है कि इस देशमें जो भी सुधारक जातिभेदको हटानेकी कोशिश करते हैं, वे अगर कुछ कालके लिये सफल हो भी जाते हैं, तो बादमें उन्हीं का सम्प्रदाय असंख्य जातियोंमें एक जाति बन बैठता है। ऐसे ही बम्बई प्रान्त में बिष्णोई, साध, योगी, गोसाइं आदि जातियां बन गई हैं (Ghurye, P. 29, 95,)।

जिस प्रकार विशेष विशेष धार्मिक सम्प्रदायोंके कारण नई नई जातियां बनी हैं, उसी प्रकार विशेष विशेष अवस्थाके कारण भी नवीन जातियां बनी हैं। उड़ीसामें अकालके समय सरकारी सत्रमें खानेसे एक श्रेणीसे लोग हीन समझ लिये गये और उनका नाम छत्रखिया या (छत्तरमें खानेवाले) पड़ गया। यह एक अलग ही जाति बन गई। सीलोनमें बागोंमें कुलीका काम करनेवालोंकी एक अलग जाति 'चल्लि' नामसे बन गई है (Sacred. Budh. II. 15)। उड़ीसाकी सागर पेशा भी एक नई जाति है।

मुसल्मान धर्ममें किसी प्रकारका जातिभेदका नहीं होना ही स्वभाविक है। पर इनमें भी सेख, सैयद, मुग़ल, पठान भेद हैं। यद्यपि यह भेद धर्मके क्षेत्रमें नहीं है तथापि इसका सामाजिक मूल्य है। इसीलिये Cens, Bar. में मुसलमानी जातियां अलग गिनाई हुई हैं। इन जातियोंमें 'रोटी बेटी' का विचार चलता है (Myssore, IV. 290)। महदवी लोग अन्य सम्प्रदायोंसे विवाह-सम्बन्ध नहीं करते। बाहरसे कन्या यदि ले आते हैं तो पहले उसे अपने संप्रदायकी दीक्षा दे लेते हैं तब ग्रहण करते हैं। ये औरोंको अपनी कन्याये नहीं देते (P. 342)। बोहरा लोग अपनेको इतना श्रेष्ठ मानते हैं कि उनकी मस्जिदमें अन्य श्रेणीके मुसल्मान यदि नमाज़ पढ़ें तो वे स्थानको धोकर शुद्ध करते हैं (पृ० ३४६)।

यहांके अधिकांश मुसल्मान हिन्दुओंसे ही हुए हैं। अनेक समय चुटिया कटाने और कल्मा पढ़नेके सिवा बाकी सब हिन्दू आचार ज्यों-के-त्यों रह गये हैं। मुसल्मान राजपूत, गूजर और जाटोंमें विवाहादि सम्बन्धी विधि-निषेध हू-ब-हू वही हैं जो इन नामोंकी हिन्दू जातियोंमें हैं (Punj. 13-14 और Crook I, P. XVIII)। दक्षिण भारतके लब्बई मुसलमान निम्न श्रेणीके हिन्दुओंमेंसे बने हैं। उनकी विवाह प्रथा ठीक वैसी ही है जैसी इस श्रेणीके हिन्दुओंकी (Myssore. IV, 391)। सिंध और सीमाप्रान्तमें देखा जाता है कि पीर मानों ब्राह्मण हैं, पठान और विलोक मानों क्षत्रिय हैं और जाट वैश्य हैं। इसके सिवा कारीगरोंकी श्रेणी शूद्र जैसी है और अन्त्यज जैसी श्रेणी भी है (Punj. I5)।

मुसल्मान समाजमें भी जुलाहे, धुनिया, कुल्ल, हजाम, दरजी, कुजड़ा, आदि सामाजिक स्तर हैं। निकारी और महिमाल वगैरह इस समाजमें भी प्रायः अन्त्यजोंके समान हैं। मोमिनोंका दावा है कि वे मुसलमान समाजमें आधे से अधिक

हैं, फिर भी उन्हें कोई अधिकार प्राप्त नहीं है। हिन्दुओंकी तरह ही मुसलमानोंमें भी वर्ण मुसलमान बहुत कम हैं फिर भी वे ही अधिकांश क्षेत्रोंमें जननेता हैं।

तथापि इस समाजमें सुविधा यह है कि पैसा होते ही निचली श्रेणीका आदमी उपरले स्तरपर आ जाता है। फारसी पद्य है—

पेशाइन कस्साब बूदेम बाद जान गस्तम शेख।
गल्ला चूं गे जान् शवद् इम्साल सैय्यद मेशवेम्॥

अर्थात् मैं पहले साल कसाई था, दूसरे साल शेख हुआ, यदि इस साल गल्लेका दाम चढ़ा तो मैं सैय्यद हो जाऊंगा (Crook, IV, 315)। इसी बातका समर्थन Punj पृ० १० में भी है। Cens. Ind, 1921, (Vol. I Part I, 227) में कहा गया है कि इस देशके अधिकांश मुसलमान धर्मान्तरित हिन्दू हैं उनमें जातिभेद जैसा बंधन बदस्तूर रह गया है। उनमें भी पठान, मुगल, सैयद, सेख आदि भाग हैं। बोहरा, खोजा, कुल्लू, मेमना, जुलाहा आदि श्रेणियोंमें जातिगत बंधन नितान्त कम नहीं हैं।

हिन्दुओंकी छुआछूत भी उनमें घुसी है। वे भी मुसलमानोंके सिवा और किसीके हाथका छुआ जल नहीं ग्रहण करते। वीरभूमि जिलेमें मैंने देखा है (शायद अन्यत्र भी हो) कि मुसलमान लोग हिन्दुओंके घर 'पक्की' रसोई (अर्थात पूड़ी आदि) के सिवा और कुछ नहीं खाते। दही और चूड़ा तो खा लेंगे पर भात-दाल नहीं खायेंगे। यह घृत-पक्कका विधान विशुद्ध हिन्दू स्मृतिका विधान है—'आज्यपक्वं, पयःपक्वं, पक्वं केवलवह्निना।' देखा जाता है कि इस विधानने मुसलमानोंको भी धर दबाया है। यह तो विश्वास नहीं होता कि कुरान या हदीसमें भी यह व्यवस्था ऐसीही पाई जाती होगी। इसलिये यही मान लेना सहज है कि इस व्यापारमें काशीकी व्यवस्था मक्का-मदीनाकी

व्यवस्था पर हावी है। ये आज भी नहीं समझ सके कि हिन्दू व्यवस्थासे लड़ाई करने जाकर वे स्वयं उसीके चक्करमें पड़ गये।

मुस्लिम जाति व्यवस्थाके सम्बन्ध में Cens. Ind. (VI, 439-451) में बहुत सी जानने योग्य बातें संगृहीत हैं।

पुराने जमानेमें जो ईसाई इस देशमें आकर दक्षिण भारतमें बस गये थे उनमें भी जातिभेद है (Mysore I, P. VI.) । उत्तर भारतके ईसाई समाजमें भी जातिभेद वर्तमान है। दक्षिण भारतमें तो इसने ईसाई समाजमें भी पूरा अधिकार जमा लिया है। वहांके बहुतसे गिर्जोंमें अन्त्यज श्रेणीके ईसाई प्रवेश नहीं कर सकते। वहांके रोमन कैथोलिक ईसाइयोंमें भी ब्राह्मणादि श्रेणी हैं। पोप पन्द्रहवें ग्रेगरीने यह व्यवस्था दी थी कि भारतीय चर्चोंमें जातिभेद माना जा सकता है (Ency. Brit. V, 468 और Ghurye, P. 164)। रोमन कैथोलिकोंमें हिन्दुओंकी ही भांति बाल विधवाका विवाह नहीं होता (Myssore III, 31) और बहुतसे हिन्दू आचार ज्यों के त्यों होते हैं (पृ० ४६)।

इस देशमें आकर अंग्रेज लोग भी प्राचीन आर्योंकी दशामें पड़ गये हैं। ये जातिभेद नहीं मानते फिर भी इस देशमें ऊँच-नीच भेद इतना प्रबल है कि दूसरेको घृणा किये बिना अपनी उच्चता प्रमाणित की ही नहीं जा सकती। ये लोग भी भारतीयोंको भिन्न जातिका समझते हैं। इनकी दृष्टिमें सभी भारतवासी शूद्र और अस्पृश्य हैं। जैसे प्राचीन आर्य अपने शूद्र भृत्योंका अन्न-जल ग्रहण कर लेते थे वैसे ही ये भी अपने भृत्य भारतीयोंका अन्न और सेवा ग्रहण कर लेते हैं; नहीं तो बाकी भारतीय इनके लिये अस्पृश्य ही हैं।

आजकलके बहुतसे तथाकथित शिक्षित और साम्यवादी भारतवासी प्राचीन जातिभेदको तो बहुत-कुछ मानते ही हैं, नये सिरेसे रुपये पैसे और नौक-

रियोंके कारण एक नई तरहकी जाति-प्रथा भी इन्होंने स्वीकार कर ली है। पहले एक एक जातिमें एक प्रकारकी समान व्यवहारिता या democracy थी। अब हाल यह है कि एक ही जातिमें आई०सी०एस० वालोंकी अलग जाति है, डिप्टी, मुन्सिफ़, इञ्जिनियर, डाक्टर, प्रोफेसर, टीचर, क्लर्क ये भिन्न भिन्न जातियां हैं। व्यवसायियोंमें भी अर्थानुसार मर्यादा भेद है। मुफस्सिलके शहरों और कस्बोंमेंप्रायः ही इन भिन्न-भिन्न श्रेणीके व्यक्तियोंके क्लब वगैरह एक साथ नहीं चल सकते। इसीलिये शिक्षाप्रसार होने पर भी इस देशका सामाजिक जीवन क्रमशः हीन होता जा रहा है।

यद्यपि रेल, होटल, रेष्टोरां आदिके कारण जातिभेदकी कट्टरता धीरे धीरे कम होती जा रही है तथापि इस विषयके संबंधमें तर्क करनेकी उग्रता अब भी पूरी मात्रामें वर्तमान है। बंगालमें एक मनोरंजक कहावत चल पड़ी है—

जाति मारलो तिन सेने
ष्टेसेने, विलसेने, केशवसेने।

अर्थात् तीन सेनोंने जाति मारी है—स्टेशन (अर्थात् रेलवे स्टेशन) विलसन (उन्नीसवीं शताब्दीमें कलकत्तेके एक विख्यात होटलके मालिक) और केशवसेन (अर्थात् सुप्रसिद्ध ब्राह्म समाजी नेता केशवचन्द्रसेन)। पर इतनी चोटें खाकर भी जातिभेद इस देशमें समूची ताक़त के साथ जी रहा है।

प्राचीन समाज : व्यवहार और उद्देश्य

समाज-व्यवस्थाके मूलमें साधारणतः एक ऊंचा आदर्श रहा करता है। भारतीय समाज-व्यवस्थाके मूलमें भी निश्चय ही एक महान् उद्देश्य था। शास्त्रकारोंने

स्त्रीत्वका एक अत्युच्च और महान् आदर्श स्थापित करना चाहा था, इस विषयमें भी कोई सन्देह नहीं है। इसीलिये महाभारतमें कहा गया है कि 'स्त्री मनुष्यका अर्द्धभाग है, स्त्री पतिकी श्रेष्ठ मित्र है, वह धर्म-अर्थ-काम इस त्रिवर्गका मूल है (आदि ७४।१)। संसारमें यदि स्त्री का सम्मान न हो तो संसार व्यर्थ है (अनु० ४६।५-६, उद्योग ३८।११)। जिस जगह स्त्रियोंके मनमें दुःख पहुंचता है वहां कल्याण नहीं (अनु० ४६।७) इत्यादि।

पतिव्रता और शीलवतीके माहात्म्यसे सारा हिंदूशास्त्र भरा है। किन्तु स्त्रीके प्रति पतिके कर्तव्यका भी कम उल्लेख नहीं है। महाभारतसे जान पड़ता है कि जब द्रौपदी थक जाती थीं तो उनके पति लोग उनका चरण भी दबा देते थे (वन १४४।२०)। स्त्रियां युद्धमें योग देती थीं (सभा १४।५१); सभा-समितियोंमें उनके लिये आसन निर्दिष्ट होते थे (आदि १३४।११) और हस्तिनापुरके कोषकी व्यवस्थाका भार द्रौपदी पर था (आदि १५९।११)। सिर्फ परिवारमें ही नहीं तपश्चर्यामें भी नारीका स्थान महत्वपूर्ण था। सत्यवती, गांधारी, कुन्ती, सत्यभामा आदि स्त्रियां वृद्धावस्थामें वानप्रस्थ व्रत अवलम्बन करके तपोनिरत हुई थीं (आदि १२२।१२; आश्रम १५।२; १७।२०; मुषल ७।१४)।

परन्तु यद्यपि शास्त्रकारोंका आदर्श बहुत ऊंचा था, पर नाना शास्त्रों और पुराणोंमें इस आदर्शके व्यवहार संबंधी जो कथाएं मिलती हैं वह सदा उत्तम ही नहीं होतीं। किसी समय आदर्श और व्यवहारमें निश्चय ही बड़ा व्यवधान पड़ गया होगा, नहीं तो पुराणादिमें ऐसी घटनायें झूठमूठ ही सन्निविष्ट न होतीं।

गीतामें भगवान्‌से अर्जुनने कहा है कि स्त्रियोंमें दोष आनेसे वर्णसंकर पैदा होते हैं जो सारे कुलको नरकमें ले जाते हैं (गीता १।४१-४२)। यह ठीक

है और बहुतसे लोगोंका विश्वास है कि वर्णशुद्धिकी रक्षाके लिये रोटी-बेटीका संयमन आवश्यक है और इसीलिये जातिभेद वर्णशुद्धिका पोषक है। परन्तु यह समझना कि केवल ऊंचा आदर्श रख देनेसे ही उस आदर्शका पालन हो जायगा, ठीक नहीं है। आदर्शकी मर्यादा नर-नारीके व्यक्तिगत चरित्र पर निर्भर करता है। पुराने ग्रन्थोंके देखनेसे पता चलता है कि वर्णशुद्धि सुरक्षित रखने के व्यवहारमें शायद कहीं छिद्र भी था।

वैसे तो वैदिक युगमें भी, उस समय चरित्रगत विशुद्धताकी रक्षाका भरपूर प्रयत्न किया गया था, फिर भी कुछ-कुछ नैतिक दुर्बलताका आभास मिलही जाता है। उन दिनोंके समाजमें दुर्नीति-परायण पुरुषों और स्त्रियोंका अभाव नहीं था। अनुमान किया गया है कि कभी-कभी भ्रातृहीना कन्याओंकी दुर्गति यहां तक बढ़ जाती थी कि उन्हें वेश्यावृत्ति करनी पड़ती थी (Vedic Index Vol. I, P.395) अथर्ववेदके एक सूक्त (१५।१।२) में 'पुंश्चली' शब्दका बारम्बार उल्लेख है। इस वेदमें (१४।१।३६) 'महानग्नी' या 'महानम्नी' शब्द का प्रयोग है। फिर बीसवें काण्डके कुन्ताप सूक्तमें इस शब्दका कई बार प्रयोग हुआ है। इसका अर्थ भी वेश्या ही है। वाजसनेयि-संहिता (३०।६) में कुमारी-पुत्र शब्द पाया जाता है, जिसका अर्थ महीधरने 'कानीन' अर्थात् अविवाहिताका पुत्र किया है। तैत्तिरीय संहिता (३।४।२।१) में भी यह शब्द है और अथर्ववेदमें तो लाक्षाके पिताको गाली देनेके लिये ही 'कानीन' शब्द का व्यवहार हुआ है (५।५।८)।

इसी प्रकार ऋग्वेदमें इसी अर्थमें (४।१९।९) 'अग्रवेय' शब्दका व्यवहार है। अग्र अर्थात् आविवाहिता कन्या। पर सायणने इस शब्दको किसी व्यक्ति विशेषका नाम कहा है। ऋग्वेदमें अन्यत्र (४।३०।१६) भी इस शब्दका प्रयोग है। दृष्टान्तके बहाने ऋग्वेदमें 'रहसू' शब्दका प्रयोग है जिसका अर्थ करते समय

सायणने कहा है कि रहसू वह स्त्री है जो अज्ञात स्थानमें गर्भपात करती है। वाजसनेयि संहिता (२३।३०) में आर्यकी उपपत्नी शूद्रा और शूद्रकी उपपत्नी आर्या (२३।३१) का भी उल्लेख है।

समाजमें इस प्रकारकी दुर्गति शायद इसलिये अधिक आ गई थी कि बहुत सी कन्याओंका विवाह नहीं हो पाता था और घरमें ही वे बूढ़ी हो जाती थीं। ऐसी कन्याओंको उन दिनों 'अमाजूर्' कहा करते थे। ऋग्वेदमें (२।१७।७) ऋषि गृत्समद कहते हैं—अमाजूरिव पित्रोः सचा सती। इसपर सायणाचार्य कहते हैं कि पति न पा सकनेके कारण जिस प्रकार अमाजूर् कन्या मां बापके पास रहकर जीर्ण हो जाती है। काण्व सोमारि ऋषि कहते हैं कि ऐसा हो कि हमें अमाजूरका दुर्भाग्य न भोगना पड़े (ऋग् ८।२१।१५)। कक्षीवान् ऋषिकी कन्या घोषा चर्मरोगाक्रान्त होकर अविवाहित भावसे ही पति गृहमें रहती थी, बादमें देवताके प्रसादसे अच्छी होकर पति लाभ करनेमें समर्थ हो सकी।

उन दिनों ऐसी बहुत सी स्त्रियां थीं जो चञ्चल-स्वभावा थीं। वे उत्सवादिमें भीड़ करती थीं, जहां गान, नृत्य, सुरा आदिके साथ नाना प्रकारकी उच्छृङ्खलता चलती थी। ऋग्वेद (१।१२४।८) के 'समनगा इव व्राः' इस मन्त्रसे जान पड़ता है कि स्त्रियाँ समन या उत्सवमें जाया करती थीं। इसी वेदमें अन्यत्र (४।५८।८) 'समनेव योषाः' से भी ऐसा ही अनुमान होता है। भरद्वाज-पुत्र पायु ऋषिने कहा है कि धनुकी दोनों कोटियां 'समनस्था' स्त्रियोंकी भांति निरन्तर उद्देश्य सिद्ध कर रही हैं (ऋक् ६।७५।४)।

इस 'समन' के विषयमें अथर्व वेदमें और भी स्पष्ट कहा गया है। वहां ऋषि कहते हैं, हे अग्नि, हमारे सौभाग्यसे कन्यार्थी पुरुष इस कन्याके पास आवें। वरोंके निकट यह कन्या रमणीया (पुष्ट) हो, समनोंमें यह कन्या

वल्गु, (रुचिरा, हृद्या, मधुरा) हो और पतिका सहवास पानेका सौभाग्य इसे हो (२।३६।१)। ऋग्वेदमें (१०।१६८।२) 'समनं न योषा' इसका अर्थ करते समय सायण कहते हैं कि " धृष्ट पुरुषके पास कामिनियोंकी भांति" (धृष्टं पुरुषं कामिन्य इव)।

ऐसा जान पड़ता है कि समाजके व्यवस्थापक उन दिनों इस प्रकारकी दुर्नीतिसे विचलित हुए थे। वे जानते थे कि जिसपर विश्वास न किया जाय वह भी विश्वासके अयोग्य ही हो जाता है। इसीलिये उन्होंने नाना भावसे नारीकी महिमा घोषित की। पर उससे उन्हें विशेष फल मिलता नहीं दिखा। समस्या बनी रही। फिर उन्होंने दूसरी नीति ग्रहण की। नारी-चरित्र के काले पहलू को उन्होंने वीभत्स और जुगुप्सा-व्यञ्जक भाषामें प्रकट किया। ऐसी बातें लिखनेमें उन्हें सुख नहीं मिला होगा, यह तो मानी हुई बात है। निश्चय ही ऐसा करते समय उनकी मानसिक वेदना अत्यन्त चढ़ाव पर रही होगी। तभी तो मनुने कहा था कि 'स्त्रियोंमें कुछ भी संयम नहीं होता, मोहित करके पुरुषको भ्रष्ट करना ही उनका काम है (२।१२३-१२४); इस विषयमें उनमें अच्छे बुरेका विचार नहीं है (९।१४); इनके स्वभावमें ही कुछ ऐसा चाञ्चल्य है कि हजार तरहसे रक्षा करनेसे भी कोई फल नही होता (९।१५); श्रुति और स्मृतिमें इनकी चरित्रहीनता प्रसिद्ध है (९।१९) इत्यादि। इसी नवम अध्यायमें मनु भगवान्‌ने और भी कहा है कि स्त्रियां ऐसी हीन और अपदार्थ हैं कि वेद और मंत्रमें भी उन्हें अधिकार नहीं है (९।१८)। इसीलिये कभी भी स्त्रीको स्वाधीन नहीं रहने देना चाहिये। सदैव वे पिताके, पुत्रके, या पतिके अधीन रहें (९।३)। वशिष्ठसंहिता (५ म अ०) का भी यही मत है। हालांकि साथ ही मनुने कहा है (९।१५) कि किसी प्रकारके शासनसे कोई फल नहीं मिलने का।

एक तरफ तो यह कहा गया है फिर दूसरी तरफ प्राचीन कालमें जो शिक्षा-दीक्षा पाकर ये स्वयं पति वरण करती थीं उस प्रथाको उठाकर आठ नौ वर्षकी कच्ची उमरमें विवाह देनेकी व्यवस्था की गई। यदि किसी प्रकारकी रक्षा कारगर नहीं ही होती है तो क्यों उन्हें शिक्षित और सुसंस्कृत होनेका अवसर नहीं दिया गया? एक तरफ तो स्त्रीकी शुद्धिपर ही वर्णशुद्धि निर्भर बताई गई, दूसरी तरफ उन्हें वेद और मंत्रके अधिकारसे वञ्चित करके उच्च आदर्शसे अपरिचित रखा गया। मजा यह कि इस प्रकार उच्च ज्ञानसे वञ्चित रखनेका कारण बताया गया कामुकता और स्वभावगत असंयम जब कि संयम-शिक्षासे उन्हें वञ्चित रखा गया! इन परस्पर विरुद्ध बातोंकी संगति क्या है?

गोत्र जाति आदिकी जन्मगत विशुद्धिपर ही वर्णाश्रम धर्म प्रतिष्ठित है। अथच इस विशुद्धिकी वाहिका नारियोंके ऊपर विश्वास नहीं। यदि सब प्रकार की रक्षण-व्यवस्था बेकार ही है तब तो वर्णाश्रम व्यवस्थाके मूलमें ही घुन लगा हुआ है। गौतम पुत्र चिरकारीने तो स्पष्ट ही कहा था—माताके सिवा और कौन जान सकता है कि गर्भके बालकका असली पिता कौन है[१]?

इसीलिये गरुड़ पुराण (पूर्व खण्ड ११५।५७) में कहा गया है कि नदी, अग्निहोत्र, भारत और कुलका अनुसंधान नहीं करना चाहिये, करनेसे दोषसे वह हीन हो जाता है[२]।

समाजके व्यवस्थापकोंने वंश-रक्षा की इतनी बड़ी व्यवस्था इसलिये की थी कि आर्योंकी संख्या कम न हो जाय। इसीलिये ज़रूरत पड़नेपर देवरसे नियोग

१—माता जानाति यद् गोत्रं माता जानाति यस्य सः।
(शान्तिपर्व, २६५।३५)

२—नदीनामग्निहोत्राणां भारतानां कुलस्य च।
मूलान्वेषो न कर्त्तव्यो मूलदोषेण हीयते॥

करके गर्भाधान करानेकी व्यवस्था की गई थी। ऐसा जान पड़ता है कि यह प्रथा भी आगे चलकर आदर्शके विरुद्ध पड़ गई होगी। स्त्रियां पतिके अभावमें देवरको पति रूपमें स्वीकार कर लेतीं थीं[1]।

शायद इस आदर्शगत विरोधके कारण ही कलिकालमें देवरसे पुत्रोत्पत्तिका निषेध किया गया था (पराशर०)।

सभी कारण तो मालूम नहीं, पर पौराणिक कथाओंसे जान पड़ता है कि उस युगमें आदर्श और व्यवहारका व्यवधान बहुत अधिक बढ़ गया था। शायद ही कोई पुराण हो जिससे हमारी बातका समर्थन न हो जाय। स्वयं महाभारत (अनु० ३८-४० अध्याय) भी ऐसी भयंकर असंयमकी बात कहता है। अवश्य ही ये बातें चरित्रहीना पंचचूड़ा की हैं। फिर भी महाभारतमें उन्हें स्थान तो मिला ही है। शिवपुराण (धर्मसंहिता ४३ अध्याय) में भी सनत्कुमारने व्यासजीसे पंचचूड़ा कथित स्त्री स्वभाव की बातें कही हैं। इन दोनों ग्रन्थोंमें कही हुई बातें ऐसी हैं कि उनका अनुवाद देना असंभव है। वराहपुराण (१७७ अध्याय) में भी श्रीकृष्ण नारदको यही बातें बताते हैं।

शिवपुराणमें केवल पंचचूड़ाकी बात कहकर ही स्त्री स्वभावकी दुष्टताका प्रसंग समाप्त नहीं कर दिया गया है। आगे ४४ वें अध्यायमें स्त्रीस्वभावके सम्बन्धमें सती-शिरोमणि अरुन्धतीके मुखसे भी वैसी ही बातें कहवाई गई हैं।

स्कंदपुराण (धर्मारण्य ३।८१-८७) में स्त्रियोंको केवल पुरुषको मोहित करनेवाली बताया गया है और नागर खण्ड (८१,३२-३७) में उनको चरित्र रक्षा करनेमें असमर्थ समझा गया है। महाभारतमें भी कहीं कहीं ऐसी उक्तियां मिलती हैं कि बहु पुरुष-युक्ता होना ही स्त्रियोंकी कामना है (आदि २०२।८), वे कभी विश्वास योग्य नहीं है (उद्योग० ३७।५७, द्रोण० २८।४२, आदि २३३।३७)।

१—नारी तु पत्यभावे वै देवरं कुरुते पतिम्। (अनु० ८।२२)

यदुवंशके ध्वंस होनेके वाद शोकार्त्त यदु-रमणियोंको लेकर अर्जुन जा रहे थे कि वीचमें आभीर दस्युओंने आक्रमण किया। यह आश्चर्यकी ही वात है कि उस प्रकार शोकार्त्ता होनेपर भी स्त्रियां कामार्त्ता होकर दस्युओंके साथ चली गईं (मुषल ७।५९)।

ब्रह्मवैवर्त पुराणके श्रीकृष्णखण्डमें गोपियोंके साथ भगवान्‌की लीलायें चाहे जैसी भी हों, भक्त लोग उसे लीला ही मान लेंगे पर वहीं स्त्रियोंके सम्वन्धमें साधारण भावसे जो कुछ कहा गया है वह वहुत अश्लील है (१७२ श्लोक)[1]।

समाजकी नैतिक अधोगतिका अन्दाजा पद्मपुराण (उत्तर २१३।८-१३) की उस पत्नी-भक्त पतिकी व्यभिचारिणी पत्नीकी कथासे चलता है जिसके जार-रतिकी निंदा सुनकर पतिने जहर खाकर प्राण दे दिये थे और उस पत्नीने अपने मित्रोंके परामर्शसे अपने शिशु सन्तानको पालन करनेके वहाने अपना प्राण धारण किया था। इसकी सखियां भी ऐसी ही थीं। इसका पुत्र वादमें उपनीत होकर परम नारायण भक्त हो गया था। इस पुराणमें एक ऐसे ब्राह्मण की कथा भी है जो गर्भपातकी दवा दिया करता था। भ्रूणहत्या उन दिनों खूब प्रचलित था। यही कारण है कि शास्त्रोंमें इस अपकर्मके प्रायश्चित्तका विधान है।

१—अनुसन्धित्सु पाठक पुराणोंके निम्नलिखित अंशोंको इस प्रसंगमें देख सकते हैं। इसमेंसे कुछ तो इतने अधिक अश्लील हैं (जैसे पद्मपुराणके पाताल खंडवाला) कि कई निष्ठावान् सनातनी अनुवादकोंने भी उनको अननुवादित रहने देना ही उचित समझा है—नारी तप्तांगार और पुरुष घृत-कुण्ड,—लिंगपुराण (पूर्वभाग ८।२३); वृहद्धर्मपुराण (उत्तर खंड ५।३)। अश्लील आचरण, गरुड़पुराण (पूर्वखंड, १०६ अध्याय); वामन पुराण ४३३ अध्याय; अग्नि पुराण २२४।३; गरुड़पुराण (पाताल० ६८।१७-३२ और ६५।१३-२२); पद्मपुराण (उत्तरखंड १२८।६६-९८, १०५-१०६)।

शायद कभी-कभी एक ऐसा समय आया था जब कि इस विषयमें लोक-मत भी बहुत ढीला हो गया था। स्कंदपुराणमें एक विधवाके पुत्र-जन्मकी कथा है। बताया गया है कि देवताके वरसे अपने मृत पतिका संग वह पा सकी थी (ब्रह्मखंड, उत्तरखंड १९ अध्याय)। देवताका वर चाहे जो कुछ भी रहा हो उसका पुत्र समाजमें अचल नहीं रहा। यथासमय उसका उपनयन हुआ और वह समस्त विद्याओंमें पारंगत तथा समस्त वेदोंका ज्ञाता हुआ (वही ७६-७८)।

जातिभेद और वंशशुद्धि

एक प्रकारके शिक्षित लोगोंका कथन है कि जातिभेदसे वंशशुद्धि या Ethnic purity ठीक रहती है। पर हिन्दू जातिको वंश (Ethnic) दृष्टिसे जिन्होंने अध्ययन किया है उन पंडितोंका मत इस विषयमें बहुत आशाजनक नहीं है। उदाहरणके लिये बंगालके द्विजों अर्थात् ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्यों में आर्य, द्रविड़, मंगोल सभी प्रकारके रक्त हैं। जातिकी विशुद्धि एक ऐसी प्राकृतिक अन्ध शक्ति पर निर्भर करती है जिसके निकट मनुष्य सदा हार मानता आया है।

पुराने जमानेमें नौकरी और व्यवसायके सिलसिलेमें पुरुष बाहर जाया करते थे। स्त्रियोंको साथ ले जाना सब समय सुरक्षित भी नहीं था और प्रचलित भी नहीं था। यातायातके साधन भी नहीं थे। फलतः पुरुषोंका चरित्र सदा शुद्ध नहीं रहता था। स्त्रियां जो घरपर रहा करती थीं, वियोगा-वस्थामें दिन काटती थीं। ऐसी प्रोषितपतिकाओंकी विरह-कथासे भारतीय

साहित्य भरा है। ये पुरुषोंकी अपेक्षा निश्चय ही अधिक पवित्र रहती थीं पर इस बातके प्रमाण विरल नहीं हैं जिनसे स्त्रियोंके ऊपर भी अनिश्चित प्रतीक्षा की प्रतिक्रियाका पड़ना सिद्ध होता है।

गुजरातके खेड़वाड़ ब्राह्मणोंका काम दोना पत्तल आदि बनाना है। ये कार्यवश विदेशमें रहते हैं पर इनमें अब भी परिवारका साथ ले जाना उतना प्रचलित नहीं हुआ। सिंधके भाई-बंद सम्प्रदाय वाले सारी दुनियामें व्यवसाय करते हैं पर साथमें स्त्रियोंको नहीं ले जा सकते। हालहीमें सिंधमें जो ओ३म् मण्डली की दुःखद घटना हो गई उसके लिये, कौन कह सकता है कि, इस प्रकार परिवारको साथ न ले जाने देनेका सामाजिक नियम उत्तरदायी नहीं है? भारतवर्षके सभी प्रदेशोंमें इस प्रकार अपरिवृत भावसे प्रवास करनेके नियम किसी-न-किसी मात्रामें मौजूद हैं ही। बंगालमें जो कौलीन्य-प्रथा प्रचलित थी उसके कारण एक ही कुलीन पुरुषके कई कई विवाह होते थे जब कि अधिकांश वंशज (अकुलीन) पुरुष अविवाहित ही रह जाते थे। इसका परिणाम जो विषमय नहीं ही हुआ था, इसका कोई सबूत है? जहां ऐसे और ऐसे अन्य अनेकों सामाजिक नियम चलते हों वहां जाति-गत शुद्धिकी आशा बहुत अधिक नहीं हो सकती।

आज कल समाजके मुखिया लोग ऐसे नियमोंके कारण घटी हुई दुर्घटनाओंके लिये अधिकांशतः स्त्रियोंको ही जबाबदेह बनाते हैं। पुरुष प्रायः ही छूट पा जाते हैं। बल्कि पुराने जमानेमें शास्त्रकार लोग स्त्रियोंको दोषी नहीं ठहराते थे। उन्होंने यह तो मान ही लिया था कि यदि स्त्री स्वेच्छासे कुपथ-गामी नहीं होती, बलात्कारसे होती है तब तो वह निर्दोष है ही। वह त्याज्य तो एकदम नहीं है। अत्रि मुनिने कहा है कि यदि स्त्री गलतीसे, प्रवंचित होकर बलात्कार द्वारा या प्रच्छन्न भावसे दूषित हो तो मान लेना होगा कि

वह स्वेच्छासे कुपथगामिनी नहीं हुई। ऐसी अवस्थामें वह त्याज्य नहीं है। ऋतुकालीन स्राव से ही वह शुद्ध हो जाती है (अत्रिसंहिता, १९७-१९८) विधर्मी द्वारा एक बार परिभ्रष्ट स्त्री प्रजापत्य व्रतसे और ऋतुस्नानसे शुद्ध हो जाती है (वही २०१-२०२)। देवलस्मृति वलात्कृता स्त्रीको तभी अशुद्ध मानती है जब कि उसे गर्भ रह जाय अन्यथा वह तीन रात में शुद्ध हो जाती है (४७)। किन्तु इच्छा-पूर्वक या अनिच्छा-पूर्वक विधर्मीसे गर्भ रह ही जाये तो भी कृच्छ्र सान्तपन और घृतसेकसे स्त्रीकी शुद्धि हो हो जाती है (४८-४९)। सान्तपन व्रतकी वात मनुमें (१०।२१३) भी है। अनिच्छा पूर्वक दूषिता स्त्रीकी निर्दोषिताके विषयमें तो अत्रि, वसिष्ठ, पराशर, देवल सवका एक ही मत है। इस विषयमें मत्स्यपुराणका कथन है अनिच्छा पूर्वक दूषिता नारी दण्डार्ह नहीं है, दूषक पुरुष दण्डार्ह है (२२१।१२८)। अग्निपुराणका भी यही मत है। यही नहीं, अग्निपुराणका कहना है कि ऋतुमती होते ही स्त्री शुद्धि हो जाती है (१६५।६-७), स्त्रीकी सभी शारीरिक दुर्नीति ऋतुस्नानसे शुद्ध हो जाती है। स्कंदपुराणमें भी कहा है कि स्रोतसे नदी और ऋतुस्रावसे स्त्री शुद्ध होती है। निरपराधा अन्योपभुक्ता स्त्रीको त्यागना नहीं चाहिये (काशी० ४०।३७-४८)। ब्रह्मवैवर्त पुराणका भी यही मत है (२।४५।१०९; ४।५१।५३) पर साथ ही यह भी कहा गया है कि स्त्रीकी भी सम्मति हो तो वह भी दोषी होती है (४।४७।४०)। इस विषयमें शास्त्रकारोंका कथन युक्तियुक्त ही है किन्तु वंशगत विशुद्धिकी रक्षा इससे नहीं हो सकती।

महाभारतके शान्तिपर्वमें गौतमके पुत्र चिरकारीकी कथा है। एक बार अपनी पत्नीको व्यभिचारलिप्ता देखकर उन्होंने पुत्रसे उसको मार डालनेको कहा। पुत्रने यह सोचकर कि पति ही जब स्त्रीका रक्षक है तो उसके चरित्र-

भ्रंशका दोष भी रक्षकका ही है, स्त्रीका नहीं (२६५।४०), माताको मार नहीं डाला। बादमें गौतमको अपनी "साध्वी" पत्नीको इस प्रकार मार डालनेके आदेशसे बड़ा कष्ट हुआ। पर तपःस्थानसे लौटकर जब देखा कि पत्नी मार नहीं डाली गई तो सन्तुष्ट ही हुए। गौतमकी पत्नी ही अहल्या थीं। अहल्याकी कहानी नाना स्थानोंमें नाना भावसे वर्णित है। पर यहां (महाभारतमें) जिस प्रकार कही गयी है वही अधिक संगत जान पड़ती है। यहां न तो अहल्याके पत्थर होनेका अभिशाप है न रामके चरणस्पर्शसे पुनर्जीवन-लाभ। गौतमने यहां बादमें ठीक ही समझा है कि राग, दर्प, मान, द्रोह, पाप और अप्रिय कार्यमें देरसे (धैर्य पूर्वक) काम करनेवाला (=चिरकारी) ही प्रशस्त है और बंधु, सुहृद, भृत्य और स्त्रीके अव्यक्त अपराधके मामलोंमें (सोच समझकर धैर्य पूर्वक) देरसे करनेवाला ही प्रशस्त है[1]— चिरकारी यहां कहते हैं कि स्त्री अपराध नहीं करती, अपराध पुरुष करता है (वही ४०)। फिर सन्तानके लिये माता ही गुरु है, पिता नहीं; क्योंकि असलमें तो माता ही जानती है कि सन्तानका असली पिता कौन है और उसका गोत्र क्या है (वही ३५)।

उन दिनों भी समाजमें असत्पुरुषोंकी कमी नहीं थी जो पतिहीना स्त्रियों-पर गिद्धकी भांति आंख लगाये रहते थे।[2] समाजमें गुण्डोंकी भी कमी नहीं

१—रागे दर्पे च माने च द्रोहे पापे च कर्मणि।
अप्रिये चैव कर्त्तव्ये चिरकारी प्रशस्यते।
बंधूनां सुहृदां चैव भृत्यानां स्त्रीजनस्य च।
अव्यक्तेष्वपराधेषु चिरकारी प्रशस्यते।
(शान्ति० २६५।७०-७१)

२—उत्सृष्टमामिषं भूमौ प्रार्थयन्ति यथा खगाः।
प्रार्थयन्ति जनाः सर्वे पतिहीनां तथा स्त्रियम्॥
(आदि० १५८।१२)

थी। उनसे स्त्रियोंको बचाना ज़रूरी समझा जाता था[१]। फिर कन्या दूषक राक्षस वर्गके लोग तो थे ही। उनसे कन्याओंकी रक्षा करना उन दिनोंकी एक समस्या थी।

इस प्रकार उन दिनोंमें युवक-युवती समस्या कम नहीं थी। तथापि सभी क्षेत्रोंमें चतुराश्रम-स्थापन, सदाचार, तप, शील, धर्म आदिकी महिमाका कीर्तन, आदिके द्वारा समाजके नेता उसे उच्चतर आदर्शकी ओर ले जानेका प्रयत्न करते रहे। किन्तु यह तो स्पष्ट ही समझमें आ जाता है कि जातिगत विशुद्धताकी रक्षा काफी कठिन थी।

वर्णसंकरता
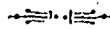
समाजका प्रत्येक व्यक्ति यदि चरित्रवान् और शील-युक्त हो तभी जाति-शुद्धि और वर्णशुद्धि बचाई जा सकती है। हिन्दूसमाजके सुदीर्घ इतिहाससे पता चलता है कि यह शुद्धि अव्याहत नहीं रही। समाजमें नैतिक दुर्बलता थी और वर्णसंकरता भी इसी लिये बढ़ती गई। ज्यों ज्यों परवर्ती कालकी स्मृतियों और पुराणोंमें हम आते जाते हैं त्यों त्यों वर्णसंकर जातियोंकी तालिका बढ़ती जाती है। फिर सांकर्यको उत्पन्न करनेवाला ऐसा कोई पाप नहीं है जिसका प्रायश्चित धर्मग्रन्थोंमें न बताया गया हो। ये बातें सिद्ध करती हैं कि प्राचीन समाज उतना विशुद्ध नहीं था जितना हम आज श्रद्धातिरेकके कारण समझने लगते हैं।

१—अहंकारावलिप्तैश्च प्रार्थ्यमानामिमां सुतां।
अयुक्तैस्तव सम्बन्धे कथं शक्यामि रक्षितुम्॥
(आदि० १५८।११)

. चरित्रगत शिथिलतामें भी यदि उच्चवर्णके साथ नीचवर्णकी स्त्रीका संवंध होता था तो दण्ड हल्का होता था पर नीचवर्णके साथ उन्चवर्णकी स्त्रीके संवंधमें दण्ड विकराल हुआ करता था। (संवर्तसंहिता, १५२-१५४ ; १६६-१६८) ब्राह्मणीके साथ गमन करनेवाले शूद्रको आगमें फेंक देनेका विधान है। ब्राह्मणीको दिया जानेवाला दण्ड भी कम भयंकर नहीं है (वसिष्ठ संहिता २१ अध्याय)। अत्रि और संवर्त दोनोंके ही मतसे उच्चवर्णके पुरुष और नीचवर्ण की स्त्रीके संसर्गमें पुरुषकी अशुचिता और प्रायश्चित्तका ही विधान करते हैं। ऐसा मालूम ही नहीं होता कि नीचवर्णा स्त्रीका कुछ नुकसान हुआ हो! वृद्धहारीतने ऐसे पुरुषोंके प्रायश्चित्तकी लम्बी तालिका दी है (नवम अध्याय)। वृहद् यमस्मृतिमें निम्न-वर्णा स्त्री और सवर्णा स्त्रीके साथ व्यभिचारमें कम और उच्च वर्णकी स्त्रीके साथ व्यभिचारमें कठोर प्रायश्चित्त की वात है(४-३६-४८)। इसी प्रकार याज्ञवल्क्यसंहितामें सवर्ण और निम्नवर्णके साथ गमन करनेकी अपेक्षा उच्चवर्ण स्त्रीके साथ गमनके लिये कठोर दंड विहित है अर्थात् पुरुषके प्राणदंडका विधान है। ऐसे मौकों पर स्त्रीको अवध्य समझ कर केवल नाक कान काटनेका ही विधान है (२।२८९-२९३)। शातातप स्मृतिमें अविवाहिता कन्या के साथ गमनको उपपातकोंमें गिना है (२१)।

परपुरुषके द्वारा पर नारीके गर्भसे जो सन्तान उत्पन्न होती है, यदि उसका उत्पादनकारी निर्णीत न हो तो सन्तानको 'गूढ़ोत्पन्न' कहते हैं। मनुने ऐसी सन्तानोंके पितृत्वका अधिकारी उस स्त्रीके पतिको ही माना है, अन्ततः सामाजिक कानूनमें वही उसका पिता माना जायगा (९।१७०)। अवैध भावसे जितनी प्रकारकी सन्ततियां उत्पन्न हो सकती हैं सवकी व्यवस्था मनुने की है (९।१७१-१८१)। कुमारी और विधवाओंकी सन्तानोंके विषयमें भी स्मृतिकारोंको सोचना पड़ा है।

विष्णुसंहितामें पौनर्भव, कानीन, गूढ़ोत्पन्न और सहोढ़ आदि सन्तानों की व्यवस्था कही हुई है। कन्या अर्थात् अविवाहित लड़कियोंकी सन्तान 'कानीन' कहलाती थी। यह कन्या जिस पुरुषके साथ विवाह करेगी वही इस कानीन सन्ततिका भी पिता होगा। जिस सन्तानको साथ लेकर उसकी मां किसी और पुरुषसे विवाह करती है उसे सहोढ़ कहते हैं। इस सन्तानका पिता भी यही विवाहित पुरुष ही समझा जायगा। विवाहिता विधवाके पुत्रको पौनर्भव कहते हैं। गूढ़ोत्पन्नका पिता भी जन्मदात्रीका विवाहित पति ही होता है (१५।१–१७)। जो सन्तान पिता माता द्वारा परित्यक्त होता है उसे अपविद्ध कहते हैं। पालन करनेवाला ही उसका पिता होता है। धर्मशास्त्रोंमें इनके उत्तराधिकार और भरणपोषणकी भी व्यवस्था है। याज्ञवल्क्यसंहिता (२।१३२-१३३) तथा वसिष्ठसंहिता (१७ अध्याय) में भी उक्त चार प्रकार की सन्तानोंकी बात है। वसिष्ठने 'पुनर्भू' उस विधवाको कहा है जो पुनर्विवाह करती है (वही)।

बौधायन मूढ़ज और अपविद्ध पुत्रको भी रिक्थभाक् या उत्तराधिकारी माना है। कानीन, सहोढ़ और पौनर्भव तथा शूद्रा स्त्रीसे उत्पन्न सन्तानको निषाद गोत्रभाक् कहा है (२।३।३६–३७)। बौधायनने इनके नाम संज्ञा आदिके बारेमें भी आलोचना की है (२।३।२६-३४)।

इन सब बातोंसे जान पड़ता है कि उन दिनों समाजमें बहुत शैथिल्य था। फिर एक एक प्रदेश भी चरित्रगत शैथिल्यके कारण विख्यात थे।

कर्णपर्वके ४५ वें अध्यायमें कर्ण मद्रनराधिप शल्यको फटकारते हुए कहते हैं कि एक ब्राह्मण नाना देश पर्यटन करके वाहीक देशमें आकर क्या देखता है कि वहांका ब्राह्मण पहले क्षत्रिय फिर वैश्य, फिर शूद्र और अन्तमें नाई हो जाता है। नाई होकर वह फिर ब्राह्मण हो जाता है और फिर दास (४५।६-७)।

क्षत्रियका मल है भिक्षा, ब्राह्मणका मल व्रतहीनता, पृथ्वीका मल वाहीक और स्त्री जातिका मल हैं मद्रदेशकी नारियां (२३)। इस देशमें जन्मका ठीक ठिकाना नहीं होनेसे, पुत्र उत्तराधिकारी न होकर भांजे उत्तराधिकारी होते हैं (४५।१३)। यह सुनकर मद्रनरेशने कहा कि इसमें मद्रका कोई विशेष दोष नहीं है, सभी जगहके पुरुष कामासक्त होते हैं (४२)।

इसके पूर्ववर्ती ४४वें अध्यायमें मद्रदेशकी वातें और भी साफ भाषामें कही गई हैं। धृतराष्ट्रकी सभामें किसी परिव्राजक ब्राह्मणके मुखसे कर्णने सुना था कि सिंधु और पंचनद प्रदेशके मध्यवर्ती धर्म-वाह्य वाहीक हैं जो त्याज्य और हेय हैं। शाकल नामक नगरमें और आपगा नदीके देशमें जो वाहीक हैं वे अत्यन्त हीन चरित्रके हैं। वहां नगरागारमें, व्रजमें और प्रकाश्य स्थानोंमें मत्तभावसे माल्य-चंदन धारण करके विवस्त्र होकर हास्य और नृत्य करती हैं (४४।१२)। वे कामचारी, स्वैरिणी हैं और प्रकाश्य भावसे कामाचरण करती हैं और अश्लील विनोद-वचन उच्चारण करती हैं (४४।२२)। इस धर्महीन देशमें नहीं जाना चाहिये। धर्महीन दासमीयों (=दशम देशोद्भव, या शूद्र दासोंसे उत्पन्न कामिनियोंकी सन्तानों—नीलकंठी) के या यज्ञहीन वाहीकोंके दानको देवता ब्राह्मण और पितृगण नहीं स्वीकार करते (३३)। वही आरट्ट देश है, उसीका नाम वाहीक है, वहांके ब्राह्मण भी चरित्रहीन हैं (४४)।

कैम्पवेलने भी लिखा है कि पंजावके गांधार ब्राह्मणोंकी रीति-नीतिकी वहुत निन्दा की वात पाई जाती है। वहांके पुरुष अगम्यागामी हैं,और स्त्रियों द्वारा असत्कार्य द्वारा उपार्जित धनसे पोषित हैं, नारियां लज्जाहीना हैं; वहांके ब्राह्मणोंऔर खत्रियोंकी कन्यायें भी वैधव्य व्रत पालन करना नहीं चाहतीं इत्यादि (Camp. Vol, 403, I 371)।

लेकिन सिर्फ वाहीकोंकी ऐसी दशा रही हो सो बात नहीं है। ऐसा एक युग भी बीता है जिसमें मनुष्योंमें वैसी संस्कृति नहीं आ पाई थी। पांडुने कहा था कि पुराने जमानेमें स्त्रियां अनियन्त्रित, कामचारिणी, स्वैरिणी और स्वतंत्र थीं। कुमारावस्थासे ही एक पुरुषसे दूसरेकी ओर आसक्त होती थीं। उन्हें कोई पाप नहीं होता था (आदि १२२।४-५)। यही नहीं, पाण्डु जिस समय यह बात कह रहे थे उन दिनोंमें भी उत्तर कुरुमें यही हाल था (१२२।१)।

इसी अध्यायमें उद्दालक ऋषिकी कथा है। उनके पुत्र श्वेतकेतुके सामने ही उनकी पत्नीको कोई ब्राह्मण हाथ पकड़ कर उठा ले गया। श्वेतकेतुके क्रुद्ध होनेपर पिताने समझाया कि इसमें क्रुद्ध होनेकी कोई बात नहीं है। (१२२।९-१४) पृथ्वीमें सभी स्त्रियां अनावृता अर्थात् सर्वजननभोग्या और स्वेच्छा विहारिणी हैं। यही 'सनातन' धर्म है। पर पुत्रने ऐसे सनातन धर्म को न मानकर नियम कर दिया कि स्त्री पतिको अतिक्रम करेगी और जो पति कौमार ब्रह्मचारिणी भार्याको अतिक्रम करेगा, उन दोनोंको भ्रूणहत्याका पाप होगा (१२२।१७-१८)। इन सब अगणित घटनाओंसे जाना जाता है कि प्राचीन कालका सब कुछ अच्छा नहीं था। व्यासादि मुनियों, धृतराष्ट्र पाण्डु आदि तथा युधिष्ठिर भीम अर्जुन आदिकी जन्म जैसी घटनायें आजके समाजमें बहुत निन्दित होंगी। पुरातन कालमें निश्चय ही बहुत ही श्रद्धेय चरित्रबल, तपोबल, ज्ञान-निष्ठा आदि थीं, पर सभी बातें अच्छी ही थीं ऐसा नहीं कहा जा सकता। कालिदासने ठीक ही कहा था—पुराणमित्येव न साधु सर्वं न चापि सर्वं नवमित्यवद्यम्।

उन दिनों समाजके व्यवस्थापकोंको तीन समस्याओंका सामना करना था। चतुर्दिक् का सामाजिक नीति-शैथिल्य, उच्चतर आदर्श और जातिभेदपर प्रतिष्ठित वंशशुद्धि। इस वात्या-विलोड़ित तीन नदियोंकी आवर्त संकुल त्रिवेणीमें

से समाजकी नौकाको सुचारु रूपसे खे ले जाना बड़ा कठिन व्यापार था। जाति निर्णीत होती है जन्मसे; जन्मशुद्धिके लिये स्त्रियोंकी पवित्रता नितान्त आवश्यक है और पारिपार्श्विक अवस्थाओंको देखते हुए 'तिरिया-चरित्र' विश्वास-योग्य नहीं ठहरता। ऐसी विषम अवस्थामें पड़कर शास्त्रकारोंको अनेक बार परस्परविरोधी उक्तियां कहनी पड़ी हैं। उपाय नहीं था। आज भी परम बुद्धिमान वयोवृद्ध पंडितोंको ऐसी परस्परविरुद्ध उक्तियोंका आश्रय लेना पड़ता है। आठ वर्षकी कन्याका विवाह देनेके पक्षमें कहा जाता है कि ऐसा न करनेसे कन्याओंका धर्म नहीं रहता। वे स्वभावतः ही चंचला और असंयत हैं इत्यादि। फिर बाल-विधवाका विवाह न करनेके समय वे कहते हैं—हमारे देशकी स्त्रियां सती साध्वी पतिपरायण होती हैं, उनमें स्वप्नमें भी चाञ्चल्य नहीं आता, वे कामुकतासे परे हैं इत्यादि।

हमारे इस युगमें भी विचार किया जाय तो समाजके नियमोंमें बहुत सी असंगतियां हैं। जिस समाजमें पानसे चूना खिसकनेपर भी जाति जाती है उसी दक्षिण भारतीय हिंदू समाजमें—जो परम सनातनी होनेका दावा करता है—कोई स्त्री यदि देवदासी हो जाय तो वह सदा शुद्ध है। ये देवदासियां सात प्रकारकी होती हैं—(१) दत्ता जो अपनेको देवताको समर्पण करे, (२) विक्रीता जो देवताके निकट आत्म-विक्रय करती है, (३) भृत्या जो कुलके कल्याणार्थ देवताको निवेदित की गई है, (४) भक्ता जो भक्तिवश संसार बंधन तोड़कर देवताके चरणोंमें अपनेको उत्सर्ग करती है (५) हृता, जिसे फुसला-भुलाकर देवताको समर्पण किया गया हो, (६) अलंकारा, जिसे राजा लोग नृत्यादिसे सुशिक्षिता बनाकर मंदिरको समर्पण करते हैं, (७) रुद्रगणिका या गोपिका जो वेतन लेकर देवताके निकट नाच गान करती हैं (Thurston. II, 125, 153) ये स्त्रियां समाजमें खूब सम्मानित हैं। युद्धके समय सैनिकोंको खाद्य

पहुंचानेके लिये उनकी पत्नियां नहीं जा सकती थीं। ये लोग वह काम करती थीं (पृ० १३३)। इसी लिये समय समय पर नाना उपायोंसे देवदासियोंकी संख्या बढ़ानी पड़ती थी। रथके समय रास्तेमें यदि कहीं रथ अटक जाता है तो रथके सेवक वहांसे लौट नहीं सकते हैं। ऐसे अवसरोंपर देवदासियां ही उन्हें आहार पहुंचाती हैं (वही)। विवाहके समय ये चिर सौभाग्यवतियां ही कन्याके कंठमें सूत्र बांध सकती हैं (वही १३९)। इसी कारणसे जिन मांगल्य अनुष्ठानोंमें विधवायें नहीं योग दे सकतीं उनमें वेश्याको अधिकार है। बंगालमें भी दुर्गापूजा आदिके अवसर पर वेश्याके द्वार की मिट्टी आवश्यक होती है। इस तरह भारतवर्षमें अन्यत्र भी जो वेश्याका सम्मान नहीं है, ऐसी बात नहीं कही जा सकती।

कैकोलान जातिमें प्रति परिवार एक कन्याको देवदासी करके दान करने का नियम है (Thurston. III, 37)। कर्नाटकमें देवदासियां अपनेको वेश्या या 'नाइकानी' कहती हैं। देवदासी होनेसे ही सब दोष खण्डित हो जाता है। वेश्याओंका 'नायिका' कहते हैं इसलिये उनकी हाव-भाव-भंगीको नाइकानी कहते हैं।

इस प्रकार मंगल कर्ममें वेश्यायें विहित हैं पर विधवायें नहीं। ऐसी असंगतियां हमारे समाजमें बहुत हैं। इस असंगतिका समाधान करते समय शास्त्रकारोंने स्त्रीमें अशेष प्रकारके दोष गिना कर भी यह कहा है कि देवताओंने स्त्रीको ऐसा पवित्र बनाया है कि वे किसी प्रकार भी अपवित्र नहीं होने की। कहते हैं, पहले स्त्रियोंको देवता भोग करते हैं बादमें मनुष्य, इसमें दोष कहां है। इसी लिये स्त्री उपपतिके संसर्गसे दूषित नहीं होती—न स्त्री दुष्यति जारेण (अत्रिसंहिता, १९३)। सवर्णकी तो कोई बात ही नहीं यदि किसी असवर्ण परपुरुषसे भी स्त्री गर्भवती हो तो प्रसवके बाद शुद्ध हो जाती

है (वही १९५)। पुनर्वार रजःप्रवृत्ति होते ही स्त्री विमल काञ्चनके समान शुद्ध हो जाती है (वही १९६)। देवल स्मृतिका यही मत है (५०-५१)।

अत्रि कहते हैं कि सोम, अग्नि और गन्धर्व देवता स्त्रीका उपभोग करते हैं (१९४)। सोम उन्हें पवित्रता, गंधर्व शिक्षित सुन्दर वाणी, और अग्नि सर्वभक्ष्यता देते हैं। इस लिये स्त्रियां सदा पवित्र हैं (बौधायनस्मृति २।२।६३ अत्रि १४०; याज्ञवल्क्य १।७०)। स्त्रियोंकी पवित्रता अतुलनीय है। कोई उन्हें अपवित्र नहीं कर सकता। प्रति मासका ऋतुस्राव उनका सारा दुरित (पाप) धो देता है (बौधायन २।२।६३)।

स्त्रियोंके सम्बन्धमें ये मत केवल ग्रन्थोंमें लिख कर ही नहीं रख दिये गये हैं। पुराने आख्यानोंसे इनका पूर्ण समर्थन होता है। ऐसे अनेक आख्यान पहले ही उद्धृत कर दिये गये हैं। इस प्रसंगमें गौतम और उनकी पत्नीकी कथा फिरसे स्मरण की जा सकती है। गौतम अहल्याके अपराधको क्षमा कर सके थे और इसके लिये समाजके निकट उन्हें कैफियत भी नहीं देनी पड़ी थी।

पद्मपुराणके उत्तर खण्डके २१५ अध्यायमें औशीनर शिविने एक मुनिके स्वैरिणी गर्भसे उत्पन्न होनेका कारण पूछा। नारदने बताया कि बृहस्पतिकी स्त्री ताराके साथ चन्द्रमाका समागम हुआ उसीसे बुध उत्पन्न हुए। पहले तो चन्द्रमा ने किसी भी प्रकारसे ताराको छोड़ना नहीं चाहा; पर बादमें बृहस्पतिने युद्धमें चन्द्रको परास्त करके गर्भवती ताराका उद्धार किया। बृहस्पतिने उस गर्भके आधाताका नाम पूछा पर लज्जित तारा निरुत्तर रही। पर बादमें बुधने उत्पन्न होकर जब अपने पिताका नाम पूछा तब उस "साध्वी" ने चन्द्रमाका नाम बताया। इसी बुधका अनादर करनेके कारण मुनिको स्वैरिणी-गर्भ-संभव होने के अभिशाप का भागी होना पड़ा था। यह कथा स्कंदपुराण, आवंत्यखण्ड (२८।८२।९५), शिवपुराण, ज्ञानसंहिता (४५ अध्याय) और ब्रह्मवैवर्त पुराण

प्रकृति खण्ड (५८ अध्याय) में है। अन्तिम पुराणमें वर्णनको रसीला बनाने का प्रयत्न किया गया है।

स्वयं वृहस्पति भी इसी अपराधके अपराधी थे। उन्होंने अपने कनिष्ठ भाई उतथ्य की पत्नीके साथ सहवास किया था[१]। भरद्वाजका जन्म इसी प्रकार हुआ, पर समाजमें वृहस्पति भी पूजित रहे, भरद्वाज और चन्द्रमा तथा बुध भी।

केवल पुराणोंमें ही नहीं बंगाल आदि प्रदेशोंकी कौलीन्य प्रथाका इतिहास भी सामाजिक सहिष्णुताकी कहानियोंसे भरा है। संन्यासी यदि फिरसे विवाह करे तो वह शास्त्र दृष्टिसे पतित होता है। पहले ही बताया गया है कि महाप्रभु चैतन्य देवके प्रधान शिष्य नित्यानन्द—जिन्हें अवधूत कहा गया है—बादमें महाप्रभुकी आज्ञासे संसारी हुए थे। उन्होंने नीच जातिकी स्त्रीसे विवाह किया था। उसीके गर्भसे गंगा और वीरभद्रका जन्म हुआ (लालमोहन विद्यानिधिका सम्वन्धनिर्णय पृ० ४४९)। नित्यानन्दकी तीन पत्नियोंका उल्लेख मिलता है—वसुधा, जाह्नवी और ठाकुरानी। पहली विवाहिता थी, दूसरी वाग्दत्ता और तीसरी दहेज में प्राप्त। अर्थात् पहलीको छोड़कर बाकी दोनों विवाहिता नहीं थीं। अस्तु। जाह्नवीसे ही वीरभद्रका जन्म हुआ था (वही)। इनकी धारा अब भी समाजमें गुरु रूपसे पूजित है। इनके साथ सम्बन्ध नैतिक दृष्टिसे अनुचित नहीं था पर सामाजिक दृष्टिसे अपराध था। किन्तु समाज तो नैतिक अपराधकी अपेक्षा सामाजिक अपराधको ही अधिक महत्व देता है। वल्लाल सेनने नीच जातीय पद्मिनीसे विवाह किया था (वही १०५)

१—यह आख्यान थोड़े अन्तरके साथ वायुपुराणमें दिया हुआ है। वहां उतथ्यकी पत्नी वृहस्पतिके बड़े भाईकी पत्नी है। वृहस्पतिके समागम कालमें वे गर्भवती थीं। वे समागमभिलाषिणी भी नहीं थीं। उक्त पुराण में इस प्रसंगकी ऐसी बहुत सी घटना है जिन्हें लिखनेमें संकोच हो रहा है।

पर उन्हीं की प्रवर्तित कौलीन्य प्रथाको समाज बहुत दिनोंसे सिर पर ढो रहा है।

महाराष्ट्रके ज्ञानेश्वर आदि भक्त संन्यासी पिताके पुत्र थे, यह बात पहले ही कही गई है। संन्यासी पुत्र होनेके कारण महाराष्ट्रमें वे निन्दित रहे, पर बंगालमें नित्यानन्दका वंश प्रतिष्ठित हो गया। जान पड़ता है यहांके समाज में फिर भी कुछ प्राणशक्ति बची थी। एक और उत्तम उदाहरण भाटपाड़ाके पंडित लोग हैं। भाटपाड़ा बंगालकी काशी है। जिन पंडितोंकी विद्या और ज्ञान गरिमासे समूचे बंगाल और भारतवर्ष का मुख उज्ज्वल है उनके वंशके प्रतिष्ठाता आदि पुरुष भी संन्यासीसे गृहस्थ हुए थे। उन दिनों कोई कोई उन्हें संसारी बनानेके विरोधी थे और बहुतसे लोग उनके पूर्व परिवारमें भी आस्था नहीं रखते थे। किन्तु संदेहवादियोंका मुंह काला करके उक्त संन्यासी के वंशज आज देशके गौरव स्वरूप हो गये हैं।

भावालके संन्यासी वाला मामला आज भारत-प्रसिद्ध है। पर सच पूछा जाय तो इनका पूर्ववर्ती वंशेतिहास कम रहस्यजनक नहीं है। एक कृती पुरुष ने आकर अपनेको ब्राह्मण बताया और घटकों (अर्थात् ब्याह सम्बन्ध कराने वाले अगुओं) को पैसेका लोभ देकर कुलपंजीमें अपना स्थान करा लिया। कहा गया कि वज्रयोगिनी ग्रामके पुनीलालका एक चार वर्षका बालक खो गया था। यह वही हैं। इसीलिये बंगालमें एक कहावत अब भी इस आशयकी प्रचलित है कि 'था तांती, हुआ कायथ और ढाकामें जाकर बन गया, मुंशी नन्दलाल। वही वज्रयोगिनीका पुनीलाल होकर भावालमें उदित हुआ।'

बंगालके कुल शास्त्रोंको देखनेसे स्पष्ट हो जाता है कि कुलीन कहाने वालोंके वंशमें भी कहीं न कहीं खोट रह गई है। एक उदाहरण लिया जाय। फुलिया मेलके इतिहाससे स्पष्ट है कि श्रीनाथ चाटुतिकी दो अदत्ता कन्यायें

थीं। ये घाटपर जल लाने गई थीं। हंसाई खां नामक कोई मुसलमान आकर उनका जात मार गया। बादमें इनमेंसे एकका विवाह हुआ परमानन्द पूति से और दूसरीका गंगाधर गंगोपाध्यायसे (वही ४३९-४४०)। कोई-कोई कहते हैं कि यह बात वंशके शत्रुओंने उड़ाई है। पर अगर यह सच भी हो तो कन्याओंका इसमें क्या दोष था? दोष तो समाजका था।

इसी प्रकार रोहिला पटी, कुतुबखानी, आलियाखानी आदि मुसलिम संसर्गज कुलोंकी कहानी भी इन ग्रन्थोंमें मिलता है।

पंडित रत्नी मेलमें भी यवन दोष है (पृ० ४८७)। कुलीनोंके ३६ मेलोंमें ही यवनादि अपवाद हैं (पृ० ५९५)। पंडित रत्नी मेलमें कुण्ड दोष और गोलक दोष भी है। पतिके रहते ही जो जारज सन्तान होती है उसे कुण्ड कहते हैं और मरनेपर जो जारज सन्तान होती है उसे गोलक कहते हैं (मनु० ३।१७४)। वाली मेलमें भी यवन संसर्ग है और शुराजखानीमें यवननीता कन्या ग्रहणका प्रायश्चित्त है। इसी प्रकार पारिहाल और शुक्रों सर्वानंदी मेलोंमें भी दोष है (४९९)। वारेन्द्रोंमें पुरन्दर मैत्रके कुलमें, जोताली और चण्डाली दोष हैं। पूर्व वंगालके रमाकान्त वंशमें भी दोष है जो बलात्कार कृत होनेके कारण उपेक्षित हुआ है (पृ० ५६२,४३५)। कांटादिके दासू वंशमें बनियाकी कन्या ग्रहण करनेका दोष बताया जाता है। इत्यादि।

इन दोषोंमें जहाँ दुर्बलके ऊपर प्रबलका अत्याचार हुआ है वह सचमुच ही उपेक्षणीय हैं क्योंकि वे असलमें समाजकी असमर्थताके कारण हुए हैं। पर आश्चर्य होता है तब जब इन्हीं वंशोंके वंशधर दूसरोंके ऐसे ही या बिल्कुल ही कल्पित अपराधोंको तिलका ताड़ बना देते हैं और जातिच्युत करते हैं।

बंगालके राढ़ीय ब्राह्मणोंमें एक-एक पुरुष कई-कई विवाह किया करते थे। अनेक समय नोटबुकमें ससुराल और श्वसुरका नाम देख कर ही वे

विवाह सम्बन्ध याद कर पाते थे। दूसरी तरफ वंशज ब्राह्मण व्याह ही नहीं कर पाते थे। इनके लिये कन्यायें दुर्लभ थीं। लोग नावोंमें भर भरकर कन्यायें बेंचनेको लाते थे। ये कन्यायें अधिकतर विधवा और नीचवंशीया होती थीं। सभी ब्राह्मणकुमारी कहकर बेंची जाती थीं और लोग गरजके मारे विशेष अनुसंधान किये विना ही उन्हें स्वीकार कर लेते थे। पूर्वी बंगालमें इन्हें "भरार मेये" कहते हैं। पूर्व बंगालमें; विशेष करके विक्रमपुरकी तरफ इन "भरार मेये" ओं की बहुत खबर मिलती है। अनेक समय बादमें 'भरार मेये' के असली कुलका पता चलता था। शत्रु पक्ष तो काफी होहल्ला करता था पर अपने पक्षके लोग इन घटनाओंको दबा देते थे। फिर ऐसे विशुद्ध कुल भी कम ही होते थे जो साहस पूर्वक होहल्ला कर सकें। क्योंकि अपनोंमें भी कहीं-न-कहीं वैसी बात हुई ही रहती थी। अनेक बार इन कन्याओंके वंशधर प्रचण्ड समाजपति हो जाते थे जो अन्योंको दोष देकर जातिच्युत करनेमें पूरा उत्साह दिखाते थे। यह प्रथा अब भी लोप नहीं हो गई है।

सिर्फ बंगालमें ही नहीं, अन्यान्य प्रदेशोंमें भी जहां ब्राह्मणों क्षत्रियोंमें बहुतेरे युवक नाना कारणोंसे अविवाहित रह जाते हैं नाना स्थानोंसे कन्यायें विक्रीके लिये आ जाती हैं और कई बार वे नीचवंशोत्पन्ना भी होती हैं। युक्तप्रान्तके पूर्वी जिलोंकी ऐसी घटनायें हमें मालूम हैं। अधिकांश मामलोंमें स्वपक्ष वाले इन बातोंको दबा देनेमें सफल हो जाते हैं। कभी कभी सफलता नहीं मिलती और विवाहित और उसके सम्बन्धी जातिच्युत भी किये जाते हैं। कुछ दिनोंके बाद कुछ प्रायश्चित्तके बाद ये जातिच्युत उठते भी देखे गये हैं।

पंजाब, राजपूताना आदिमें भी यह दुर्गति नाना आकारोंमें विद्यमान है। पंजाबमें तो कन्या संग्रह और विक्रयका बाकायदा व्यवसाय चलता है। प्रकट हो जानेपर भी प्रायः कोई भी इनके लिये जवाब तलब करनेकी हिम्मत नहीं करता।

यह सब देखकर गरुड़ पुराणकी बात ही ठीक जान पड़ती है—

नदीनामग्निहोत्राणां भारतस्य कुलस्य च।
मूलान्वेषोनकर्त्तव्यो मूलोदोषेण हीयते॥

(मतलबके लिये देखिये पृ० १६३)

इसके साथ ही नैषधीय चरितका एक श्लोकार्द्ध याद आता है जो यद्यपि चार्वाकके मुंहसे कहवाया गया है पर है गंभीर युक्तिपूर्ण। टीकाकार श्रीनारायणने इसके समर्थनमें नाना शास्त्रोंके वाक्य संग्रह किये हैं। श्लोकार्ध यों है—

तदनन्तकुलादोषाददोषा जातिरस्ति का। (१७-४०)

अर्थात अनन्त परम्पराके भीतरसे कुल और जाति चल रही है। इसीलिये जाति और कुलमें कितने ही दोष हो सकते हैं। निर्दोष जाति कहां है? जातिगत निर्दोषताकी आशा करना ही बेकार है।

इसपर नैषधके टीकाकार नारायणने एक प्राचीन वचन उद्धृत किया है—

अप्येकपंक्त्यां नाश्नीयात् संयतैः स्वजनैरपि।
को हि जानाति किं कस्य प्रच्छन्नं पातकं भवेत्॥

अर्थात् अपने संयत स्वजनोंके साथ भी एक पंक्तिमें भोजन नहीं करना चाहिये। कौन जानता है, किसमें कौनसा पापछिपा हुआ है।

पर क्या इतनेसे झंझट छूट गई। न हुआ औरोंके संसर्गसे बच लिया गया पर अपने कुल-परम्पराके प्रच्छन्न पातक क्या उत्तराधिकार सूत्रसे नहीं मिलते? कितने युगसे यह अनादि संसार प्रवाह चलता आ रहा है। इसीलिये इस कुलकी विशुद्धिके लिये प्रत्येक नारीको काममोहादिके अतीत होना चाहिये। और काम तृष्णा दुर्वार है। जातिविशुद्धि सम्पूर्णतः कामिनियोंकी इच्छाके अधीन है ऐसी हालतमें जातिपरिकल्पनाका कोई मतलब ही नहीं होता—

अनादाविह संसारे दुर्वारे मकरध्वजे।
कुलेच कामिनीमूले, काजातिपरिकल्पना ॥
(नैषध, १७-४०की टीकामें उद्धृत)

जातिभेदका परिणाम

जैसा कि शुरूमें ही कहा गया है, मनुष्य समाजमें ऊंच नीच-भेद सर्वत्र ही है किन्तु हमारे देशके जातिभेद जैसा भेद संसारमें और कहीं भी नहीं है। अन्यान्य देशोंमें समस्त भेदोंके भीतर भी ऐक्य स्थापन करता है धर्म, जबकि हमारे देशके जातिभेदकी दीवार हो धर्मपर खड़ी हुई है। इस भेदके मूलमें ही धर्म है। कभी-कभी सहजबुद्धि इस भेदको स्वीकार नहीं भी कर सकती। पर धर्ममें ही इस भेदका मूल रहनेसे इस देशमें उन कुफलोंका प्रतीकार करना असंभव-सा है जो इस भेदसे पैदा होते हैं।

देहके भीतर स्वास्थ्यका अर्थ है सामंजस्य। व्याधिसे सामंजस्य नष्ट होता है। किन्तु हमारा पाकयंत्र, रक्त चलाचल और स्नायु मण्डली आदि यंत्र निरन्तर सारी विषमताओंके भीतर साम्य लानेका प्रयत्न करते रहते हैं। यदि कभी सामंजस्य नष्ट होता है तो हमारे पाकयंत्र, हृत्पिण्ड, श्वासयंत्र आदिके द्वारा यह दोष दूर होता है। किन्तु जब चिकित्सक देखता है कि साम्य लानेमें सहायक ये यंत्र ही बेकार हो गये या बिगड़ गये हैं तो ऐसे सन्निपातादि रोगमें वह हताश हो जाता है। इसीलिये जब हम देखते हैं कि धर्म ही इस वैषम्यके मूलमें है तो प्रतीकारकी आशा कहांसे करें ?

अब विचारणीय यह है कि जातिभेदके रहते इस देशमें क्या लाभ या हानि हुई है।

जब तक जातिभेद प्रथा खूब दृढ़ भावसे इस देशमें प्रतिष्ठित नहीं हुई थी तबतक पूर्वकालमें भारतवर्षके बाहरसे आनेवाले लोग इस देशके समाजमें गृहीत हो जाते थे। सन् ईसवी पूर्वकी दूसरी शताब्दीमें बेसनागरमें प्राप्त शिलालेखसे जान पड़ता है कि तक्षशिला-वासी दियसके पुत्र ग्रीक नरपति हेलियोडोरस परम भागवत हो के गरुड़ध्वज बनवा रहे हैं। कनिष्क हुविष्क आदि शक्तिशाली राजा, जो विदेशी थे, भारतीय समाजमें अनायास ही गृहीत हो गये। काडवाइसस परम माहेश्वर (शैव) हो गये थे। राजतरंगिणीसे मालूम होता है कि तुरुष्क-वंशीय ये पुण्य नरपतिगण शुष्कूल आदि देशोंमें मठ-चैत्यादिकी प्रतिष्ठा कराते थे (१।१७०)। नहपानके जामाता उषवदात सन् ईसवीकी दूसरी शताब्दीके प्रथमार्धमें एक बड़े धार्मिक पुरुष हो गये हैं। श्रीनगरके राजा मिहिरकुलने मिहिरेश्वर महादेवकी स्थापना की थी (१।३०६)। इस प्रकार नाना युगोंमें नाना स्थानोंसे आये हुए शक, हूण, यवन, कोची, मीना प्रभृति वीरोंके दल भारतीय समाजकी शक्ति संजीवित रखते रहे हैं। जिन राजपूतोंकी वीरगथा-ओंके लिये हम इतने गर्वित हैं वे भी एक समय बाहरसे ही आये हुए हैं। अभी उस दिन भी जयन्तिया, काछारी, मणिपुरी आदि जातियोंने हिन्दू समाज-का अंग पुष्ट किया है। किसी किसी प्रत्यन्त सीमापर अब भी यह काम धीरे धीरे हो रहा है। किन्तु इस कार्यमें वह प्रबल शक्ति अब नहीं है जो कुछ शताब्दी पहले तक थी। अब इस प्रक्रियाका जोर वैसा नहीं रहा। कभी नाथ-पंथी योगी आदि जातियोंका एक स्वतन्त्र मत था। वे वर्णाश्रम नहीं मानते थे, मृतकका दाह नहीं करते थे, बल्कि पृथ्वीमें गाड़ दिया करते थे, पर अब वे धीरे-धीरे हिन्दू समाजमें प्रविष्ट हो गये हैं। इन्होंने वर्णाश्रम धर्म भी स्वीकार कर लिया है, और वैष्णव धर्म स्वीकार कर परम वैष्णव हो गये हैं। गुरु, मंत्र, तीर्थ, पूजा, प्रार्थना आदि स्वीकार कर रहे हैं। यद्यपि अब भी इनमें

अपना विशिष्ट परिचय कुछ-न-कुछ है ही तथापि ये विशेषतायें धीरे-धीरे ह्रास हो रही हैं। फिर भी इसको अपनाना नहीं कह सकते और यदि अपनाना इसे कहा भी जाय तो वह पूर्ववर्ती वेग इसमें एकदम नहीं है जो पहले था। अन्यान्य धर्मावलम्बीगण नाना उपायोंसे अपनी संख्या बढ़ा रहे हैं, उसकी तुल-नामें यह कुछ भी नहीं है। वरन् छोटे-छोटे कारणोंसे व्यर्थ ही बहुतसे आद-मियोंको अकारण समाजसे निकाल बाहर करनेकी प्रवृत्ति ही जोरोंपर है। कहना व्यर्थ है कि हिन्दू समाजके इस प्रकार आत्महत्याका रास्ता पकड़ा है।

बङ्गालके टिपरा जिलेके माहीमाल या माई फ़रोश मुसल्मान पहले हिन्दू कैवर्त थे। बिना दोषके ही उन्हें समाजसे निकाल दिया गया। सुना है, एक बार इनके पासके गांवमें हैजेकी बीमारी हुई थी। उस गांवके बाशिन्दे मुस-लमान थे। हैजेके प्रकोपसे सभी समाप्त हो गये। एक बच्चा बचा रह गया। कैवर्तोंको दया आई। उनकी एक स्त्रीने उसे दूध पिलाया और बड़ा किया। बादमें तर्क उठा कि यह लड़का तो हिन्दू नहीं है, उसे पालन करनेवालीकी जात नहीं रही और उसके साथ खान पानका सम्बन्ध रखनेवाले सभी मुसलमान हो गये; इस प्रकार उन्हें जबर्दस्ती हिन्दू धर्मसे बाहर निकाल दिया गया। बहुत दिनों तक वे समाजकी कृपाकी प्रतीक्षामें रहे पर समाजके नेताओंका हृदय नहीं पसीजा। अब वे पक्के मुसलमान हैं।

इस प्रकार हिन्दुओंने अनेक अपनोंको पराया बनाया है। मल्काने राजपूत अपने देश और गोब्राह्मणकी रक्षाके नामपर जीतोड़ लड़ाई कर रहे थे। इसी समय किसीने ग़लत अफवाह उड़ादी कि शत्रुओंने उनके कुएंमें गोमांस डाल दिया है। यह अफवाह उन्हें समाज-च्युत करनेके लिये पर्याप्त सिद्ध हुई। वे बिना किसी अपराधके स्वधर्म त्यागनेको बाध्य किये गये। बहुत दिनों तक वे धर्म छोड़नेको तैयार नहीं हुए। अब भी उनके आचार विचारमें क्षत्रियत्वका प्रचुर

स्थान है। फिर भी 'पवित्र' हिन्दू समाज अपने इन सपूतोंको दण्ड देनेमें पीछे नहीं है। आज ये लोग 'मलकाने मुसलमान' कहाते हैं! किमाश्चर्यमतः परम्!!

काशीके पास योगी भर्थरी या भर्तृहरिका गान करते हैं। इन्हें भी हिन्दू समाजमें रखना संभव नहीं हुआ है। आज भी वे कंथा-धारी होकर योगीके वेशमें घूमते हुए गाते और भीख मांगते फिरते हैं। हिन्दू ही इनका भरण-पोषण करते हैं, इनसे गंडे तावीज़ भी लेते हैं, इनकी पूजा भी करते हैं फिर भी आजके नामके मुसल्मान हैं और अपनेको मुसलमान कहकर परिचय देनेको वाध्य हैं। पटुआ और चितेरोंके नाम, रहन-सहन और व्यवहार सव हिन्दूके हैं, देव देवियोंका पट और चित्र वनाना ही उनका व्यवसाय है, फिर भी वे मुसल्मान हैं! इसी प्रकार दक्षिणके मापिल्ला भी मुसलमान हुए हैं।

इस प्रकार हिन्दू समाजसे जवर्दस्ती वहिष्कृत आधे हिन्दू आधे मुसलमान वहुतेरी जातियां अव भी इस देशमें हैं। मौल-इस्लामोंको किसी समय जवर्द-स्ती राजपूतोंमेंसे निकालकर वहिष्कृत गया है, आज भी ये लोग काजी और मुल्लाको वुलाते जरूर हैं पर पुराने गुरु और पुरोहितोंको भी नहीं छोड़ा है। पूर्वकालमें उनके जिस प्रकार विवाहादि अनुष्ठानमें आचार पालन किये जाते थे, भाट-चारण वुलाये जाते थे, वह रूप अव भी है (Cens. Bar. I. P. 432.)।

गुजरात और सिंधमें ऐसी वहुतसी श्रेणियां हैं। मतिया, मोमना, शेख, मौल-इस्लाम, संघर आदिको विना कारण मुसल्मान कहकर मनुष्य गणनाके रिपोर्टमें गिनती की गई है। सिंधके संयोगी लोग किसी भी प्रकार अपनेको मनुष्य गणनाके समय 'मुसलमान' लिखाने पर राजी नहीं हुए। अगला रिपोर्ट के लेखकोंने उन्हें 'अन्यान्य जाति' लिख मारा (cens. Ind. 1921 Vol. 1 Part I, 115-116) ऐसे ही मेव राजपूत भी हिन्दूसे मुसलमान हो गये हैं। Gloss III P. 82) मीरासी लोगोंका भी यही दास्तान है (वही १०५-११९)।

ये लोग देवीके भक्त हैं और देवीके गान गाते हैं (पृ० ११५)। इनके अनेक गोत्र हैं। लवाना लोगोंके विषयमें भी खोज किया जाय तो ऐसी ही बात निकल आयेगी (पृ० १)। इसी तरह सखी सरवरके उपासक भी न-हिन्दू-न-मुसलमान हैं (पृ० २२५,४२६)। शमूसी सम्प्रदायवाले पीर शम्स तवरेजके उपासक थे। ये पहले हिन्दू थे। गीता मानते थे और हिन्दू आचारसे रहते थे परन्तु साथ ही मुसलमान गुरुओंके प्रति भी भक्तिशील थे। पहले तो मुसलमान गुरुओंने कुछ नहीं कहा। बादमें बोले कि तुम्हारे पुरखे गुप्त रूपसे मुसलमान धर्मको मानते थे। इसीलिये हिन्दुओंने उन्हें समाजसे निकाल बाहर किया (पृ० ४०२-४०३)।

रसूलशाही एक तरफ तांत्रिक और योगी हैं दूसरी तरफ मुसलमान हैं। इनको किस श्रेणीमें रखा जाय यह कहना कठिन है (वही पृ० ३२४)। गंजाममें उड़ीसासे आई हुई आहवा जाति आचार विचारमें सर्वथा हिन्दू है, केवल विवाहके समय मुल्लोंको बुलाती है (Thurston I, 59)। इसी तरह मद्रासकी दुदेकुल जाति न-हिन्दू-न-मुसलमान है। इन्हें भी व्याह शादीके अवसर पर ही मौलवी बुलाना पड़ता है यद्यपि इनके वैवाहिक अनुष्ठान हिंदुओं के ही हैं और देवमन्दिरमें पूजा-अर्चना भी ये करते हैं (वही, II-195)। तिलंगानेके काटिक भी जबर्दस्ती हिन्दू समाजके वहिष्कृत हैं।(वही III,259) माराकव्या पहले हिन्दू थे और अब भी इनके वैवाहिक अनुष्ठानोंमें हिन्दू आचार वर्तमान हैं (वही V, 105)। मोपला लोग अब भी हिन्दू देवी-देवताओंकी पूजा करते हैं। और तिया लोग मोपलोंके मस्जिदमें मानत मानते हैं (वही VII,105)। अनेक स्थानोंपर अब भी हिन्दू और मुसलमान दोनों ही एक ही देवमन्दिरमें उपासना करते हैं और मानत रखते हैं। दक्षिणकी कोई कोई मुसलमान श्रेणी अपनेको महादेव कहकर परिचय देती है (वही

IV,326)। मुक्कुम्म् समुद्री मल्लाह हैं। इनमें किसी प्रकार मुसलमान संसर्ग हो तो, ऐसे संसर्गसे उत्पन्न संतान को मुसलमानके हाथमें ही सौंप देते हैं। ऐसे बच्चोंसे बनी हुई एक अलग श्रेणी ही है जिसे पुट्टिया या 'नया इस्लाम' कहते हैं (वही Vol,V.P,111)। पंजाब और युक्त प्रान्तके भाट भी ऐसे ही जबर्दस्ती मुसलमान बने हुए हैं। उनके सब आचार अब भी हिन्दुओंके ही हैं। विवाहमें पहले वे पुरोहित बुलाकर कन्यादान कराते हैं तब बादमें काजी बुलाते हैं (Crook II P,25)। बोहरा मुसलमानोंके विषयमें प्रसिद्ध है कि वे पहले ब्राह्मण थे। कोई कोई वंश पालीवाल गौड़वंशसे उत्पन्न है। राजपूत बोरा भी हैं (पृ०।१४०)। ढफाली भी कुछ हिंदू आचार और कुछ मुसलमान आचार पालन करते हैं (वही पृ०।२४१)। घोसियोंके पूर्वपुरुष मुसलमानोंसे प्रभावित थे। फिर भी उनके वंशमें बहुतसे हिन्दू आचार और संस्कार अब भी प्रचलित हैं (वही पृ० ४२०)। इसी तरह हुसेनी ब्राह्मण लोग न हिन्दू न मुसलमान हैं (पृ० ४९९)। ऊपर बताई हुई आधा हिन्दू आधा मुसलमान जैसी बहुतेरी श्रेणियोंका पौरोहित्य ये लोग करते हैं। रांकी यद्यपि मुसलमान रूपमें ही परिचित हैं परन्तु वे भवानी आदि देवियोंके पूजक हैं (वही Vol. III, पृ० ७)। किंगारियोंकी भी यही बात है (पृ० २८२) लालखानी भी नये मुसलमान हैं। अब भी इनमें बहुत हिन्दू संस्कार बचे हुए हैं (वही पृ० ३६३)। ऐसी आधा-हिन्दू-आधा-मुसलमान श्रेणियां बहुत हैं। हिन्दू लोग इन्हें स्वीकार नहीं करते और मुसलमानोंमें उनका आदर है। इसलिये ये लोग धीरे धीरे मुसलमान धर्मकी ओर ही अधिकाधिक झुकते जा रहे हैं। इससे हिन्दू समाज क्रमशः क्षय होता जा रहा है। सिर्फ डोंगरा दरजी लोगोंमें मुसलमान भी शरीक हुए हैं, ऐसा जाना जाता है (Thurston II P. 192)। लेकिन असल्य भिन्न श्रेणीसे सिर्फ दो एक व्यक्ति हैं।

एक नया आधा-हिन्दू-आधा-मुसलमान दल भी है। प्रसंग आ गया है तो इनकी भी चर्चा की जाय। ये अलीगढ़के प्रसिद्ध सर सैय्यद अहमद खां के अन्तरङ्ग हैं। ये लोग सिर्फ दार्शनिक ढङ्गके उदार मुसलमान धर्मको मानते हैं और साम्प्रदायिकता वर्जित सहज सत्यको स्वीकार करते हैं। प्रकृति या नेचर (Nature) को स्वीकार करनेके कारण वे लोग नेचरी कहलाते हैं। इनमें अनेक हिन्दू भी हैं (Gloss. III, 166)।

जो ऐसी आधी-हिन्दू-आधी-मुसलमान जातियां हैं उनकी अवस्थाके अनुसार उचित यही था कि कुछ इधर आ जातीं कुछ उधर जातीं। पर हिन्दू समाजमें वाहरसे आनेका रास्ता वन्द है। घरका आदमी भी यदि एक वार वाहर चला गया तो फिर उसका घरमें आना असम्भव है। अभिमन्यु चक्रव्यूह के भीतर घुस सकते थे, वाहर नहीं निकल सकते थे पर यहां आदमी वाहर तो निकल सकता है, भीतर नहीं आ सकता।

भीतर आनेमें प्रधान वाधा जातिभेद है। जिस जातिसे कोई वाहर जाता है वह जाति अपनी प्रतिज्ञा वचा रखनेके लिये उसे फिरसे अपने दलमें स्थान नहीं दे सकती। फिर जो वाहर जाकर जात-पांत ठीक नहीं रख सके उन्हें किस जातिमें भरती किया जाय? वाहर जानेसे वर्णाश्रम तो विशुद्ध रह नहीं जाता। यदि वह लौटना चाहे तो उसे वैठानेका कोठा खोजे भी नहीं मिलता। इस दुर्गतिके कारण हिन्दुओंने निरन्तर ही अपनोंको पराया वनाया है। अपना जव एक वार पराया हो जाता है तो उसका आघात वड़ा ही कठोर और निर्मम होता है। कर्णका आघात अर्जुनके लिये सर्वाधिक सांघातिक था। जिसे अपमानित करके जाति-वहिष्कृत किया गया है, वह इस अपमान को कभी नहीं भूलता। गोस्वामी तुलसीदासने ठीक ही कहा है—'सवसे कठिन जाति अपमाना।'

यदि बाहर वालोंको भीतर बुलाया भी जा सके तो समस्या यह होती है कि उन्हें रखा जाय किस जातिमें ? इसलिये हिन्दुओंके भीतर ले आनेकी प्रथाकी बला ही नहीं है।

जब हिन्दू समाजमें जातिभेदकी प्रथा इतनी जटिल और कठोर नहीं हो गई थी तब हिन्दुओंने नाना देशोंमें जाकर नये नये उपनिवेश स्थापित किये थे। उन दिनों भारतीय संस्कृति ब्रह्म देश, श्याम, कंबोडिया, जावा, सुमात्रा बाली आदि द्वीपोंतक फैल सका था। यह ध्यान देनेकी बात है कि इन सब देशोंकी ओरसे भारतवर्ष पर न तो कभी कोई आक्रमण हुआ है न इन्होंने किसी और तरहसे आघात किया है। जब इस देशमें छुआछूतका विचार प्रबल हुआ तभी समुद्रयात्रा निषिद्ध हुई और साथ ही साथ पृथ्वीके अन्यान्य स्थानोंसे भारतीय समाजका सम्बन्ध टूट गया। ऐसे ही समयमें पश्चिमकी ओरसे उसपर अनेक आघात हुए। पहले तो मध्य-एशिया भारतीय संस्कृतिका एक जबर्दस्त केन्द्र था। वहींसे कुमारजीव आदि पण्डितोंने चीनमें जाकर भारतीय धर्मका प्रचार किया था। आज जान पड़ता है कि भारतवर्षकी इस प्राणशक्तिका विकास असम्भव है।

जिस व्यक्तिको कालकोठरीमें बन्द किया जाता है उसकी तन्दुरुस्ती तो जाती ही है, विद्या-बुद्धि और विचार शक्ति भी लुप्त हो जाती है। शुरूमें शायद बाहरकी विपत्तिसे आत्म रक्षाके लिये सीमाकी लकीर खींची गई थी। आज यह लकीर ही मृत्युका कारण हो गई है। अब बाहरकी भीतिजनक वस्तु भीतर आकर बैठी है फिर उस व्यर्थकी सीमारेखासे अब क्या फायदा है ?

वर्णाश्रम व्यवस्थामें ब्राह्मणको जो ऊंचा स्थान दिया गया था सो ब्राह्मणने भी एक दिन अपने सरल अनाडम्बर ज्ञान-पूत जीवन-यात्रासे और ज्ञान-ध्यान-कर्मकी साधना और तपस्यासे समाजको पवित्र और आदर्श-प्रवण बनाया था।

पर जो सम्मान सहजमें ही मिलता है उसे पाकर कितने महापुरुष हैं जो अपना कर्तव्य निभाते रहें और तपस्या और साधनामें अटल रह सकें? समाजमें ब्राह्मणोंको बादमें चलकर विना तपस्या और साधनाके ही सम्मान और श्रद्धा मिलने लगी। इससे तामसिकता आती है और अन्तमें पतन होता है। ब्राह्मण का यह पतन समस्त जातिको दुर्गतिकी ओर लेगया है।

पद्मपुराण कहता है कि आपत्कालमें भी ब्राह्मणको नौकरी नहीं करनी चाहिये और न राजसेवा ही करनी चाहिये (पाताल खण्ड, ४।१६०-१६८)। फिर भी आज ब्राह्मण लोग वह सब करनेको बाध्य हुए हैं। फल यह हुआ कि समाजके ऊपर आज उनका वह प्रभाव नहीं है। अवश्य ही निरुपाय होकर ही उन्होंने यह रास्ता लिया है पर जो कल्याण समाज उनसे पाता था, अब वह नहीं पा रहा है। और जिस समाजमें तपोनिष्ठ नेताका अभाव होता है वह समाज दिन दिन नष्ट होता है।

पहले जाति भेद और वृत्ति-भेदके कारण अन्नोपार्जनके क्षेत्रमें अन्याय-मूलक चढ़ा ऊपरी नहीं थी। जब वे राजा भी नहीं रहे, वह समाज व्यवस्था भी नहीं रही फिर वह वृत्तिभेद सुरक्षित रहे तो कैसे रहे?

जिन देशोंमें जातिभेद नहीं है वहां देशपर बाहरी शत्रुके आक्रमण होने के समय सभी देशवासी लड़ते हैं। इस देशमें युद्ध करना एक श्रेणी विशेषका कार्य माना जाता जाता है। यह श्रेणी जब नष्ट या विपन्न हो जाती है तो बाकी लोग असहाय होकर कर्तव्य-मूढ़ हो जाते हैं। इससे आक्रमणकारीको सुविधा होती है। ऐसा तो नहीं है कि अ-क्षत्रियोंने जिस देशमें बीच बीचमें शत्रुको बाधा पहुंचाई ही न हो, पर वह साधारण नियमका अपवाद ही था। कभी कभी कहीं कहीं निम्नतर श्रेणीके लोगोंने इस प्रकार क्षत्रियत्व भी प्राप्त किया है। और कुछ कालतक देश रक्षाके कार्यमें नई शक्ति और वीरता भी

जुटाई है। पर सब मिलाकर देखा जाय तो देश रक्षाके मामलेमें जातिभेदसे नुकसान ही हुआ है।

जातिभेदके कारण जो एक बड़ा ही निष्ठुर काण्ड आजकल चल रहा है वह यह है कि बहुतसे हिन्दू बर्मा आदिमें जाकर वहांकी स्त्रियोंसे विवाह करते हैं। वे उन्हें लेकर घर नहीं लौट सकते। जात-पांतका भय रहता है। देशको लौटते समय इन स्त्रियों और सन्तानोंको ये जबर्दस्ती मुसलमान या ईसाई बनाकर लौट आते हैं। वैसे तो हिन्दू समाजकी दृष्टिसे यह क्षतिकर है ही, मनुष्यताकी दृष्टिसे भी अत्यन्त गर्हित है। इस प्रकारकी उत्पन्न सन्तान पुराने युगमें हिन्दू ही होती। पर जातिभेदकी कठोरताके कारण आज यह सम्भव नहीं है। इस प्रकार हिन्दू समाज निरन्तर क्षयकी ओर धावमान है।

हमने पहले ही देखा है कि सिंध देशकी देवल-स्मृतिमें इस सामाजिक क्षयको रोकनेके लिये ही विधर्मी द्वारा या अन्याय भावसे लांछित स्त्रीको समाजमें ले लेनेकी व्यवस्था है। अत्रि आदि स्मृतियोंके अध्ययनसे हम देख चुके हैं कि असलमें वे ही लोग निन्दनीय और प्रायश्चित्ती हैं जो अन्याय-पूर्वक लाञ्छिता स्त्रियोंकी रक्षामें समर्थ नहीं हैं।

जो लोग बाहरसे हिन्दू धर्मके प्रति आस्था और विश्वास लेकर आते हैं उन्हें हिन्दू लोग अपना भी नहीं सकते। ये भगिनी निवेदिता जैसी साध्वी नारियों और मैक्समूलर जैसे महाचेता पुरुषोंको संन्यासी बनाये बिना ग्रहण ही नहीं कर सकते। गृहस्थ रूपमें अगर इन्हें स्वीकार किया जाय तो किस जातिमें रखा जायगा? यदि इन्हें ब्राह्मण क्षत्रिय बना लें तो महापण्डित ब्रजेन्द्र-शीलको किस मुंहसे तांती कहते रहेंगे? बाहरसे आये हुए लोगोंको यदि हम ब्राह्मण मानें तो मेघनाद साहा जैसे कृती हिन्दुओंको 'साहा' कहते रहना कहांका योग्य विचार है? महात्मा गान्धी महात्मा होनेके कारण सबके पूज्य

हो सकते हैं पर गृहस्थ गान्धी सदा गान्धी ही रहेंगे, यद्यपि उनके पुत्रको ब्राह्मण राजगोपालाचार्यने कन्या दी है। संन्यासी विवेकानन्द जितने भी पूज्य हों गृहस्थके रूपमें वे अब्राह्मण ही हैं। राजा राजेन्द्रलाल जैसे लोग कितने बड़े भी पण्डित क्यों न हों ब्राह्मण हर्गिज नहीं हो सकते।

जीवन संघर्षमें बाधा

एक तो यों ही कलिकालमें समुद्रयात्रा निषिद्ध है, फिर इस कालमें नियमोंकी कठोरता भी बहुत अधिक है इसीलिये आजकल जातिभेद और वर्णाश्रम व्यवस्थाके आचार-विचारोंको विशुद्ध रखकर उपनिवेश स्थापित करना हिन्दुओंके लिये असम्भव ही है। इस देशकी जन संख्या इतनी बढ़ गई है कि तिल धरनेकी जगह नहीं है, बेकारीकी समस्या अत्यन्त उग्र है और बाहर जानेका कोई उपाय नहीं है। जो लोग फिजी, ट्रिनीडाड आदिमें गये हैं वे जात-पांतकी शुद्धि नहीं रख सके हैं, इसलिये उनका इस देशमें लौट आना भी सम्भव नहीं और इस प्रकार मातृभूमिके साथ उनका सम्बन्ध सदाके लिये छिन्न ही हो गया है। हमने पहले ही कहा है कि बर्मा, श्याम आदिमें गये हुए हिन्दू किस अमानुषिक ढंगसे अपनी स्त्रियों और बच्चोंको स्वयं विधर्मी बना देते हैं। उन स्त्रियों और सन्तानोंको पति और पिताके धर्ममें रहनेका कोई उपाय नहीं है।

देश-विदेशमें जाति बचाकर रहना असम्भव है। इसीलिये विदेशमें नौ-युद्ध विभागमें या जहाजकी परिचालनाके कार्यमें खलासी और सारङ्ग आदिके कार्यका रास्ता भी हिन्दुओंके लिये रुद्ध है। अगर यह मार्ग खुला होता तो

बेकारी समस्याका बहुत कुछ समाधान हो सकता। चटगांव, नोआखाली आदिके बहुसंख्यक मुसलमान इन कार्योंसे जीविका उपार्जन करके सुख पूर्वक गुजर कर रहे हैं। पहले चटगांवके हिन्दू पाटनी समुद्रके बड़े होशियार नाविक थे पर अब वहांके सभी नाविक मुसलमान हैं। समुद्रयात्रा हिन्दूके लिये निषिद्ध था अतएव कालिकटके जमोरिनने अपने हिन्दू नौजीवी प्रजाओंको उनकी इच्छाके विरुद्ध मुसल्मान बनाकर शास्त्रकी मर्यादा बचाई थी।

इस प्रथासे सर्वापेक्षा अधिक क्षति स्त्री जातिका हुआ है। हमने देखा है कि पहले कन्यायें शिक्षा पाकर यौवनमें स्वयं अपना पति चुन लिया करती थीं। वेदमें कन्याके ब्रह्मचर्य व्रतकी भी बात है—

ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्।

(अथर्व० ११।७।१८)

पराशर-माधवके आचार काण्ड, विवाह प्रकरणमें यमका वचन उद्धृत करके दिखाया गया है कि पुराकालमें कन्याओंका मौञ्जीबन्धन और उपनयन होता था, तथा वेद भी उन्हें पढ़ाये जाते थे (तर्कालङ्कार संस्करण पृ० ४८५)। वहीं हारीतका वचन उद्धृत करके कहा गया है कि स्त्रियोंमें दो श्रेणियां है, ब्रह्मवादिनी और सद्योवधू।

उपनयनके बाद गुरु गृहपर कन्यायें यथा-रीति शास्त्र अध्ययन करती थीं। उत्तर रामचरित नाटकमें भवभूतिने इसका एक सुन्दर चित्र उपस्थित किया है। भवभूतिको परवर्तीकालका कहकर उनकी बातको प्रमाण नहीं माननेकी दलील उपस्थित की जा सकती है किन्तु कन्याओंका ब्रह्मचर्यवास अन्य उल्लेख योग्य प्राचीनग्रन्थोंसे निस्सन्देह प्रमाणित किया जा सकता है। कुरुक्षेत्रके एक आश्रममें ब्रह्मचारिणी शाण्डिल्यदुहिताने तपः सिद्धि प्राप्त की थी (शल्य० ५४।६)। महाभारतमें एक ऋषिकन्याकी कथा है जो ब्रह्मचर्य पालन करती हुई तपोनिरत

अवस्थामें वृद्धा हो गई थीं। बादमें गृहस्थाश्रममें प्रवेश करनेका उपदेश पाकर उन्होंने वृद्धावस्थामें विवाह किया (शल्य० ५२।२०)। इसी प्रकार सुलभा नामक मुनिव्रतधारिणी (शान्ति० ३२०।१८३) कन्याका और ब्राह्मण कन्या सिद्धाके वेदाध्ययनकी कथा (उद्योग० १०९।१९) भी महाभारतमें है। ब्रह्म-वैवर्त पुराणमें पतिव्रता स्त्रीका साम-मन्त्रसे पूजा करनेका विधान है (श्रीकृष्ण जन्म खण्ड, ८३।१३०)। अन्यत्र बताया गया है कि नारद मुनिको हरिभक्ति-मय गान सीखनेके लिये जाम्बवती, सत्यभामा, रुक्मिणी और यहांतक कि, उनकी सहचरियोंका शिष्यत्व ग्रहण करना पड़ा था (लिङ्ग पुराण, उत्तर० ३। ८९-१००)।

वेद और शास्त्रीय ज्ञानसे वञ्चित किये जानेपर स्त्रियां सचमुच ही शूद्रा हो उठीं। जब शिक्षा ही नहीं दी जायगी तो शूद्रता दूर कैसे होगी ?

प्राचीन कालमें कन्यायें बड़ी होकर स्वयं वर चुना करती थीं। वरण किया जाता है इसीलिये वरको 'वर' कहते हैं। अनेक अवसरोंपर कन्यायें वर पसन्द करके गान्धर्व मतसे ही विवाह करती थीं। यह गान्धर्व विवाह मनु (३।२१) तथा अन्य शास्त्रकारों द्वारा समर्थित है (पराशर माधव० पृ० ४८५-४८९)। पराशर माधवमें बौधायन देवल आदि ऋषियोंके भी इसके समर्थक मत उद्धृत हैं। अग्नि पुराण (१५४ अध्याय) में भी इसकी वैधता स्वीकार की गई है। महाभारतादि प्राचीन इतिहासोंमें इस प्रथाका भूरि-भूरि उल्लेख पाया जाता है।

क्रमशः जब जात-पांतका बखेड़ा बढ़ गया तो समाजके व्यवस्थापकोंके मन में यह उद्वेग उपस्थित हुआ कि बड़ी होकर कन्या जिस वरको वरण करेगी उसके जाति कुल सब समय अनुकूल ही कैसे रह सकते हैं। इसीलिये पसन्द-नापसंदका टंटा उठाकर कच्ची उमरमें ही व्याह देनेकी व्यवस्था हुई। वरणतक भी होता रहा पर अब वह एक प्रथामात्र रह गयी। भाई या पिता ही इस

कार्यको करने लगे। अब नये सिरेसे गौरीदानकी प्रथा प्रवर्तित हुई। ऊपर बताये हुए कारणसे ही स्मृतियोंमें अल्पवयस्क कन्याओंका विवाह करनेके लिये इतनी व्यस्तता दिखाई गई है।

कहा गया है कि कन्या यदि व्याहके पहले ही पितृगृहमें ऋतुमती हो जाय तो पिता माताके पापका अन्त नहीं (शंख १५-८, यम २२-२३)। ऐसी कन्या वृषली होती है और इस 'वृषली' या शूद्रासे विवाह करनेवाला ब्राह्मण पतित होता है (यम० २४।२८) इत्यादि।

इस तरह स्त्रियां सब प्रकारकी स्वाधीनतासे वंचित हुईं (मनु० ५-१४७-१४९; वशिष्ठ संहिता ५ अध्याय ; बौधायन २।२।५० इत्यादि)।

पिछले अध्यायोंमें हम देख चुके हैं कि स्त्रियोंके सम्बन्धमें किस प्रकारके अविश्वासका एक युग गया है। विश्वास नहीं करनेवाला भी क्षतिग्रस्त होता है और जिसपर विश्वास नहीं किया जाता वह तो होता ही है।

स्त्रियोंकी स्वाधीनताके अपहरणसे बड़ा नुकसान यह हुआ कि उनका बाहर आकर जीविका उपार्जन बन्द हो गया। वे पुरुषोंकी सहायक नहीं रहीं। घरमें बैठकर जो कुछ किया जा सकता है उससे अधिक वे कुछ भी नहीं कर सकीं। हिन्दू समाजका आधा हिस्सा पंगु हो गया। समाज जीवनके संघर्षमें अन्यान्य जातियोंकी अपेक्षा शक्तिहीन हो गया। यूरोप, अमेरिका, जापान आदि देशों की स्त्रियोंकी कर्मशक्तिको देखकर यह बात विशेष रूपसे याद आती है।

अपना वर स्वयं चुननेमें यह भय था कि जाति-कुलकी विशुद्धता सुरक्षित नहीं रहेगी, पर स्त्री-स्वाधीनताके चले जानेपर भी वह भय पूरी तरहसे दूर नहीं हुआ। बीच बीचमें दुर्घटनायें होती ही रहती थीं। लड़कियोंको जब स्वयं वर चुननेका अधिकार नहीं रहा तो उत्तम वर खोजनेकी जवाबदेही पितापर पड़ी। हर प्रकारसे सद्वंशजात और सुशिक्षित वरके लिये पिताओंमें

प्रतियोगिता भी बढ़ी और इसीसे तिलक और दहेजकी प्रथाकी उत्पत्ति हुई। कभी कभी इतनी सावधानी होनेपर भी दुर्घटनायें होती रहीं। पद्मपुराणमें एक उपाख्यान इस प्रकार है कि एक श्वपच सुन्दर वेश-भूषा धारण करके अपनेको ब्राह्मण कहकर एक ब्राह्मण कन्याका प्रार्थी हुआ। ब्राह्मणने उसे कन्या देनेका वाग्दान किया। इसी बीच उन्हें उसकी असल जाति मालूम हुई। ब्राह्मण बड़े चक्करमें पड़े। कन्या देते हैं तो जाति जाती है, नहीं देते तो प्रतिज्ञा भंग होती है। तब श्रीकृष्ण आकर उस कन्याको और युवकको बैकुंठमें ले गये। वहां जातिभेद नहीं है इसीलिये दोनों वहां सुखपूर्वक मिलित हुए (स्वर्गखण्ड, ४९ अध्याय)। शायद दोनोंमें पहलेसे ही प्रेम था।

आजकल कन्याको विवाह देना एक इतनी बड़ी समस्या हो गई है कि कभी कभी अच्छा पात्र दिखते ही लोग धीर भावसे उसके जाति-कुलका विचार तक करना भूल जाते हैं। फलस्वरूप कितने ही धूर्त समय समय पर विवाहके व्यवसायसे लोगोंको ठगा करते हैं। हालहीमें बंगालमें एक ऐसे ही विवाह-विशारदपर पुलिसने मुकद्दमा चलाया था जिसने लोगोंको धोखा देकर दर्जनों विवाह किये थे। समाचारके पाठकोंको ऐसी घटनायें पढ़नेको प्रायः मिलती रहती हैं।

इधर आर्थिक कारणोंसे बहुतसी कन्यायें अविवाहित ही रह जाती हैं। कभी-कभी ये लड़कियां स्वयं अपना वर वरण भी कर लेती हैं। इससे अच्छा और बुरा दोनों फल हो सकते हैं। इसीलिये इस ओरसे जातिभेदकी प्रथापर प्रचण्ड आघात होता जा रहा है जो निष्ठावान् समाजनेताओंको काफी परेशान कर सकता है।

जाति कुलकी ओर देखकर आत्मसम्मानकी रक्षा करनेके लिये अनेक बार राजपूत लोग अपनी कन्याओंको सौरमें ही मार डालते थे। गुजरातके पाटीदार

या पटेल लोग उन्हें दूधमें डुबोकर समाप्त कर देते थे। इसे 'दूधपीधी' कहते थे। कन्या एक दुर्भाग्य समझी जाती है। ऐसा पिता इस देशमें विरला ही होगा जो कन्याके जन्मके दिन ही तिलक और दहेजकी चिन्तासे कातर न हो उठता हो।

महाभारतके युगमें कभी कभी देखा गया है कि कन्या प्रार्थनीय मानी जाती थी। यद्यपि ब्राह्मण ग्रन्थोंमें कहा गया है कि 'दारिका हृदय दारिका पितुः' अर्थात् लड़की पिताके हृदयको विदीर्ण करनेवाली होती है, पर प्राचीन कालमें ऐसा भी देखा जाता है कि लोग कन्याको दत्तक पुत्रके समान दूसरेसे लेकर पालते थे। यदि वह दुर्भाग्य समझी जाती तो ऐसा न होता। यदुश्रेष्ठ शूरकी कन्या थीं पृथा (कुन्ती)। शूरने अपने फुफेरे भाई कुन्तिभोजको यह कन्या पालनार्थ दी थी। कुन्तिभोजके नामपर ही पृथाका नाम आगे चलकर कुन्ती हुआ (आदि १११-३)। किन्तु धीरे-धीरे कन्यायें दुर्भाग्य समझी जाने लगीं और इस अभागे देशमें कन्यावध भी संभव हो सका। भारतवर्षने इस कन्यावधका महापाप भी स्वीकार कर लिया।

ज्ञानसे वंचित स्त्रियां समाजमें एक ऐसा अन्धकार स्थान बन गई हैं कि वहांसे मानसिक जगत्के सब रोग समाजमें संक्रमित हो सकते हैं। यही कारण है कि आज कोई भी भला काम शुरू होता है—यहांतक कि वह काम यदि स्त्रियोंकी स्वाधीनताके लिये या कल्याणकामनाके लिये भी किया जा रहा हो तो सर्वाधिक बाधा स्त्रियोंकी ओरसे ही प्राप्त होती है। जिसे कुसंस्कार कहते हैं उसका प्रधान आश्रय आज स्त्रियां ही बनी हुई हैं। इस परिमण्डलमें जन्म लेनेके कारण इस देशके पुरुषोंकी चित्तवृत्तिमें भी कुसंस्कारोंने कम घर नहीं बनाया है।

जहां स्त्रियोंकी प्रतिष्ठा नहीं है वहां मातायें भी सन्तानके चित्तपर आधि-

पत्य नहीं कर सकतीं। इनकी मर्यादाके नष्ट होनेसे सारे समाजकी मर्यादा नष्ट होती है।

अकेला मनुष्य शक्तिहीन है। समाजकी सहायतासे ही उसमें शक्ति आती है। पर जातिभेदसे क्या भारतीय समाज किसी प्रकारकी शक्ति प्राप्त कर सका है? अहमदाबादकी लेडी विद्यागौरी रमनभाईने इस विषयमें जो कुछ कहा है वह विचार योग्य है। उन्होने कहा है कि समाज-सेवकके लिये जातिभेद एक जबर्दस्त बाधा है। कन्याको शिक्षा दो, जाति इसका विरोध करेगी। विधवा विवाहकी बात चलाओ, जाति इसका विरोध करेगी। विदेशमें शिक्षाके लिये जाओ, निम्न वर्णके साथ मानुषोचित व्यवहार करो—सर्वत्र जाति विरोध करेगी (Ghurye, 161)।

सामाजिक संहति

एक साथ रहनेसे ही परस्पर एक प्रकारका योग हो जाता है। सामाजिकता मनुष्यके स्वभावकी एक बड़ी सम्पत्ति है। गांवोंमें हिन्दू मुसलमान, ब्राह्मण, शूद्र ऊंच नीच सभीमें एक तरहका मामा-काका-दादा सम्बन्ध रहता है। जिन लोगोंमें जातिभेदका विष ज्यादा तीव्र हो गया है वे इसमें भी दोष देखते हैं। इस दोष दर्शनके प्रमाण शास्त्रोंमें भी हैं (वृहद्धर्म पुराण, उत्तर ४।४८)। वहां शूद्रको काका, मामा आदि कहना भी निषिद्ध है।

जातिभेदने हिन्दुओंकी संहति इस बुरी तरहसे नष्ट किया है कि एक जाति वाला दूसरी जातिवालेको पराया समझता है। डेरा इस्माइल खां आदि सीमान्तके जिलोंमें दुर्वृत्त विधर्मी प्रायः ही हिन्दू घरोंमें लूटते हैं और हिन्दू कन्याओंका अपहरण कर ले जाते हैं। एक मेरे मित्रने ऐसी एक घटना सुनाई जो एक ही साथ हृदय-विदारक भी है और शिक्षाप्रद भी है। एक बार दुर्वृत्त एक

लड़कीको उठा ले जा रहे थे। संख्यामें वे ज्यादा नहीं थे। लड़की चिल्ला चिल्ला-कर बचाओ बचाओकी पुकार कर रही थी। मुहल्लेके लोग लाठी सोंटा ले निकले पर उन्होंने जब देखा कि लड़की उनकी जातिकी नहीं है, बल्कि बनिये की है, तो लौट गये। कहने लगे—यह तो बनियेकी लड़की है। दुर्वृत्त द‍ु स्वच्छन्दता पूर्वक लड़कीको ले गये।

विदेशी और विधर्मी राजाके लिये प्रजाकी संहतिका नष्ट होना सुविधाकी ही बात है। खाद्य यदि आकारमें बड़ा हो तो टुकड़े करके खानेमें ही बुद्धिमानी है। इसी तरह बड़े देशको शासन करनेके लिये उसको नाना भावसे विच्छिन्न और असंहत कर देना ही ग्रास करनेमें सुविधाजनक है। यहां जातिभेदने पहलेसे ही इस बातकी सुविधा कर रखी है। इसलिये पुराने जमानेमें छोटी जातिके आद-मियोंका ऊंची जातिमें बदल जाना जितना सरल था, मुसलमानी जमानेमें उतना सहज नहीं रहा और आजकल तो और भी कठिन है। इसमें आज नाना प्रकार-की बाधायें विद्यमान हैं। किसी एक देशको दबा रखनेके लिये उस देशके जितने प्रकारके जातिगत और धर्मगत भेद हैं सबको जगा रखनेमें ही सुभीता है। विशेष रूपसे विदेशी और विधर्मीके लिये तो यह भेद-प्रथा देवदत्त आशीर्वाद ही है।

इन दिनों विदेशी गवर्नमेंट जो मनुष्यगणना कराती है उसे देखकर एक बात जो जीमें उठती है उसे कहे बिना नहीं रहा जाता। मनुष्यकी स्वाभाविक वृत्ति है भेदभाव भूल जाना। किन्तु गवर्नमेण्ट जिस प्रकार जोर देकर हर दसवें साल जाति लिखनेके लिये लोगोंको मजबूर करती है उससे वे लोग भी जिनमें यह भेद भाव ज्यादा नहीं है, या जो भूलने बैठे हैं, बार-बार भेद भावको खींच खींच कर जीवित रखनेके लिये मजबूर किये जाते हैं। गवर्नमेंटके रजिस्ट्री विभागमें जाति लिखाने पर इतना जोर दिया जाता है कि जो लोग जाति नहीं लिखना चाहते उनको भी मजबूरन जातिभेदको याद रखना पड़ता है। मेरे एक

चक्रवर्ती ब्राह्मण मित्रको रजिस्ट्रारके आफिसमें केवल इसीलिये घंटों हैरान किया गया कि वे जाति नहीं लिखाना चाहते थे। मज़ा यह था कि रजिस्ट्रारसे लेकर क्लर्क तक सभी उनको भलीभांति पहचानते थे। तब भी गवर्नमेंट जाति लिखानेके मामलेमें इतनी बद्धपरिकर है। सन् १९२१ के सेन्सस रिपोर्टमें लिखा है कि पंजाबकी निम्नतर श्रेणियोंमें जातिभेद बहुत कम उग्र है। किन्तु मनुष्य गणनाका खाना भरानेपर बार-बार जोर देकर उनमेंकी भेद-बुद्धिको प्रतिदिन जागृत किया जाता है (Cens, Ind. 1921, Vol. I, Part I, P. 223 टिप्पणी)। सिक्ख लोग जातिभेद नहीं मानते पर सेन्सस वाले उनसे जातिभेद लिखाकर ही छोड़ेंगे। इस बातको लेकर इतना झमेला बढ़ा कि अन्तमें मजबूर होकर गवर्नमेंटको यह हुक्मनामा जारी करना पड़ा कि यदि पंजाब और उत्तर पश्चिम सीमान्तके सिक्ख लोग जाति न लिखना चाहें तो उन्हें मजबूर न किया जाय (वही पृ० २२६ Para 197)।

कहते हैं इङ्गलेण्डके राजा धर्मके रक्षक (Defender of Faith) हैं। वही यहांके भी सम्राट् हैं तो धर्म और जातपांत और सम्प्रदायके प्रधान रक्षक अंग्रेज सरकार ही है। जो भेदभाव युगधर्म और कालके प्रभावसे नाश होनेको जा रहा है उसे यत्न पूर्वक जीवित रखना और उसे परिवर्द्धित और पोषित करनेका भार भी सरकारने स्वयं उठा लिया है। किन्तु आश्चर्य तब होता है जबकि उन्हीं लोगोंकी ओरसे हमारी आयोग्यताके प्रमाण स्वरूप यह कहा जाता है कि हममें जात-पांत और सम्प्रदायका भेद विभेद है। फिर क्यों इन भेद विभेदोंको जिला रखनेके लिये वे इतने व्याकुल हैं?

सेन्सस रिपोर्टमें एक मजेदार रिमार्क यह भी है कि समय समय पर सेन्ससके कर्मचारी अपनी जाति और सम्प्रदायकी प्रतिष्ठावश जान बूझकर मनुष्य गणनामें गलत बात लिखा देते हैं। (वही पृ० ११९।१२०)।

सामाजिक अविचारके भीतरसे भी व्यक्ति महिमाकी जीत

जिस समाजमें चरित्र, गुण, मनीषा, साधना और तपस्याकी अपेक्षा जन्मगत जातिका आदर ही अधिक है, वह समाज किसी प्रकार अग्रसर नहीं हो सकता। नारद, विदुर, व्यास आदि महापुरुषोंका जन्म तो बहु दोषयुक्त है किन्तु साधना और तपस्याके बलपर समाजमें उन्हें कितना उच्च पद मिला था। हीन वंशमें जन्म होनेसे कोई हीन नहीं हो जाता। अनेक समय हीन कही जानेवाली जातियोंमें ऐसे महापुरुषोंका जन्म होता है जिनके चरित्रकी किसीसे तुलना नहीं की जा सकती। महाभारतमें एक द्विज और व्याधकी कथा है। उस व्याधका ज्ञान और साधना देखकर विस्मित होना पड़ता है। (वन० २०६।११५)। शूद्र पैजवनके दान और उदारताकी सीमा नहीं है (शान्ति ६० अध्याय)। ऐंद्राग्नि विधानमें उन्होंने दान दिया था। वैश्य तुलाधारके साथ जाजालिका संवाद भी ज्ञान गर्भित है (शान्ति० २६३ अध्याय)। तुलाधार बृहद्धर्म पुराणके अनुसार व्याध थे। उपदेश देकर उन्होंने ब्राह्मण जाजालिके अन्तरका संशय दूर किया था। हम इसके पहले ही देख चुके हैं कि प्राचीन कालमें शूद्रोंमें कैसे-कैसे तपस्वी हो गये हैं।

किन्तु स्मृति ग्रन्थोंमें लिखा है कि शूद्र यदि किसी ब्राह्मणको उपदेश दे तो राजाको चाहिये कि उसके मुखमें और कानमें खौलता हुआ तेल डाल दे (मनु० ८।२७२)। मनुस्मृतिके आठवें अध्यायमें (श्लोक २६७-२८६) में जो विधान बताया गया है, वह द्रष्टव्य है।

भगवान् बुद्धदेवके बाद ही बौद्ध संघमें जिनका सर्वाधिक सम्मान था वे उपालि जातिके नाई थे। सुनीत पुक्कस थे, फिर भी थेरगाथामें उनके श्लोक

उद्धृत हैं। साति मछुए थे और नन्द थे जातिके ग्वाले। ये दोनों ही पंठक अभिजात वंशीय कन्याके गर्भसे उत्पन्न जारज सन्तान थे। तपस्विनियोंमें चम्पा मृगयाजीवी व्याधकी कन्या थीं। पुन्ना और पुन्निका दासकी पुत्री थीं। सुमंगल माता जातिकी वेण थीं। सुभा लुहारकी लड़की थीं (Sacreb. Bud. II;102)। इस प्रकार और कहां तक गिनाया जाय।

दक्षिण भारतके तामिल भक्तोंमें अनेक शूद्र थे। थायु मानुवर, सिद्धियर, पात्तिनातु पिल्ल्येयर, अमृतसकैनर प्रभृति भक्त शूद्र थे। अरुण गिरि, नाथर, अरुमुण्ड नाथर, आदि भी ब्राह्मण नहीं थे। नाम्मालवर या मुनिवाहन, अस्पृश्य जातिके थे। कुराल नामक अपूर्व भक्तिशास्त्र रचयिता तिरुवल्लुवर अति नीच जातिके थे। कण्ठप्पनयन् व्याध थे। पंहति सित्तार शूद्रसे भी नीची जातिके हैं। थिसमल नायनार अन्त्यज थे और भक्त नन्दनार अस्पृश्य परिया थे। अलवार भक्तोंमेंसे अनेकों जातिमें नीच थे पर भक्तिमें अपूर्व थे। उनके वाणी और भजन कितने मधुर हैं। आजकल ब्राह्मणोंके घरमें भी किसी भी पवित्र अनुष्ठानका होना असम्भव है यदि ये गान न गाये जायं। पहले ही कह चुका हूं कि चिदांवरम्के मन्दिरमें इसी अस्पृश्य परियाकी मूर्ति है। आचार्य रामानुज इन भक्तोंको पूर्व भागवतोंमें स्थान देकर भारतवर्षका बड़ा उपकार कर गये हैं। महाराष्ट्रके तुकाराम नामदेव आदि भक्तगण शूद्र होकर भी ब्राह्मणोंके गुरु हो गये हैं। बङ्गालमें चैतन्यदेवकी कृपासे वहुतसे ब्राह्मणोंने निम्नतर वर्णोंके गुरुओंके निकट दीक्षा ली है। आज भी यह रीति समान भावसे ही चली आ रही है। आज भी दक्षिण भारतके विख्यात नारायण गुरु थिया जातिमें पैदा हुए हैं।

आसामके शंकरदेव जातिके शूद्र थे। महापुरुषिया सम्प्रदायके प्रवर्तक यही हैं। बादमें इन्हींकी धारामें दामोदरने एक नया सम्प्रदाय प्रवर्तित किया। दामोदर ब्राह्मण थे, इसलिये इस सम्प्रदायको 'बामुनिया' (ब्राह्मणीय) कहते

। वादमें चलकर वासुनियावालोंने अपने पुराने शूद्र गुरुका नाम मिटा दिया और आसामके भक्तोंको नये सिरेसे वर्णाश्रमके वन्धनमें बांधा।

असलमें जिन भक्तोंने भक्ति धर्मको भारतवर्षमें फैलाया है उनमें द्रविड भक्त ही अतिशय प्राचीन हैं। इसीलिये पद्मपुराणमें स्वयं भक्ति कहती है कि "मैं द्रविड़ देशमें जन्मी, कर्नाटकमें वढ़ी, महाराष्ट्रमें कुछ दिन वास किया और गुजरातमें आकर जीर्णावस्थाको प्राप्त हुई (उत्तर० १९३।५१)।

मध्ययुगमें उत्तर भारतके कवीर, रैदास, सेना, रुदना, छन्ना, दादू, नाभा आदि सन्त भक्तोंका जन्म अत्यन्त नीच कुलमें हुआ था। वंगालमें आउल वाउलोंमें कोई नमःशूद्र, कोई कपाली, कोई जेलेकैवर्त्त कोई मुंड्माली आदि अति हीन समझे जानेवाले कुलमें पैदा हुए थे। और आज भी व्रजेन्द्र शील, महेन्द्र सरकार, महात्मा गांधी, मेघनाद साहा आदिका स्थान क्या किसी ब्राह्मण-से नीचे दिया जाना चाहिये? अथवा यदि शास्त्र मानकर इनके ज्ञान ध्यान और साधनाकी उपेक्षा की जाय तो भारतवर्षमें रह क्या जाता है? आज हिन्दू लोग महात्मा गांधीके उपदेशको वेद वाक्य जैसा समझते हैं। किन्तु देशाचार और लोकाचार क्या ऐसा करनेकी सम्मति देता है?

किन्तु सुयोगके अभावमें अनेकानेक शक्तिशाली पुरुषोंकी साधना सिर नहीं उठा सकी। सुयोग न मिलनेमें जातिभेद ही सबसे ज्यादा वाधक हुआ है। इससे हिंन्दुओंका समाज पंगु और दुर्वल वन गया है। जातिभेदने समाज-के निचले स्तरके असंख्य नर-नारियोंको समाजका भार वना दिया है। वे अपने तो नीचे गिरे ही हुए हैं, उपरले स्तरके लोगोंके पेर पकड़ कर भी गिराते जा रहे हैं। हिन्दू समाज नाना भांतिके अन्यायके वोझसे आज डूवने जा रहा है।

परिशिष्ट

[ले०—हजारी प्रसाद द्विवेदी]

परिशिष्ट

—※—

आचार्य श्री क्षितिमोहन सेनकी इस विद्वत्ता-पूर्ण पुस्तकके पढ़नेके लिये पाठकोंको कुछ और बातोंकी जानकारी आवश्यक है। भारतवर्ष एक बहुत ही विशाल महादेश है। इसका इतिहास बहुत पुराना है और जितना-कुछ जाना जा सका है उसकी अपेक्षा जितना कुछ नहीं जाना जा सका है वह और भी पुराना और महत्त्वपूर्ण है। इस महादेशका सबसे पुराना साहित्य आर्योंका है, जिनका धर्म और विश्वास नाना अनुकूल परिस्थितियोंमें, नाना रूपोंमें परिवर्तित होता हुआ अबतक भारतीय जनसमूहका निजी धर्म और विश्वास है। आधुनिक शोधोंसे जाना गया है कि ये आर्य वस्तुतः इस देशके मूल निवासी नहीं हैं। सन् ईसवीसे कम-से-कम तीन हजार वर्ष पूर्व वे इस देशमें पहले-पहल आविर्भूत हुए थे। उनके पूर्व यहां जो जातियां बसती थीं उनमें कुछ तो अत्यधिक सुसंस्कृत थीं और कुछ अत्यधिक असंस्कृत। संघर्षमें पड़कर आर्योंको दोनों प्रकारकी जातियोंसे बहुत कुछ-ग्रहण करना पड़ा था। इसीलिये उनके आचार-व्यवहार, रीति-नीति, और धर्म-विश्वासमें बादमें चलकर बहुत कुछ परिवर्तन हुए हैं। आचार्य सेनकी पुस्तकमें इस बातको शुरूमें ही स्वीकार कर लिया गया है।

परन्तु इस महादेशके विशाल जन-समूहमें सिर्फ आर्य और आर्य-पूर्व जातियां ही नहीं हैं। आर्योंके बाद भी अनेकानेक जातियां उत्तर-पश्चिमकी ओरसे आकर इस देशमें बस गई हैं। इनमेंकी अधिकांश जातियोंने वैदिक आर्योंके धर्म और समाज-विधानको आंशिक रूपसे स्वीकार कर लिया है। जिन पंडितोंने नृतत्त्वविज्ञानकी दृष्टिसे भारतीय जन-समूहका अध्ययन किया है उन्होंने लक्ष्य किया है कि इस समूचे जन-समूहमें सात प्रकारके चेहरे पाये जाते हैं। (१) तुर्क-ईरान टाइप; जिसमें सीमान्त और बलूचिस्तानके बलूच, ब्राहुई, और अफगान शामिल हैं, शायद फारसी और तुर्की जातियोंके मिश्रणसे बना है। (२) हिन्द-आर्य टाइप; जिसमें पंजाब, राजपूताना और काश्मीरके खत्री, राजपूत और जाट शामिल हैं। (३) शक-द्रविड़ टाइप, जिसमें पश्चिम भारतके मराठे ब्राह्मण, कुनबी, कुर्ग आदि शामिल हैं, शक और द्रविड़ जातियोंके मिश्रणसे बना है। (४) आर्य-द्रविड़ टाइप; जिसमें युक्त प्रान्त, कुछ राजपूताना, बिहार आदि प्रदेशोंके लोग हैं। इनका उच्चतम स्तर हिन्दुस्थानी ब्राह्मणोंसे और निम्नतम स्तर चमारोंसे बना है। ये आर्य और द्रविड़ जातियोंके मिश्रणसे बने हैं। (४) मंगोल-द्रविड़ टाइप; जिसमें बङ्गाल-उड़ीसाके ब्राह्मण और कायस्थ तथा पूर्वी बङ्गाल और आसामके मुसलमान हैं; शायद मंगोल-द्रविड़ और आर्य रक्तके मिश्रणसे बना है। (६) मंगोल-टाइप; जिसमें नेपाल, आसाम, बर्माकी जातियां है। (७) द्रविड़ टाइप; जिसमें गंगाकी घाटीसे लेकर सिंहल तक मद्रास, हैदराबाद मध्य-प्रदेश आदिकी ज़ातियां शामिल हैं (रिजली: पीपुल आफ इण्डिया पृ० २१-३३)। अब यह स्पष्ट है कि यद्यपि हिन्दुओंके धर्मशास्त्रके नाम पर सिर्फ आर्योंके संस्कृत ग्रंथ ही पाये जाते हैं तथापि समूची भारतीय जनता उन ग्रंथोंके प्रतिपाद्यसे अधिक विस्तृत है। पहले वैदिक साहित्यसे शुरू किया जाय ।

न जाने कबसे भारतवर्षमें यह प्रथा रूढ़ हो गई है कि किसी भी विषयका मूल वेदोंमें खोज निकालनेका प्रयत्न किया जाता है। आधुनिक शोधोंसे इस प्रथाको और भी बल मिल गया है। भारतीय समाजकी सबसे जटिल और महत्त्वपूर्ण विशेषता—इस जाति-भेदको भी वेदोंमेंसे खोज निकालनेका प्रयत्न किया गया है। पर इस विषयमें बड़ा भारी मतभेद है। भारतीय पण्डितोंमें तो इस विषयमें काफी मतभेद होना स्वाभाविक ही है, क्योंकि जाति-भेदवाली प्रथा उनके लिये केवल पांडित्य-प्रदर्शी वाद-विवाद या समाज-शास्त्रीय कुतूहलका विषय नहीं है, बल्कि एक ऐसी बात है जिसकी अच्छाई या बुराई उसके राष्ट्रीय जीवन-मरणका प्रश्न है, किन्तु विदेशी पंडित भी इस विषयमें एकमत नहीं हैं। किसी-किसीके मतसे इस प्रथाका कोई भी उल्लेख समूचे वैदिक साहित्यमें नहीं है। पर दूसरोंके मतसे जातिभेदका मूल बीज वैदिक साहित्यमें वर्तमान है। वस्तुतः जाति-प्रथाका कोई एक मूल नहीं है। इसीलिये उसके भिन्न-भिन्न पहलुओंके मूल भिन्न-भिन्न स्थानोंपर खोजने चाहिये। जहां-तक वर्तमान लेखकने अपने साहित्यको समझा है, वहांतक उसे यह कहनेमें संकोच नहीं कि वैदिक साहित्यमें इस प्रथाके कुछ मूल बीज जरूर वर्तमान हैं, परन्तु उस युगमें यह प्रथा धर्म और समाजका इतना जबर्दस्त अंग निश्चय ही नहीं थी। समस्त वेदों, ब्राह्मणों, उपनिषदों और धर्म-गृह्य-श्रौत सूत्रोंमें शायद ही कहीं जाति शब्दका व्यवहार आधुनिक अर्थमें हुआ हो। यहां यह इशारा भी नहीं किया जा रहा है कि वैदिक साहित्यमें बराबर आनेवाले चार वर्णोंके नामको ही जाति-प्रथाका मूल रूप माना जाय, क्योंकि वर्ण और जातिको समानार्थक शब्द नहीं माना जा सकता। परन्तु यह कहनेमें कोई संकोच नहीं कि वर्ण-व्यवस्था जातिभेदके बहुतसे लक्षणोंके जटिल होनेके लिये उत्तरदायी जरूर है। मूल संहिताओं, ब्राह्मणों और उपनिषदोंमें ब्राह्मण, क्षत्रिय या राजन्य, विश्

या वैश्य तथा शूद्र इन चार वर्णोंका भूरिशः उल्लेख है। इनके अतिरिक्त अन्य जातियोंकी चर्चा तो नहीं है, पर प्रसङ्ग-क्रमसे चाण्डाल, पौल्कस, निषाद, दास, शवर, भिषज्, रथकार और वृषल शब्दोंका प्रयोग इस प्रकार किया गया है जिससे जान पड़ता है कि ये चार वर्णोंसे वाहर हैं।

अगर हम जातिभेदके आधुनिक रूपका विश्लेषण करें, तो तीन प्रधान लक्षण स्पष्ट ही जान पड़ेंगे। (१) जन्मकी प्रधानता, (२) छुआछूत, (३) अन्य जातिमें विवाह-सम्बन्धका निषेध। वस्तुतः इन तीनों वातोंका कोई-न-कोई रूप वैदिक साहित्यमें मिल जाता है। जन्मकी प्रधानताको हम फिलहाल छोड़ते हैं, क्योंकि वह विवाहके प्रश्नसे अत्यधिक सम्बद्ध है। यहां वाकी दो लक्षणोंके विषयमें चर्चा की जायगी।

छुआंछूतका विश्लेषण किया जाय तो स्पष्ट ही जान पड़ेगा कि उनके चार मोटे-मोटे तह हैं; इन तहोंके और भी कई परत हैं। चार मोटे तह ये हैं—(१) वे जातियां जिनके देखनेसे ऊँची जातिके आदमीका अन्न और शरीर दोषयुक्त हो जाते हैं, (२) वे जातियां जिनके छूनेसे ऊंची जातिके आदमीका शरीर अपवित्र हो जाता है,(३) वे जातियां जिनके छूनेसे ऊंची जातिके आदमी-का शरीर तो नहीं पर पानी या घृतपक्क अन्न दोषयुक्त हो जाते हैं और (४) वे जातियां जिनके छूनेसे पानी या घृतपक्क अन्न तो नहीं, परन्तु कच्ची रसोई दोषयुक्त हो जाती है। ये उत्तरोत्तर श्रेष्ठ होती हैं। विशेष ध्यान देनेकी वात यह हैं कि ऐसा प्रायः देखा गया है कि एक ही जाति जो वंगालमें तीसरे तहमें हैं, मद्रासमें दूसरेमें और राजपूतानेमें चौथेमें। इसपरसे यह अनुमान करना विल्कुल उचित ही है कि यद्यपि हिन्दू-शास्त्रोंकी प्रवृत्ति-तत्तज्जातियोंके तवकेको हमेशा-के लिये स्थिर कर देना रही है, तथापि व्यवहारमें कारणवश यह कठोरता कम या अधिक भी होती रही है। इस तरहके उदाहरणोंको मूलमें अन्यत्र

दिखानेका प्रयास किया गया है। यहां प्रकृत बात है, वैदिक साहित्यमें वर्णित छुआछूत।

यह प्रायः सर्ववादि-सम्मत मत है कि समूची संहिताओं और ब्राह्मणों तथा उपनिषदोंमें इस प्रकारकी छुआछूतका कोई उल्लेख नहीं मिलता। धर्म-सूत्रोंमें संसर्ग-दुष्ट, काल-दुष्ट और आश्रय-दुष्ट इन तीन प्रकारके दोषयुक्त अन्नको अभोज्य बताया गया है। इनमें आश्रय-दुष्टतामें छुआछूतका कुछ आभास मिलता है। गौतम धर्मसूत्रमें संसर्ग-दुष्ट और काल-दुष्ट अन्नका वर्णन करनेके बाद सूत्रकारने दो और सूत्र लिखे हैं, जिनमें उन आश्रयोंका उल्लेख है जिनके यहां अन्न अभोज्य हो जाता है (गौतम-धर्मसूत्र १७।१५-१६)।

वशिष्ठ धर्मशास्त्रमें (१४।१-४) में भी अभोज्यान्नोंकी एक लम्बी सूची दी हुई है। परन्तु उसी अध्यायमें शास्त्रकारने ऐसे अनेक ऐतिहासिक उदाहरण दिये हैं (जैसे अगस्त मुनिका मृगया करनेपर भी अपवित्र न होना) जिनसे स्पष्ट हो जाता है कि प्राचीन कालमें इन नियमोंके पालनमें काफी शिथिलता थी। इसी प्रकार आपस्तंब धर्मसूत्रमें भी ऐसे बहुतसे कर्म और जीविकायें हैं, जिनके करनेवालोंका अन्न अभोज्य बतलाया गया है। उक्त सूत्रमें एक मनोरञ्जक बात यह है कि एक स्थानपर (२।६।१८-९) ब्राह्मणके लिये क्षत्रियादि तीनों वर्णोंका अन्न अभोज्य बताया गया है, फिर आगे चलकर दो बातें उद्धृत की गयी हैं। पहलेमें कहा गया है कि—सर्ववर्णानां स्वधर्मे वर्तमानानां भोक्तव्यं शूद्रवर्ज्यमित्येके (२।६।१२) अर्थात् किसी-किसी आचार्यके मतसे शूद्रको छोड़कर स्वधर्ममें वर्तमान सभी वर्णोंका अन्न ग्रहण किया जा सकता है और दूसरेमें (२।६।१३) कहा गया है कि 'तस्यापि धर्मोपनतस्य' अर्थात् दूसरे आचार्योंका मत है कि शूद्र भी अगर अपना धर्म पालन करता हो तो उसका अन्न ग्रहणीय है। इन सूत्रोंपर अगर ऐतिहासिक दृष्टिसे विचार करें तो

स्पष्ट ही जान पड़ेगा कि सूत्र-कालमें छुआछूतसे अपवित्र होनेकी भावना दृढ़ होती जा रही थी; पर उसके विषयमें नाना प्रकारके मतभेद तब भी वर्तमान थे। यह ध्यान देनेकी बात है कि इन सूत्रोंमें केवल अन्नके दुष्ट होनेका ही उल्लेख है, अन्यान्य प्रकारके स्पर्शदोष जिनका ऊपर उल्लेख हो चुका है, उन दिनों उद्भावित न हुए थे। ऐसा जान पड़ता है कि स्पर्शदोष शुरूमें नहीं माना जाता था। बादमें माना जाने लगा। परन्तु वैदिक साहित्यके अन्तिम भाग जब बन रहे थे उन दिनों स्पर्शदोषकी भावना जटिल नहीं हुई थी।

अब इसके दूसरे प्रधान लक्षण—अन्तर्जातीय विवाहके विषयमें विचार किया जाय। वस्तुतः जातिभेद बतानेवाले प्राचीन दृष्टिकोणको समझनेके लिये यह विषय सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। मनुस्मृतिमें लगभग ६ दर्जन जातियों और ब्रह्म-वैवर्त पुराणों आदिमें शताधिक जातियोंकी उत्पत्ति वर्णोंके अन्तर्जातीय रक्त-सम्मिश्रणसे ही बतायी गयी है। किसी-किसी आधुनिक नृतत्त्व-विज्ञानीने भी कहा है कि भारतवर्षकी जातियोंका मूल रक्तके सम्मिश्रणसे ही हुआ है। प्रसिद्ध नृतत्त्वविद् रेजलीका भी यही मत है। उन्होंने इसी सिद्धान्तके आधार-पर यह स्थिर किया है कि जो जाति जितनी ही ऊंची समझी जाती है, उसमें आर्य-रक्तका उतना ही आधिक्य है और जो जितनी ही छोटी समझी जाती है, उसमें उतना ही कम।

मनुस्मृति और उसके बादके धर्मशास्त्रमें जातियोंको भिन्न-भिन्न वर्णोंके प्रस्तार या परम्युटेशन-कम्बिनेशनसे उत्पन्न बताया गया है। इसका अगर विश्लेषण करें, तो मन्वादि-शास्त्रोंके मतसे निम्नलिखित पांच प्रकारसे जातियां बनी हैं :—

(१) वर्णोंके अनुलोम-विवाह-जन्य जातियां।

(२) वर्णोंके प्रतिलोम-विवाह-जन्य जातियां।

(३) वर्णोंकी संस्कार-भ्रंशता-जन्य जातियां।

(४) वर्णोंमेंसे निकाले हुए व्यक्तियोंकी सन्तानें।

(५) भिन्न-भिन्न जातियोंके अन्तर्जातीय विवाह-जन्य जातियां।

इससे इतना तो स्पष्ट ही है कि वर्णोंमें रक्त-मिश्रण हुआ है। शुरू-शुरूमें ऐसा विधान था कि उच्च वर्णके लोग अपने-अपने वर्णके अतिरिक्त निचले वर्णोंकी स्त्रियोंसे भी विवाह किया करते थे। मनुस्मृतिमें भी यह व्यवस्था है, पर साथ ही इस स्मृतिमें ब्राह्मणादि वर्णोंका शूद्रा-सहवास निषिद्ध भी बताया गया है। ऐसा जान पड़ता है कि वर्ण-संकरताका जो दोष आगे चलकर बहुत विकट रूप धारण कर गया, वह शुरूमें ऐसा नहीं था। ब्राह्मणों और उपनिषदों-में पिताके वर्णके अनुसार पुत्रका वर्ण माना जाता था। वैदिक साहित्यमें इस प्रकारके अनुलोम-विवाहोत्पन्न सन्तानोंको जो पिताका वर्ण ही माना जाता था, इसके कई उदाहरण मौजूद हैं। प्रतिलोम विवाहके उदाहरण बहुत कम देखने-में आते हैं।

किसी-किसी पण्डितने पारस्कर और गोभिलके गृह्यसूत्रोंमेंसे अन्तर्जातीय विवाहके प्रमाण निकाले हैं। परन्तु अन्तर्जातीय विवाहका अगर प्रतिलोम विवाह भी अर्थ हो तो यह वक्तव्य कुछ विवादास्पद हो जाता है। ऐतरेय ब्राह्मणमें (२-१९-१) कवसको दासी पुत्र बताया गया है, पर इससे उनके ब्राह्मण होनेमें कोई बाधा नहीं पड़ी। इसी तरह पञ्चविंश ब्राह्मण (१४-६-६) में वत्सका शूद्रसे उत्पन्न होना बताया गया है। जाबाला नामक दासीके पुत्र सत्यकामको, जिसके पिताका कोई पता नहीं था, हारीतद्रुमने सत्यवादी देखकर ब्राह्मण रूपमें अपना शिष्य स्वीकार किया था, यह कथा बहुत प्रसिद्ध है (छान्दोग्य ४-४-४)। शर्याति पुत्री क्षत्रिया सुकन्याने ब्राह्मण-च्यवनसे विवाह किया था, यह कथा न केवल महाभारत और पुराणोंमें पायी जाती है वरन्

शतपथ ब्राह्मण (४-१-५-७) में भी कही गयी है। इसी प्रकार रथवतीकी पुत्रीने श्यावाश्वसे विवाह किया था (वृहद्देवता ५-५०)। इस प्रकारके अनुलोम-विवाहकी चर्चा कई जगह वैदिक साहित्यमें आयी है, पर कहीं भी ऐसी ध्वनि नहीं है कि इन अनुलोम-विवाहोंसे उत्पन्न सन्तान किसी तीसरी जातिकी हो जाती थी। आचार्य सेनने अपनी पुस्तकमें इस विषयके और भी वीसियों उदाहरण संग्रह किये हैं। पर ऐसा जान पड़ता है कि धर्म और गृह्य सूत्रोंके काल तक आकर अनुलोम और प्रतिलोम विवाहोंके सांकर्यसे अन्य जातिके वन जानेकी धारणा बद्धमूल होने लगी थी।

इन वर्णसङ्कर जातियोंके विषयमें जो शास्त्रीय विचार है, उससे प्रकट है कि यह संकरता तीन प्रकारकी हो सकती है—(१) माता-पिता दोनों दो शुद्ध वर्णोंके व्यक्ति हों, (२) एक शुद्ध वर्ण और दूसरा वर्णसंकर हो, (३) और दोनों वर्णसंकर हों। वशिष्ठ धर्मशास्त्रमें दस वर्णसंकर जातियोंकी चर्चा है और गौतम-धर्मसूत्रने दो मत उद्धृत किये हैं—एकके अनुसार वर्णसंकर जातियां दस थीं और दूसरेके अनुसार वारह। परन्तु ऐसा जान पड़ता है कि इन दोनों शास्त्रवाक्योंमें ऊपर बताये हुए तीन प्रकारोंमेंसे केवल पहलेको लक्ष्य किया गया है। वौधायनने जरूर इन तीनों प्रकारके वर्णसंकरोंकी चर्चा की है, पहली श्रेणीके ग्यारह, दूसरीके दो और तीसरीके भी दो।

हम इन जातियोंकी सूची देकर पाठकोंको नीरस धर्मशास्त्रीय वखेड़ोंमें नहीं ले जाना चाहते। इनकी चर्चा केवल इसलिये की गयी है कि पाठक इस वातको अच्छी तरह मनमें वैठा लें कि वर्णसंकरताकी भावना धीरे-धीरे वलवत्तर होती जा रही थी।

ऊपर जो कुछ कहा गया है उससे केवल इतना ही सिद्ध होता है कि वैदिक साहित्यके अन्तिम अंश जिन दिनों वन रहे थे उन दिनों समाजमें

स्पृश्यास्पृश्य और वर्णसंकरताके प्रति सतर्कताकी भावना बढ़ रही थी। पर इससे उन हजारों जातियों और उनके ततोधिक विचित्र आचारोंके विषयमें कुछ विशेष नहीं जाना जाता। आचार्य सेनने नाना शास्त्रीय और अर्वाचीन प्रमाणोंसे सिद्ध कर दिया है कि जातिभेदको वर्तमान रूपमें आने देनेकी मनोवृत्ति आर्योंमें अपने आर्येतर पड़ोसियोंसे आयी है।

इस महा जनसमूहका वैज्ञानिक अध्ययन करनेके लिये कई प्रकारके वर्गीकरण सुझाये गये हैं। रिजलीने इस प्रकार वर्गीकरण किया था—(१) वे जातियां जो किसी कबीलेका परिवर्तित रूप हैं। आभीर एक विशेष मानव श्रेणी थी जो घूमती-घामती इस देशमें पहुंची। यहां आकर वह विशाल हिन्दू समाजकी एक जाति बन गयी। इस प्रकारकी जातियोंकी विशेषता यह होती है कि वे *आन्दरूनी मामलोंमें अपना विशेष प्रकारका सामाजिक सङ्गठन और* रीति-नीतिका निर्वाह करती रहती हैं। केवल आंशिक रूपसे ब्राह्मण-श्रेष्ठता मान लेती हैं। विवाह श्राद्ध आदिके मौकेपर ये ब्राह्मणोंको बुलाती हैं। पर कभी-कभी इतना भी नहीं होता। डोम या दुसाध या भूमिज आदि जातियां ऐसी हैं जिन्होंने ब्राह्मण-श्रेष्ठताको तो स्वीकार कर लिया है, पर शायद ही उनके किसी अनुष्ठानसे ब्राह्मणोंका सम्पर्क हो। (२) कुछ ऐसी जातियां हैं जो खास प्रकारके कार्योंके करनेके कारण एक विशेष श्रेणीकी हो गयी हैं। भङ्गी, चमार, लुहार आदि जातियां वस्तुतः भिन्न-भिन्न व्यवसायोंके कारण बनी हुई जान पड़ती हैं। ये जातियां हिन्दू समाजमें इतनी अधिक हैं कि कभी कभी इसी आधारपर समूची जनताका विभाजन किया गया है। (३) कुछ ऐसी जातियां हैं जो मूलतः कोई धार्मिक सम्प्रदाय थीं। अतीथ एक तरहके गृहस्थ संन्यासियोंकी जाति है। बङ्गालके बोस्टम वैष्णवके सम्पप्रदायके परिवर्तित जाति रूप हैं। दक्षिण भारतके लिङ्गायत भी ऐसे ही शैव साधु हैं। (४) कुछ ऐसी

जातियां हैं जो दो जातियोंके मिश्रणसे बनी है। यद्यपि आजकल प्राचीन शास्त्रकारोंके द्वारा पुनः पुनः व्याख्यात वर्णसंकर जातिके सिद्धान्तको नहीं माननेका फैशन-सा चल पड़ा है तथापि ऐसी सैकड़ों जातियां और उपजातियां हैं जो वस्तुतः ही दो जातियोंके मिश्रणसे बनी हैं। रिजलीने ऐसी जातियोंकी लम्बी सूची दी है। उदाहरणार्थ, मुंडा जातिकी नौ शाखायें हैं जिनके नाम हैं—खङ्गार-मुंडा, खरिया-मुंडा, कोंकपत-मुंडा, सद-मुंडा, सवर मुंडा, करङ्ग-मुंडा, महिली-मुंडा, नागवंसी-मुंडा और ओराँव-मुंडा। ये नाम ही सूचित करते हैं कि मुंडा जातिके साथ इन जातियोंका मिश्रण हुआ है। (५) ऐसी भी जातियां हैं जिन्हें राष्ट्रीय जाति या 'नेशनल कास्ट' कहा जा सकता है। रिजलीने कहा है कि जिस देशमें किसी प्रकारकी राष्ट्रीय भावना विद्यमान नहीं है वहां 'राष्ट्रीय जाति' का होना एक विरोधाभास जैसी बात है। परन्तु भारतवर्षमें ऐसी जातियां पायी जाती हैं जो वस्तुतः एक राष्ट्रीय इकाईकी भग्नावशेष हैं। नेपालके नेवार ऐसी ही जाति है। इनमें कई ऊंची, नीची और मध्यवर्ती जातियां हैं और हिन्दू और बौद्ध दोनों धर्म प्रचलित हैं। इसी प्रकार विदेशी पण्डितोंने पश्चिम भारतकी मराठा जातिको भी एक राष्ट्रीय जाति माना है। (६) कुछ ऐसी भी जातियां हैं जो वस्तुतः मूल निवासस्थान से दूर जाकर बस गयी हैं और इसीलिये मूल जातिसे उनका सम्बन्ध टूट गया है और इस प्रकार एक नवीन जातिके रूपमें बदल गयी हैं। ऐसी जातियोंके उदाहरण प्रत्येक प्रदेशमें प्रचुर मात्रामें विद्यमान हैं। (७) फिर ऐसी भी जातियां हैं जो रीति-नीतिका ठीक पालन न करनेके कारण मूल जातिसे अलग कर दी गयी हैं और इस प्रकार एक नयी जातिके रूपमें बदल गयी हैं। इसी प्रकारकी आचार भ्रष्ट जातियोंको मन्वादि धर्मशास्त्रोंमें व्रात्य कहा गया है। ऐसे व्रात्योंके यहां यजन-याजन करनेवाला ब्राह्मण प्रायश्चित्ती बताया गया है।

कभी-कभी विधवा विवाहके प्रश्नपर एक ही जातिकी दो शाखायें हो गयी हैं। जो शाखा विधवा-विवाह करती है वह अधम और जो नहीं करती वह उत्तम मानीजाती है। आधुनिक कालमें देखा गया है कि छोटी जातियोंमेंसे कुछ एक विधवा-विवाहकी चलन बन्द करके ऊंची जाति होनेका दावा करने लगी हैं।

इस प्रकार इस महादेशकी जातियोंके सैकड़ों स्तर हैं। नाना पण्डितोंने नाना भावसे इस अनन्य-साधारण भारतीय विशेषताका अध्ययन किया है। रिजली साहबने अपने अद्भुत पाण्डित्य-पूर्ण अध्ययनके अन्तमें इस जाति भेदके सम्बन्धमें निम्नलिखित नौ सिद्धान्त निश्चित किये थे। आचार्य सेनके ग्रन्थके पाठकोंको इन सिद्धान्तोंकी जानकारी होनी चाहिये। इन सिद्धान्तोंका सारांश इस प्रकार है—

(१) इस देशके निवासियोंकी शारीरिक विशेषताओंके सात टाइप हैं (ऊपर देखिये), जिनमें केवल द्रविड़ टाइप ही विशुद्ध देशी टाइप है। हिन्द-आर्य, मङ्गोल और तुर्क-ईरानी टाइप प्रधानतः विदेशी हैं। बाकी तीन अर्थात् आर्य-द्रविड़, शक-द्रविड़ और मङ्गोल-द्रविड़ टाइप द्रविड़ जातियोंके साथ विदेशी जातियोंके मिश्रणसे बने हैं।

(२) इन विशेष टाइपोंके बननेमें भारतवर्षका प्राकृतिक भावसे अन्य देशोंसे अलगावका प्रधान प्रभाव रहा है। इस अलगावका नतीजा यह हुआ है कि प्रत्येक आक्रमणकारी जाति अपने साथ बहुत कम स्त्रियोंको ले आसकी है और इसीलिये इस देशकी स्त्रियोंसे विवाह करनेको बाध्य हुई है।

(३) इस नियमका एकमात्र अपवाद हिन्द-आर्योंका प्रथम दल रहा है।

(४) भारतीय जन समूहके सामाजिक सङ्गठनमें वे दोनों प्रकारकी जातियां हैं जिन्हें अंग्रेजी शब्द 'ट्राइब' और 'कास्ट'[१] से सूचित किया जाता

१—अंग्रेजीका 'कास्ट' (Caste) शब्द उस भाषामें भी नया ही है। यह

है। [भारतीय जाति–विज्ञानके विदेशी आलोचकोंने 'ट्राइब' शब्दको इस प्रकार समझाया है—ट्राइब परिवारों या परिवार-समूहोंका एक ऐसा दल है जो किसी एक ऐतिहासिक पुरुष, या पौराणिक व्यक्ति या किसी विशेष टोटेमके सन्तान रूपमें अपना परिचय देता है। ये साधारणतः एक ही भाषा बोलते हैं, एक ही रीति-नीतिका पालन करते हैं और एक विशेष प्रदेशको अपना मूल स्थान बताते हैं। एक ट्राइबका पुरुष या स्त्री दूसरी ट्राइबकी स्त्री या पुरुषसे विवाह कर सकता है। परन्तु 'कास्ट' में यह बात सम्भव नहीं है। एक कास्ट-का व्यक्ति दूसरी 'कास्ट' के व्यक्तिसे वैवाहिक सम्बन्ध नहीं कर सकता। पर ऐसा हो सकता है कि एक ही कास्टके दो ऐसे कुल हों जो अपना मूल पुरुष दो भिन्न भिन्न व्यक्तियोंको बताते हों। आभीर (अहीर) मूलतः एक ट्राइब थी जो अब 'कास्ट' में परिणित हो गई है। 'ब्राह्मण' या बनिया कभी भी 'ट्राइब' के रूपमें नहीं थे। हिन्दीमें ट्राइबके लिये 'सगोत्र जाति' या कबीला और 'कास्ट' के लिये सिर्फ 'जाति' शब्दका व्यवहार किया जा सकता है]।

(५) सगोत्र जाति और साधारण जाति दोनों ही अन्तर्विवाह, बहि-

ठीक उसी वस्तुका द्योतक है जिसे हम हिन्दीमें 'जाति' शब्दसे समझते हैं। इस शब्दकी एक कहानी है। वास्को-डि-गामाके साथ जो पोर्चुगीज़ भारतवर्ष के पश्चिमी किनारेपर आये उन्होंने इस देशके निवासियोंमें यह विचित्र प्रथा देखी। इसे समझानेके लिये गोआकी कौंसिलके रिपोर्टमें Castas या Caste शब्दका प्रयोग किया गया था। यह शब्द लेटिनके Castus शब्द परसे बनाया गया था और वंशशुद्धिके अर्थमें प्रयोग किया गया था। इस शब्दकी व्याख्या में पोर्चुगीज़ यात्रियोंने छुआछूतकी प्रथाको ही अधिक महत्त्वका माना था। तबसे यूरोपमें 'जाति' शब्दके साथ छुआछुतकी भावनाका ही प्रधान रूपसे सम्बन्ध माना जाता रहा है, यद्यपि जातिका छुआछूतकी अपेक्षा विवाह और जन्मसे अधिक घनिष्ठ और अविच्छेद्य सम्बन्ध है।

विवाह और अनुलोम विवाहवाले उपविभागोंमें विभक्त पाये जाते हैं। [अन्त-र्विवाह जहां एक जातिका व्यक्ति उसी जातिके व्यक्तिसे व्याह करनेको वाध्य है, वहिर्विवाह जहां एक जातिका व्यक्ति अपनी जातिसे वाहर विवाह करनेको वाध्य है और अनुलोम विवाह जहां एकजातिकी स्त्री केवल अपने समान या उच्च वर्णके पुरुषसे विवाहको वाध्य है, निम्नतर वर्णसे नहीं।]

(६) वहिर्विवाहवाली जातियोंमें की अधिकांश जातियां 'टोटेमिस्ट' हैं [टोटेम शब्दकी व्याख्याके लिये आचार्य सेनकी पुस्तकका पृ० १०५ देखिये]।

(७) जातियोंका वर्गीकरण केवल सामाजिक श्रेष्ठताके आधारपर किया जा सकता है पर समूचे भारतवर्षकी जातियोंके वर्गीकरणकी कोई एक योजना नहीं वनाई जा सकती।

(८) जातियोंके सम्वन्धमें स्मृतियों और पुराणोंमें जो सिद्धान्त प्रति-पादित किये गये हैं, अर्थात् जातियां सङ्करतावश या भिन्न भिन्न जातियोंके अन्तर्जातीय विवाहके कारण वनी हैं, वे शायद ईरानसे लिये गये हैं। यद्यपि इसका वस्तुस्थितिसे कोई अधिक सम्वन्ध नहीं है तथापि भारतवर्षमें यह सिद्धान्त सर्वत्र माना जाता है।

(९) जातिभेदका मूल-अनुसन्धान एक ऐसी समस्या है जिसका समा-धान कठिन है। हम लक्ष्य किये तथ्योंकी आंशिक समानतापरसे सिर्फ ऐसे अनुमान भिड़ा सकते हैं जो कम या ज्यादा सम्भव जान पड़ते हैं। जो सिद्धा-न्त प्रतिपादित किये गये हैं वे इन तीन वातोंपर अवलम्वित है—(क) कुछ विशेष-विशेष जातियोंके श्रेणी-विभाग और विशेष विशेष शारीरिक विशेषताओं (जिनके द्वारा मानवमण्डलियोंकी वैज्ञानिक परख की जाति है) के सम्वन्धपरसे; (ख) भिन्न भिन्न रङ्गोंकी मिश्रित जातियोंके विकास परसे; और (ग) पर-म्परा-प्राप्त दन्तकथाओंपरसे।

किन्तु भारतीय जन-समूहका नृतत्त्व विज्ञानकी दृष्टिसे किया गया अध्ययन जितना भी महत्त्वपूर्ण और मनोरञ्जक क्यों न हो वह है एकांगी ही। इस विशाल जन-समूहके बननेमें यहांके धर्म, आचार, रीति-नीति और सबके ऊपर इसके श्रेष्ठ व्यक्तियों द्वारा रचित साहित्यका जबर्दस्त प्रभाव है। भारतीय जनता का अध्ययन करना हो तो उसके विराट् साहित्य, निरवच्छिन्न लोकगाथायें, कला-कौशल, इतिहास–पुरातत्त्व आदिके साथ ही उसकी वासभूमि और भाषाओं का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है। श्री क्षितिमोहन सेनकी पुस्तकसे पाठकोंको पता चलेगा कि जातिभेदकी प्रथाको रूप देनेमें यहांकी पारिपार्श्विक अवस्थायें भी उसे किस प्रकार प्रभावित कर रही हैं।

जबसे भारतवर्षका आधुनिक यूरोपसे घनिष्ठ सम्बन्ध हुआ है तभीसे यूरोपीय जातियोंके श्रेष्ठ पुरुषोंने यहांके धर्म, साहित्य, आचार-विचार आदिको समझनेकी चेष्टा की है। सब समय उनके प्रयत्न सफल या निर्दोष हुए हों, ऐसा नहीं है, पर उनकी ज्ञान-पिपासा बढ़ती ही गई है। ज्यों ज्यों इस देशके साथ उनका सम्बन्ध बढ़ता गया है त्यों त्यों उन्होंने अनुभव किया है कि भारतीय ज्ञान-सम्पत्ति अतुलनीय है। सन् १८९७ में सुप्रसिद्ध पण्डित जार्ज बुलरने अनुभव किया कि भारतीय विद्याओंका अध्ययन किसी एक पण्डितके बूतेका काम नहीं है। उन्होंने ही पहले पहल एक योजना बनाई जिसमें भिन्न भिन्न विषयोंके विशेषज्ञों द्वारा भारतीय विद्याओंका एक विश्वकोष तैयार करने की बात थी। इस कोषका नाम उन्होंने ही (Grundriss der Indo-arischen Philologie und Altertumskunde (Encyclopaedia of Indo-Aryan Philology and Archeology) दिया। जर्मनी, आस्ट्रिया, इङ्गलैण्ड, हालैण्ड, भारतवर्ष और अमेरिकाके तीस विद्वानोंके सहयोगसे यह कार्य शुरू किया गया। पहले पहल जार्ज बूलरने ही इसके सम्पादनका कार्य

भार भी लिया। उनके बाद फ्रूँज कीलहार्न और अब एच० लूडर्स और जे० वेकरनेगेलके सम्पादनमें यह कार्य हो रहा है। इसी विश्वकोषके जातिभेदवाले अंशके अध्ययनका भार सर आथेल्स्टेन वेन्सको दिया गया था। सर आथेन्स्टेल वेन्सने बड़ी योग्यतापूर्वक उनके पूर्वके अध्ययनों और सेन्सस रिपोर्टोंके आधार पर नये सिरेसे इस समस्याकी जांच की। उन्होंने सेन्ससके तीन हजारसे ऊपर जानेवाली जातियोंको लगभग ५०० मोटे विभागोंमें बांटा है। वेन्सके इस विभाजनमें एक विशेषता यह है कि उसे साधारण पाठक बिना किसी वैज्ञानिक विवादमें पड़े आसानीसे समझ सकता है। वेन्सने चेहरोंके भाव आदिकी वैज्ञानिक विवेचना भी की है। यहां पाठकोंकी सुविधाके लिये वेन्स द्वारा विभाजित जातिसूची दी जा रही है। जातियोंकी जनसंख्या १९०१ की मर्दुमशुमारीसे दी गई है। अब वह संख्या बढ़कर सवायी हो गई है। पाठक इसका ध्यान रखें।

सर आथेल्स्टेनने समूची भारतीय जनताको सात बड़े-बड़े विभागोंमें बांटा है। ये सात भाग इस प्रकार हैं :—

१—विशेष श्रेणी [इनके नाम आगेकी तालिकामें १ से ४३ तक दिये गये हैं।]

२—ग्राम-समाज [इनके नाम आगेकी तालिकामें ४४ से २६३ तक दिये गये हैं।]

३—गौण पेशावाले [इनके नामकी तालिका २६४ से २९६ तक दी गयी है।]

४—शहरी जातियां [इनके नामकी तालिका २९७ से ३४२ तक दी गयी है।]

५—खानाबदोश जातियां [इनके नाम ३४३ से ३९७ तक दिये गये हैं।]

६—पहाड़ी जातियां [इनके नाम ३९८ से ४९४ तक दिये गये हैं।]

७—मुस्लिम जातियोंकी उपाधियां [इनके नाम सूचीमें छोड़ दिये गये हैं। इनमें अरब, शेख, सैय्यद, तुर्क, मुगल, पठान, बलूच और ब्राहुई हैं।]

सर आयेल्स्टेनकी कई तालिकाओंके आधारपर आगेवाली तालिका बनायी गयी है। पर स्थान-स्थानपर आधुनिक जानकारी और व्यक्तिगत अभिज्ञताके बलपर कुछ थोड़ा-थोड़ा परिवर्तन भी कर दिया गया है। फिर भी यथासम्भव सर आथेल्स्टेनके विचारोंको ही प्रधान स्थान दिया गया है।

श्रेणीका नाम	क्रमसंख्या	जातिका नाम	उसका प्रदेश	जनसंख्या
ब्राह्मण	१			१४८९३३००
राजपूत	२			१००४०८००
व्यवसायी	३	बनिया (साधारण)	दक्षिण के सिवा सर्वत्र	३१६३३००
	४	अग्रवाल	युक्तप्रान्त	५५७६००
	५	अग्रहारी	आगरा	९२०००
	६	श्रीमाली	पश्चिम भारत	२२७४००
	७	पोरवाल	राजस्थान	७५०००
	८	ओसवाल	पश्चिम	३८२७००
	९	हूम्बड	पश्चिम	६०७००
	१०	खत्री	पञ्जाब	५८५०००
	११	अरोरा	पश्चिम पञ्जाब	७३२१००
	१२	भाटिया	पश्चिम भारत	६०६००
	१३	लोहाना	सिन्ध	५७२८००
	१४	सुवर्ण वणिक्	बङ्गाल	१५४८००

श्रेणीका नाम	क्रमसंख्या	जातिका नाम	उसका प्रदेश	जनसंख्या
	१५	वलिज	तिलंगाना	५३४७००
	१६	कोमटी	„	६५६३००
	१७	वंजिग	कर्नाटक	१७३४००
	१८	वडुग	तिलंगाना	९५९००
	१९	चेट्टी	तामिल	३२००००
	२०	खोजा	पश्चिम भारत	१५५३०००
	२१	मेमान	„	११२१०००
	२२	वोहरा	„	१७७३००
	२३	लब्बई	दक्षिणपूर्व किनारा	४२६३००
	२४	माप्पिल	मालावार	९२५२००
	२५	जोनक्कन	„	१००३००
लेखक	२६	खत्री	पञ्जाब	१३८०००
	२७	कायस्थ	उत्तर भारत-बङ्गाल	२१४९३००
	२८	प्रभु	पश्चिम	२८८००
	२९	ब्रह्म क्षत्रिय	गुजरात	४२००
	३०	करन महन्त	उड़ीसा	१९५०००
	३१	कणक्कन	तामिल	६३०००
	३२	करणम्	तिलंगाना	४२८००
	३३	विधूर	मध्यप्रदेश, दक्षिण	३९२००
	३४	वैद्य	वङ्गाल	९००००
धार्मिक, साधु	३५	गोसाईं	सर्वत्र (दक्षिणके सिवा)	१५२६००
	३६	बैरागी	सर्वत्र	७६५२००

श्रेणीका नाम	क्रमसंख्या	जातिका नाम	उसका प्रदेश	जनसंख्या
	३७	अतीत	उत्तर भारत	१५१८००
	३८	साधु	पश्चिम	६७८००
	३९	जोगी	उत्तर भारत	२१२५००
	४०	फकीर	„	१२१२६००
	४१	आण्डी	तामिल	१०१४००
	४२	दासरी	तिलंगाना	४८३००
	४३	पानिसवन	तामिल	१३७००
जमींदार, सैनिक आदि	४४	जाट	पञ्जाव, आगरा राजपूताना	७०८६१००
	४५	गूजर	„	२१०३१००
	४६	अवान	पञ्जाव	६८६०००
	४७	खोख्खर	पञ्जाव	११७५००
	४८	गक्खड़	„	३००००
	४९	काठी	पश्चिम	२७४००
	५०	सुमरो	सिन्ध	१२४१००
	५१	सम्भो	„	७९३८००
	५२	तागा	आगरा	१६५३००
	५३	बाभन भुंइहार	उत्तर भारत, विहार	१३५३३००
	५४	राजवंशी-कोच	आसाम, बङ्गाल	२४०८७००
	५५	आहोम	आसाम	१७८०००
	५६	खण्डाइत	उड़ीसा	७२०३००
	५७	मराठा	महाराष्ट	५०२९३००

श्रेणीका नाम	क्रमसंख्या	जातिका नाम	उसका प्रदेश	जनसंख्या
	५८	राजू	तिलंगाना	११३५००
	५९	वेल्लम	,,	५१९९००
	६०	कल्लन	तामिल	४९४६००
	६१	मारवान	मालावार	३५०००००
	६२	आगमुडय्यन	तामिल	३१८६००
	६३	नायर	मालावार	१०४६७००
	६४	कोडगु	कुर्ग	३६२००
किसान	६५	कम्वो	पञ्जाब	१८३६००
	६६	मेव	राजपूताना, पञ्जाब	३९५०००
	६७	ठाकर	पञ्जावकी पहाड़ी	१०२२००
	६८	राठी	,,	३९३००
	६९	राउत	,,	८१९००
	७०	गिरत्थ	,,	१७०१००
	७१	कनैत	,,	३८९९००
	७२	कुरमी	उत्तर भारत	३८७३६००
	७३	कोइरी	युक्तप्रान्त, विहार	१७८४०००
	७४	लोधा	उत्तर भारत	१६६३४००
	७५	किसान	युक्तप्रान्त, मध्यप्रान्त	४४२७००
	७६	कावर	मध्यप्रान्त	१८६१००
	७७	कोलता	,,	१२७४००
	७८	किरार	उत्तर भारत	१६६७००
	७९	कलिता	आसाम	२०३४००

श्रेणीका नाम	क्रमसंख्या	जातिका नाम	उसका प्रदेश	जनसंख्या
	८०	हलवाई-दास	आसाम	२९२००
	८१	कैवर्त	वङ्गाल	२६६५१००
	८२	सद्गोप	”	५७९४००
	८३	चासा	वङ्गाल, उड़ीसा	८७०५००
	८४	गंगौता	विहार	८२६००
	८५	पोद	वङ्गाल	४६४९००
	८६	नमःशूद्र	वङ्गाल	२०३१७००
	८७	कुनवी	दक्षिण, पश्चिम	२७०००००
	८८	कणावी	पश्चिम भारत	१३५०६००
	८९	कोली	”	२४७७३००
	९०	वक्कलिग	कर्नाटक	१३९२४००
	९१	लिंगायत	”	२६१२३००
	९२	पंचमशाले	”	४३११००
	९३	चतुर्थ	”	१११६००
	९४	वण्ट	”	१२०६००
	९५	गौड	”	१६२५००
	९६	काप्पु-रेड्डी	तिलंगाना	३११०२००
	९७	कम्म	”	९७४४००
	९८	तेलग	”	६४४२००
	९९	कालिंगी	”	१२६९००
	१००	तोत्तियन	कर्नाटक	१५१०००
	१०१	वेल्लालन	तामिल	२४६४९००

श्रेणीका नाम	क्रमसंख्या	जातिका नाम	उसका प्रदेश	जनसंख्या
	१०२	नत्तमान	तामिल	१५१३००
माली आदि	१०३	बरई	सर्वत्र (दक्षिणके सिवा)	५४५९००
	१०४	सेनाइ कुड्डयान	तामिल	३९३००
	१०५	कोडिकल	"	६००००
	१०६	अराइन	पंजाब	१०२९५००
	१०७	मालियर	"	१५९९००
	१०८	माली	सर्वत्र (दक्षिणके सिवा)	१९४८६००
	१०९	काछी	उत्तर और मध्यभारत	१२६०२००
	११०	मुराव	उत्तर भारत	६६२९००
	१११	सैनी	पंजाब	२००६००
	११२	तिगल	दक्षिणात्य	६४८००
पशुपाल	११३	अहीर	उत्तर और मध्य भारत	९८४१९००
	११४	गोआला-गोल्ला	उत्तर भारत बंगाल	१३५७४००
	११५	गौर	बंगाल	४३१६००
	११६	रवारी	राजपूताना	२५३९००
	११७	घोसी	उत्तर भारत	५८५००
	११८	कन्नाडियान	तामिल	२२५००
कला-कौशल वाले	११९	कम्मालन्	"	६४४६००
	१२०	कमूसाल	तिलंगाना	२९५५००
	१२१	पंचाल	कर्नाटक	३२३८००
	१२२	सोनार	सर्वत्र (दक्षिण भिन्न)	१२७१८००
	१२३	नियारिया	उत्तर पश्चिम	१८७००

श्रेणीका नाम	क्रमसंख्या	जातिका नाम	उसका प्रदेश	जनसंख्या
	१२४	तरखाण	पंजाव	७५४५००
	१२५	बढ़ई	उत्तर भारत	११३३१००
	१२६	सुतार-छुतोर	बंगाल	५८११००
	१२७	खाटी	उत्तर भारत	२१९४००
	१२८	लोहार	सर्वत्र (दक्षिण भिन्न)	१६०५१००
	१२९	कामार	बंगाल	७५७२००
	१३०	राज-मीमार	उत्तर भारत	२६०००
	१३१	थावी	पंजाव पहाड़ियाँ	२३००
	१३२	गौण्डी	दाक्षिणात्य	८७००
	१३३	काडीओ	पश्चिम	१४४००
	१३४	कसेरा	सर्वत्र (दक्षिणके सिवा)	१३८६००
	१३५	ठठेरा	उत्तर भारत	५७८००
	१३६	ताम्बट	पश्चिम	१०४००
बुनने वाले	१३७	पटनूली	"	९०५००
	१३८	पटवे	उत्तर मध्य भारत	७२०००
	१३९	खत्री	पश्चिम भारत	५६२००
	१४०	तांती	बंगाल	७७२३००
	१४१	तँतवा	विहार	१९७९००
	१४२	पेरिके	तामिल	६३०००
	१४३	जणप्पन	"	८३०००
	१४४	कपाली	बंगाल	१४४७००
	१४५	धोर	दाक्षिणात्य	२४४००

श्रेणीका नाम	क्रमसंख्या	जातिका नाम	उसका प्रदेश	जनसंख्या
	१४६	पांका	मध्य भारत	७२६७००
	१४७	गांडा	पूर्व, मध्य भारत	२७७८००
	१४८	डोम्वा	विहार	७६४००
	१४९	कोरी	उत्तर भारत	१२०४७००
	१५०	जुलाहा	"	२९०७९००
	१५१	वलाही	राजपूताना उ० भा०	५८५१००
	१५२	कैकोलन	तामिल	३५४७००
	१५३	साले	दाक्षिणात्य	६३९३००
	१५४	तोगट	कर्नाटक	६४५००
	१५५	देवांग	"	२८८९००
	१५६	नेयिगे	कर्नाटक	९७०००
	१५७	जुगी	वंगाल	५३६६००
	१५८	कोष्टी	दक्षिण, मध्य भारत	२७७४००
तेल निकालने वाले	१५९	तेली-घानची,	सर्वत्र (दक्षिणके सिवा)	४०६०३००
	१६०	कलु	वंगाल	१५४९००
	१६१	वाणियन	तामिल	१८७५००
	१६२	गाणिग	कर्नाटक	११४९०९
पात्र-निर्माता	१६३	कुम्हार	उत्तर भारत	३३७९३००
	१६४	कुशवन्	तामिल	१४५५००
ई	१६५	नाई-न्हावी,	सर्वत्र (दक्षिणके सिवा)	२४५८४००
	१६६	हजाम (मुस्लिम)	"	५३४३००
	१६७	अम्वहन	तामिल	२१९७००

श्रेणीका नाम	क्रम सं०	जातिका नाम	उसका प्रदेश	जन सं०
	१९०	कव्वेर अम्बिडा	तिलंगाना	७६५००
	१९१	मोगेर	कनाड़ा	३८२००
	१९२	मुक्कुवन	मालावार	२०४००
	१९३	शेम्बडवन	तामिल	५४७००
चूना, पत्थर, नमक	१९४	विन्द	विहार, अवध	२१९७००
के कार्यकर्त्ता	१९५	चैन	,, ,,	१५८६००
	१९६	गोंढही	,, ,,	१६५२००
	१९७	लूनिया, नूनिया	उत्तर भारत	८०७४००
	१९८	खारोल	राजपूताना	१२७००
	१९९	रेघार	,,	१४४००
	२००	खारवी	पश्चिम	५००००
	२०१	आग्रिया	आगरा, पश्चिमी किनारा	२७०४००
	२०२	उप्पार	कर्नाटक	२६००००
	२०३	उप्पिलियन	मालावार	४३७००
	२०४	पाथरवट	दक्षिण	२३४००
	२०५	वैती-चूनारी	बङ्गाल	१८१००
ताड़ीवाले	२०६	पासी	युक्तप्रान्त, विहार	१४०८४००
	२०७	भंडारी	पश्चिम घाट	१७६०००
	२०८	पाइक	कनाड़ा	८०९०००
	२०९	विल्लव	,,	१४५६००
	२१०	तियाँ	मालावार	५८००००
	२११	तण्डान	,,	१९०००

श्रेणीका नाम	क्रम सं०	जातिका नाम	उसका प्रदेश	जन सं०
	२१२	ईलवन	मालावार	७९१९००
	२१३	शाणन	तामिल	७५९३००
	२१४	ईडिग	तिलङ्गाना	३३७४००
	२१५	गौण्डल	,,	३६१५००
	२१६	सेगिडि	उड़ीसा	५३७००
	२१७	यात	,,	५२७००
खेत, मजूर	२१८	धानुक	आगरा, राजपूताना	८०४२००
	२१९	अरख	,,	७६४००
	२२०	धुंडिया-धोडिया	पश्चिम	११०२००
	२२१	दुवंला-तलाविया	,,	१४१८००
	२२२	बागदी	बङ्गाल	१०४२५००
	२२३	वउरी	,,	७०५६००
	२२४	रजवार	बङ्गाल	१६६४००
	२२५	मुसहर	युक्तप्रान्त, विहार	६६४७००
	२२६	भर	विहार	४५८५००
	२२७	धाकर	राजपूताना	१२५७००
	२२८	पल्लि	तामिल	२५७२३००
	२२९	पल्लन	मालावार	८३६५००
	२३०	पुलयन	,,	५२४५००
	२३१	चेरुमन		
	२३२	पराइयन	तामिल	२२५८६००

श्रेणीका नाम	क्रम सं०	जातिका नाम	उसका प्रदेश	जन सं०
	२३३	माल	तिलंगाना	१८६३००
	२३४	होलेया	कर्नाटक	८६६२००
	२३५	महार	महाराष्ट्र	२५६१६००
	२३६	ढेड़	पश्चिम	३७८८००
चमड़ेके कामवाले	२३७	चमार	सर्वत्र (दक्षिणके सिवा)	११९७६७००
	२३८	मेघ	पञ्जाब पहाड़ियां	१४०५००
	२३९	दागी	,,	१५४७००
	२४०	मादिग	तिलंगाना	१२८१२००
	२४१	मांग	दाक्षिणात्य	५७९९००
	२४२	शक्किलियन	तामिल	४८७५००
	२४३	मोची	सर्वत्र (दक्षिणके सिवा)	१००७८००
	२४४	वांभी	राजपूताना	२०००००
चौकीदार	२४५	वरवाला	पञ्जाब	१०१७००
	२४६	घटवाल	वङ्गाल, विहार	८८८००
	२४७	कंड्रा	उड़ीसा	१५१५००
	२४८	अम्बलक्कारन	तामिल	१६२५००
	२४९	मुत्राच	तिलंगाना	३२९१००
	२५०	खंगार	मध्य भारत	११३७००
	२५१	मीना	राजपूताना	५८१९००
	२५२	दुसाध	युक्तप्रान्त, विहार	१२५८२००
	२५३	माल	वङ्गाल	१४५७००
	२५४	वेरड-वेडर	कर्नाटक	६४६०००

श्रेणीका नाम	क्रम सं०	जातिका नाम	उसका प्रदेश	जन सं०
	२५५	रामोशी	दाक्षिणात्य	६०८००
सफाई करनेवाले	२५६	भङ्गी मेहतर	सर्वत्र (दक्षिणके सिवा)	८३९२००
	२५७	चुहड़ा	पञ्जाब	१३२९४००
	२५८	मज्बी	,,	३८०००
	२५९	भुंइमाली	बङ्गाल-आसाम	१३१६००
	२६०	हांड़ी, काओरा	बङ्गाल	३०६५००
	२६१	हड्डी	उड़ीसा	२८१००
	२६२	डोम	उत्तर, मध्यभारत	८५५६००
	२६३	घासिया	गङ्गाकी घाटी	११९३००
	२६४	भाट	उत्तर और पश्चिम भारत	३७७७००
बन्दी, भाट आदि	२६५	भाट राजू	तिलंगाना	२८०००
	२६६	राजभाट	बङ्गाल	११२००
	२६७	चारण	पश्चिम	७४०००
	२६८	मीरासी-डूम	पञ्जाब	२९१६००
ज्योतिषके व्यवसायी	२६९	जोशी	सर्वत्र (दक्षिण-भिन्न)	८३७००
	२७०	डाकौट	युक्तप्रान्त	१५६००
	२७१	गणक	आसाम	२०५००
	२७२	काणिशान्	मालावार	१५७००
	२७३	पाणन्	,,	३३३००
	२७४	वेलन्	,,	२७७००
	२७५	गरपगारी	मध्यप्रान्त	८८००
मन्दिर-पुजारी	२७६	पुजारी	पञ्जाब	८८०

श्रेणीका नाम	क्रम सं०	जातिका नाम	उसका प्रदेश	जन सं०
	२७७	भोजकी	,,	१०७०
	२७८	भोजक	राजपूताना	१२००
	२७९	सेवक	,,	६८००
	२८०	पंडारम	तामिल	६८६००
	२८१	वल्लुवन्	,,	८५३००
	२८२	तंवल	तिलंगाना	३८००
	२८३	जङ्गम	कर्नाटक	४०५०००
	२८४	गारुडा	पश्चिम	२०६००
	२८५	भराई	पञ्जाव	६६०००
	२८६	उलम	,,	३६२००
मन्दिर-सेवक	२८७	फुलारी	दक्षिणात्य	१५७००
	२८८	हूगार		
	२८९	गुराव	दाक्षिणात्य	९४०००
	२९०	बारी	उ० भारत	८९६००
	२९१	सातानी	तिलंगाना	७७४००
	२९२	देवादिग	,,	२३८००
नृत्य-गीतके पेशावाले	२९३	बेसिया-कञ्चन	उत्तर भारत	५७७००
	२९४	कलावन्त	पश्चिम	२००००
	२९५	दासी-देवाली	तिलङ्गाना-कर्नाटक	२५३००
	२९६	बोगम	,,	३२९००
गन्ध-तांबूल आदि के पेशेवाले	२९७	अत्तारी	उत्तर मध्य भारत	५९००
	२९८	गन्धवणिक्	बङ्गाल	१४११००

श्रेणीका नाम	क्रम सं०	जातिका नाम	उसका प्रदेश	जन सं०
	२९९	कासौंधन	युक्तप्रान्त	९९७००
	३००	कासरवानी	,,	७९७००
	३०१	गांधी	गुजरात, दाक्षिणात्य	३७००
	३०२	कुञ्जड़ा	उत्तर भारत	२८५४००
	३०३	तंबोली	सर्वत्र (दक्षिणके सिवा)	२०९५००
भूंजना पीसना	३०४	भड़भूंजा	उत्तर भारत	३५९५००
मिष्टान्न वाले	३०५	भठियारा	प० पञ्जाब	५८२००
	३०६	कांदू	सर्वत्र (दक्षिणके सिवा)	६६७९००
	३०७	हलवाई	उत्तर, पूर्व भारत	२९००००
	३०८	मयरा	बङ्गाल	१४९२००
	३०९	गोडिया-गूड़िया	बङ्गाल-उड़ीसा	१५०४००
कसाई	३१०	कसाव	उत्तर भारत	३७९५००
	३११	खाटिक	उत्तर और पश्चिम	३३२३००
बिसाती आदि	३१२	बिसाती	पञ्जाब, युक्तप्रांत	३६००
	३१३	रमैय्या	पञ्जाब	५३००
	३१४	मनिहार	उत्तर भारत	१०२३००
	३१५	चूड़ीहार	उत्तर मध्यभारत	५५५००
	३१६	कांचार	,,	१९१००
	३१७	लाखेड़ा	उत्तर भारत	६०१००
	३१८	गाजुल	तिलंगाना	१०२०००
	३१९	पात्रा	उड़ीसा	६१४००
	३२०	संखारी	बंगाल	१४८००

श्रेणीका नाम	क्रमसंख्या	जातिका नाम	उसका प्रदेश	जनसंख्या
वस्त्र, पोशाक आदि	३२१	दरजी	सर्वत्र	८३१००
के विशेष कौशल	३२२	सिम्पी	दाक्षिणात्य	३६८००
जानने वाले	३२३	छीपी	उत्तर भारत	२६९४००
	३२४	भौसार	पश्चिम	३८२००
	३२५	रंगरेज	सर्वत्र (दक्षिणके सिवा)	१३७०००
	३२६	नीलारी	उत्तर भारत	४८३००
	३२७	गलियारा	पश्चिम	११००
रुई धुनने वाले	३२८	पिंजारी	,,	५०८००
	३२९	वेहना	उत्तर भारत	३६२५००
	३३०	धुनिया	,,	२७२८००
	३३१	दूदेकुल	तिलंगादा	२४५००
मद्य-विक्रेता	३३२	सूंड़ी	बंगाल	७२४८००
	३३३	साहा		
	३३४	कलाल-कलवार	उत्तर-मध्य भारत	१०००२००
घरेलू भृत्य	३३५	भिस्ती	,,	१०७५००
	३३६	गोला	पश्चिम और उत्तर	३०७००
	३३७	कूटा	उत्तर भारत	६४००
	३३८	चाकर	राजपूताना	१६३६००
	३३९	खवास	पश्चिम भारत	३०६००
	३४०	शूद्र	बंगाल	२८५०००
	३४१	शागिर्द पेशा	उड़ीसा	४७१००
	३४२	परिवारम्	तामिल	१८९००

श्रेणीका नाम	क्रमसंख्या	जातिका नाम	उसका प्रदेश	जनसंख्या
माल ढोनेवाले	३४३	वनजारा	उत्तर और मध्यम	४९६४००
	३४४	लवाना	सर्वत्र (पूर्वी भारतके सिवा)	३४९५००
	३४५	थोरी	पञ्जाव	४१८००
	३४६	पेंढारी	महाराष्ट्र कर्नाटक	१०१००
भेड़ और ऊनके	३४७	गड्डी	पञ्जाव	१०३८००
कामवाले	३४८	गड़रिया	उत्तर भारत	१२७२४००
	३४९	धङ्गर-हातकर	दक्षिणात्य	१०१५८००
	३५०	कुड्डुवर	दक्षिण भारत	१०६८०००
	३५१	इडइयन	तामिल	७०२७००
	३५२	भरवाड	पश्चिम	१०२९००
धरतीका काम करने	३५३	ओड-वड्डर	सर्वत्र (पूर्वके सिवा)	६०३१००
वाले	३५४	वेलदार	उत्तर-मध्य-भारत	२१४७००
	३५५	कोड़ा-खैरा	वङ्गाल-विहार	१६६५००
चाकूके काम वाले	३५६	शिकलीगर	उत्तर और पश्चिम	२१०००
	३५७	घिसाड़ी	दाक्षिणात्य	८४००
	३५८	खुमरा	उत्तर भारत	११००
	३५९	टाकारी	दाक्षिणात्य	६५०००
बांसके काम वाले	३६०	तूड़ी-तूदी	वङ्गाल	६८०००
	३६१	वसोर-वंसफ़ोरा	उत्तर और पश्चिम	९६०००
	३६२	वुरूद-मेदार	महाराष्ट्र-कर्णाट	८७६००
	३६३	धरकार	युक्तप्रान्त, राजपूताना	४३५००
चटाई, चंगेली वाले	३६४	कंजर-कंजड़	उत्तर भारत	३४०००

श्रेणीका नाम	क्रमसंख्या	जातिका नाम	उसका प्रदेश	जनसंख्या
	३६५	कुड़वान-कोरच	तिलंगाना	२३४८००
	३६६	येरुकल	,,	६५५००
	३६७	कैकाड़ी	महाराष्ट्र	१४२००
रूप-जीवी	३६८	बहुरूपिया	पञ्जाब, उत्तरभारत	३९००
	३६९	भाँड़	,,	१०६००
	३७०	भवाईओ	पश्चिम	६०००
	३७१	गोंधली	दाक्षिणात्य	२७५००
बाजा बजानेवाले	३७२	डफाली	आगरा, बिहार	५०२००
	३७३	नगारची	उत्तर भारत	२०६००
	३७४	ढोली	पश्चिम	४३७००
	३७५	बजनिया	,,	१४४००
	३७६	तुराहा	बंगाल	७७३००
मदारी आदि	३७७	नट	उत्तर भारत	१६२३००
	३७८	बाजीगर	,,	२७०००
	३७९	डोम्बर-कोल्हाटी,	दाक्षिणात्य	३९४००
	३८०	गोपाल	,,	७१००
चौर्य-जीवी	३८१	बागरिया	मध्य भारत	३०९००
	३८२	बेदिया	उत्तर भारत	५७५००
	३८३	संसिया	पंजाब	३४७००
	३८४	हबूरा	उत्तर भारत	४३००
	३८५	भामतिया-उचली	,,	६१००
शिकारी आदि	३८६	भवरिया }	,,	३०३००
	३८७	मोघिया }		

श्रेणीका नाम	क्रम सं०	जातिका नाम	उसका प्रदेश	जन सं०
	३८८	अहेरिया	पंजाब, युक्त प्रान्त	३५४००
	३८९	बहेलिया	,,	५३६००
	३९०	महतम	,,	८३९००
	३९१	सहरिया	मध्य भारत	१३६४००
	३९२	बाघरी	,,	११४०००
	३९३	पारधी	दाक्षिणात्य	३२०००
	३९४	वेडन	तामिल	२५५००
	३९५	वलय्यन्	,,	३८३०००
	३९६	केदुवन	,,	७४९००
	३९७	कुरिच्चन	मालावार	९६००
मध्य कटिबंध	३९८	कोल	मध्य प्रान्त	२९९०००
की पहाड़ी जातियां	३९९	हो	बङ्गाल	३८५१००
	४००	मुंडा	बंगाल, बिहार	४६६७००
	४०१	भूमिज	बंगाल	३७०२००
	४०२	भुंइया	,, मध्य०	७८९१००
	४०३	खरवार	बंगाल	१३९६००
	४०३	वेगा	मध्य प्रान्त	३३९००
	४०५	चेरु	बंगाल	३०२००
	४०६	खरिया	,,	१२०७००
	४०७	सन्ताल	बंगाल, बिहार	१९०७९००
	४०८	माहिली	,,	६६८००
	४०९	बिरजिया	,,	५७००

श्रेणीका नाम	क्रम सं०	जातिका नाम	उसका प्रदेश	जन सं०
	४१०	जुआंग	उड़ीसा	११२००
	४११	ओरांव	विहार-बंगाल	६१४५००
	४१२	माले	"	४८३००
	४१३	मल पहाड़ियां	"	३५०००
	४१४	गोंड	मध्य प्रान्त	२२८६९००
	४१५	मम्भवार	गंगाकी घाटी	५२४००
	४१६	बोत्तदा-भात्रा	दक्षिण मध्यभारत	५०१००
	४१७	हलबा	द० पू० म० भारत	९०१००
	४१८	पथारी	मध्य प्रान्त	२९००
	४१९	प्रधान	"	२२९००
	४२०	कोयी	"	११५२००
	४२१	कंड	पूर्वोत्तर मद्रास	६१२५००
	४२२	कोंडू-दोरा	"	८८७००
	४२३	पोरोजा	"	९१९००
	४२४	गदबा	"	४१३००
	४२५	जातपु	"	७५७००
	४२६	सवर (शवर)	द० उड़ीसा	३६७४००
पश्चिमी कटिवंधकी	४२७	कोरकू-कोर्वा	वरार-मध्यप्रान्त	१८१८००
पहाड़ी जातियां	४२८	भील	पश्चिम कटिवंध	११९८८००
	४२९	भिलाला	"	१४४४००
	४३०	धान्का	"	६६१००
	४३१	तड़वी	"	१०५००

श्रेणीका नाम	क्रमसंख्या	जातिका नाम	उसका प्रदेश	जनसंख्या
	४३२	निहाल	पश्चिम	६९००
	४३३	गामता	"	४९३००
	४३४	पटेलिया	"	९१०००
	४३५	नाइकडा	"	९०२००
	४३६	नायक	"	२५१००
	४३७	छोद्रा	"	५८२००
सह्याद्रिकी जातियां	४३८	काटूकरी	सह्याद्रि	९३०००
	४३९	वार्ली	"	१५२३००
	४४०	घाट ठाकुर	"	१२२३००
नीलगिरिकी	४४१	कुरुमान	नीलगिरि	१०६००
	४४२	ईसल	"	८६१००
	४४३	तोड	"	८००
	४४४	कोटा	"	१३००
	४४५	कानिकन	"	४१००
	४४६	मलय्यन	"	११२००
	४४७	यानादि	"	१०३९००
	४४८	चेञ्चु	"	८३००
आसामकी पहाड़ी जातियां	४४९	वादो	आसाम	२४२९००
	४५०	कचारी		
	४५१	गारो	"	१६२२००
	४५२	लालंग	"	३५५००
	४५३	राभा	"	६७३००

श्रेणीका नाम	क्रमसंख्या	जातिका नाम	उसका प्रदेश	जनसंख्या
	४५४	ह्राजंग	,,	८८२००
	४५५	टिपरा-म्रंग	,,	१११३००
	४५६	चूतिया	,,	८५८००
	४५७	मीरी	,,	४६७००
	४५८	आबोर	,,	३२०
	४५९	डाफला	,,	९५०
	४६०	आक	,,	२८
	४६१	खासी	,,	११९६००
	४६२	सेइंटेंग	,,	४७९००
	४६३	मिकिर	,,	८७३००
	४६४	नागा (साधारण)	,,	७८९००
	४६५	अंगामी-तेंगिमा	,,	२७५००
	४६६	आओ	,,	२६८००
	४६७	सेमा-सिमा	,,	४७००
	६८	ल्होटा	,,	१९३००
	४६९	रेंगमा	,,	५६००
	४४७०	कूकी	,,	६७२००
	४७१	मैथेई	,,	६९४००
	४७२	लूसेई	,,	६३६००
	४७३	शान	,,	१८५०
	४७४	खामटी	,,	२०००
	४७५	फकियाल	,,	२२०

श्रेणीका नाम	क्रमसंख्या	जातिका नाम	उसका प्रदेश	जनसंख्या
	४७६	नोरा	,,	१४०
	४७७	तुरंग	,,	४००
	४७८	अइतोन	,,	८०
	४७९	आहोम	,,	१७८०००
	४८०	सिंगफो	,,	८००
	४८१	दाओनिया	,,	१०००
हिमालयकी पहाड़ी	४८२	खंबू	नेपाल	४६५००
जातियां	४८३	याख	,,	२४००
	४८४	लिंबू	,,	२४६००
	४८५	लेप्चा-रौंग	सिकिम	१८०००
	४८६	मुरमी	नेपाल	३३९००
	४८७	नेवार	,,	११५००
	४८८	खस	,,	१५९००
	४८९	गूरुंग	,,	२३९००
	४९०	मंगर	,,	१६६००
	४९१	सुनुवार	,,	६९००
	४९२	गोर्खा (साधा०)	,,	१८४००

ग्रन्थागत जातियों और शास्त्रीय विषयों
की

अनुक्रमणिका

ग्रन्थागत जातियों और शास्त्रीय विषयोंकी

अनुक्रमणिका

[जिन शब्दोंके आगे 'पा०' छपा हुआ है वे पारिभाषिक या शास्त्रीय शब्द हैं। जिनके आगे 'आ०' छपा हुआ है उनकी चर्चा आगेके पृष्ठोंमें भी है। जिनके आगे 'मु०' है वे जातियां मुसलमान हो रही हैं या हो चुकी हैं।]

सांकेतिक शब्दों द्वारा सूचित ग्रन्थोंका विवरण

[नीचे उन पुस्तकोंका पूरा नाम और उनके ग्रन्थकारोंका नाम दिया जाता है, जिनकी सूचना मूल पुस्तकमें सांकेतिक या संक्षिप्त शब्दों द्वारा दी गई है। संस्कृतके प्राचीन ग्रन्थोंका प्रायः पूरा नाम ही दे दिया गया है। जहां केवल ऋषि का नाम ही देकर अध्यायादिकी संख्या दी हुई है, वहां उस नामके वाद स्मृति, संहिता या सूत्र यथाप्रसंग जोड़ लेना चाहिये। जहां केवल 'पर्व' (जैसे 'वन पर्व') दिया हुआ है वहां महाभारत और जहां केवल काण्ड दिया हुआ है वहां वाल्मीकीय रामायणका उद्धरण समझा जाना चाहिये।]

A New account of the East Indies by Captain Alexander Hamilten, 1740.

South Indian Inscriptions. Vol III

Epigaphica India, Vol II,

Encyclopaedia Britannica, 11th. Edition, Vol E.

Mysore Tribes and Castes by Naujandayya & Ananta Krishna Iyer, Vol IV (संकेत Mysore)

Risley—The People of India, Calcutta, 1908 (संकेत Risley)

Census Report of India, 1921 Vol III, "Assam"

" 1931, Part III, Etheographical.

S. V. Ketkar. The History of Caste in India 2 Vols. London, 1911.

P. Lakshmi Naresu. A Study of Caste. Madras, 1922.

Indian Culture. 1938, January

Lala Baijnath, Hinduism : Ancient and Modern Meerat, 1869.